ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव अपूर्व स्पष्टीकरण

ॐ

श्री पंचपरमेष्ठी नमः
श्री निज शुद्धात्मा नमः
श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव अपूर्व स्पष्टीकरण

अध्यात्म युगपुरुष
पूज्य कहानगुरुदेव के
अनन्य शिष्यरत्न, आत्मज्ञ,
पूज्य 'भाईश्री' लालचंदभाई के
'द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव'
अपूर्व स्पष्टीकरण रूप प्रवचन

प्रकाशक और प्राप्तिस्थान:
श्री कुंदकुंद कहानामृत प्रभावना मंदिर ट्रस्ट
'स्वीट होम', जागनाथ प्लॉट,
गली न-६, जिमखाना रोड,
राजकोट – ३६० ००१ (सौराष्ट्र)
(ट्रस्ट, ९४२९० ८८८७९)
(समकित मोदी, ९८२५५ ८२५४९)

वीर संवत २५४९	विक्रम संवत २०७९	ई. स. २०२३

-: प्रकाशन :-

पूज्य 'भाईश्री' लालचंदभाई मोदी के
११४ वे जन्मदिन प्रसंग पर
दि. २९-५-२०२३, सोमवार, ज्येष्ठ सूद-९

प्रथम आवृति - ३००

मूल कीमत ४४० रुपये (अनुमानित)
मूल्य - स्वाध्याय

प्रवचनों की उपलब्धि	
औडियो, विडिओ, लिखित और सबटाईटल्स	AtmaDharma.com & AtmaDharma.org
विडिओ और सबटाईटल्स	YouTube.com/LalchandbhaiModi
Telegram: घोषणाएँ	t.me/Lalchandbhai
WhatsApp: घोषणाएँ	https://chat.whatsapp.com/Dkjf4AJ5vew8sE1VNm2amO
Telegram: घोषणाएँ और तत्त्व चर्चा	t.me/DhyeyPurvakGyey

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय कलम से....................4
द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव - अपूर्व स्पष्टीकरण मे से ख़ास चुने हुए बिंदु....................6
प्रकाशन....................21
श्री समयसारजी स्तुति....................22
श्री कुंदकुंद अचार्यदेव....................23
श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति....................24
पूज्य श्री कानजीस्वामी....................25
जिनजीनी वाणी....................26
पूज्य भाईश्री लालचंदभाई....................27
द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव पर प्रवचन....................28
प्रवचन: LA ४०४....................28
प्रवचन LA ४०५....................40
प्रवचन LA ४०६....................58
प्रवचन LA ४०७....................78
प्रवचन LA ४०८....................88
प्रवचन LA ४०९....................111
प्रवचन LA ०६६....................131
प्रवचन LA ०६७....................151
प्रवचन LA-०६८....................168
प्रवचन LA ४१०....................192
પ્રવચન LA ४११....................216
परमपारिणामिकभाव, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का संवाद....................238

प्रकाशकीय कलम से

अहो उपकार जिनवरनो कुंदनों ध्वनि दिव्यनो,

जिन कुंद ध्वनि आप्या, अहो आ गुरु कहानना।

वर्तमान शासन नायक महावीर भगवान से प्रगट हुई दिव्यध्वनि की परंपरा में, कलिकाल सर्वज्ञ ऐसे श्री कुंदकुंदाचार्यदेव दो हज़ार वर्ष पूर्व हुये। श्री कुंदकुंददेव ने वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विराजमान श्री सीमंधर भगवान की सुखानंद से बहती हुई दिव्य-देशना को प्रत्यक्ष सदेह वहाँ जाकर साक्षात् मूर्तिमंत किया एवं भरतक्षेत्र में उसे लाकर द्वितीय श्रुतस्कंध के समयसार आदि पंचपरमागमों की रचना की। उसके बाद आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व वर्तमान काल के चलते-फिरते सिद्ध, ऐसे श्री अमृतचंद्राचार्यदेव हुए। उन्होंने समयसार आदि अनेक शास्त्रों की टीका की रचना की।

इस परंपरा में मोक्षमार्ग प्रायः लुप्त जैसा ही हो गया था। मिथ्यात्व ने गले तक डुबाकर उसका एक छत्र राज शुरू हो गया था। उसी काल में ही जैनशासन में एक आध्यात्मिक महापुरुष, आत्मज्ञसंत, निष्कारण करुणा के सागर और भावी तिर्थाधिराज ऐसे निर्भय-निडर और निशंक सिंहपुरुष परम पूज्य श्री कानजीस्वामी का जन्म हुआ। उन्होंने आचार्यों के ह्रदय में बैठकर चारों ओर से शास्त्रों का निचोड़ निकालकर परमागमों के रहस्यों को अपनी प्रज्ञा से आत्मसात् करके, भव्य जीवों के श्रेयार्थ ४५ साल तक अटूट धारा से देशना की शृंखला बरसा कर असंख्य जीवों को आध्यात्मिक वातावरण में भिगो दिया। बहुत सारे जीवों ने गुरुदेवश्री के निमित्त से अपने आत्मस्वरूप को समझकर आत्मसात् किया।

पूज्य गुरुदेवश्री के ४५ साल के सोनगढ़ के सुवर्णकाल दरम्यान अनेकों शिष्यरत्न हुए। उनमें से एक प्रमुख शिष्यरत्न ऐसे आदरणीय पूज्य भाईश्री लालचंदभाई हुए। पूज्य श्री लालचंदभाई ने बहुत समय तक सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेवश्री की छत्रछाया में रहकर, आचार्य भगवंतों के मूल तात्त्विक रहस्यों को

अपने ज्ञान सरोवर के प्रकाश के साथ मिलान करके, आचार्य भगवान और पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस तरह से शुद्धात्मा का रहस्य चारों ओर से विस्तृत किया हैं, उसे भली-भाँति अवधारण करके छठवीं गाथा के निमित्त से अपने शुद्धात्मा को स्पर्श करके अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद चख लिया।

यह अनुभव कैसे हो उसकी इस पुस्तक में विधि है। रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है यह। मैं तो त्रिकाल मुक्त हूँ, इसप्रकार त्रिकाल अकारक-अवेदक हूँ। इसप्रकार स्वयं का जो आत्मा जैसा है उस आत्मा को विकल्प द्वारा, मन के संग द्वारा, राग के संबंधवाले ज्ञान द्वारा, जिस ज्ञान का लक्ष राग के ऊपर है अभी, ऐसे ज्ञान द्वारा, वह विचार करता है वस्तु का, तो उसका मिथ्यात्व तो गलता है परंतु मिथ्यात्व टलकर सम्यग्दर्शन नहीं होता। कि यहाँ तक आने के बाद:

उसे नयों के विकल्प कैसे छूटें?

और साक्षात् अनुभव कैसे हो?

वह यह '**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव - अपूर्व स्पष्टीकरण**' पुस्तक में उसकी स्पष्टता बहुत ही सुंदरता से पूज्य श्री लालचंदभाई ने किया है।

यह पुस्तक पूज्य भाईश्री के ११ विडिओ प्रवचन नंबर LA ४०४, LA ४०५, LA ४०६, LA ४०७, LA ४०८, LA ४०९, LA ०६६, LA ०६७, LA ०६८, LA ४१० तथा LA ४११ के अक्षरशः प्रवचनों के रूप में प्रकाशित की गई है।

प्रस्तुत **द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** पर पूज्य श्री लालचंदभाई की **अपूर्व स्पष्टीकरण**रूप वाणी की वीडियो रिकॉर्डिंग ब्र. संध्याबहन जैन (शिकोहाबाद) द्वारा की गई हैं। संस्था इस कार्य हेतु उनका आभार व्यक्त करती है।

अक्षरशः प्रवचन लिखने का, टायपिंग का और प्रूफ रीडिंग का कार्य पूज्य श्री लालचंदभाई अमरचंदभाई मोदी अक्षरशः प्रवचन टीम ने तैयार किया है। संस्था इस कार्य के लिए पूरी टीम का आभार व्यक्त करती है।

इस पुस्तक की प्रिंटिंग और बाइन्डिंग का कार्य Design Scope "अमरभाई पोपट" और "शार्प ऑफसेट प्रिंटर्स" वाला धर्मेशभाई शाह द्वारा हुआ है। संस्था उनका भी आभार मानती है।

यह पुस्तक दो वेबसाईट पर उपलब्ध है:-

AtmaDharma.com और **AtmaDharma.org**

हमारे ट्रस्ट की यह २१ वीं पुस्तक है। इस पुस्तक में जाने-अनजाने में कोई क्षति रह गई हो, तो हम क्षमा चाहते हैं। अगर आपको कोई त्रुटि मिलती है, तो **atmadharma.com@gmail.com** पर बताएं।

अंत में इस '**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव - अपूर्व स्पष्टीकरण**' पुस्तक में स्वभाव का स्पष्टीकरण जो पूज्य श्री लालचंदभाई ने किया है ऐसा स्वभाव, सभी जीवों को, पक्षातिक्रांत हो कर प्राप्त हो, ऐसी मंगल भावना।

ली.

ट्रस्टी श्री कुंदकुंद कहानामृत प्रभावना मंदिर ट्रस्ट, राजकोट

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव - अपूर्व स्पष्टीकरण मे से ख़ास चुने हुए बिंदु

१. 'मैं अकारक, मैं अवेदक' ऐसा जो विकल्प, 'मैं जाननहार, करनेवाला नहीं, मैं तो जाननहार' ऐसा विकल्प, वह संसार है।

२. भूतार्थनय से जान ज्ञान को तो निरालंबी दिखेगा। त्रिकाली द्रव्य तो निरालंबी है परंतु जिस उपयोग में आत्मा जानने में आता है वह भी निरालंबी है। सत् अहेतुक है, पर्याय में भी।

३. ध्येय में ध्यान की नास्ति है ऐसी ध्येय की अस्ति है, उसका अनुभव वह मस्ती!

४. श्रद्धा स्वभाव से एकांत। ज्ञान स्वभाव से अनेकांत। श्रद्धा का विषय एकांतिक है। श्रद्धा सच्ची होवे तो ज्ञान अनेकांतिक, दो नयों का ज्ञाता। श्रद्धा झूठी हो तो ज्ञान झूठा। ज्ञान झूठा हो तो दो नयों का ज्ञाता कहाँ से होवे?

५. दो नयों के विषय को समानरूप से सत्यार्थ माने और उसका श्रद्धान करे, तो श्रद्धान प्रगट नहीं होता।

६. (१) नयज्ञान सापेक्ष है। (२) नय विकल्परूप है और (३) नय अंशग्राही है।

७. द्रव्य को भी स्वभाव से देख, ज्ञान की पर्याय को भी उसके स्वभाव से देख, नय से मत देख। तब विकल्प छूट जायेगा।

८. पर्याय का दो स्वभाव बताये। एक तो पर्याय होने योग्य होती है, वह उसका स्वभाव है। और दूसरा - इस ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही जानने में आता है, स्वभाव से ही जानने में आता है। पर्याय स्वतंत्ररूप से कर्ता होकर द्रव्य का लक्ष करती है।

९. स्वभाव में नय नहीं हैं। स्वभाव का जो ज्ञान प्रगट होता है उसमें भी नय नहीं होते।

१०. सम्यग्दृष्टि होने के बाद दो नयों का ज्ञाता होता है। सम्यग्दर्शन होने से पहले दो नयों का कर्ता होता है, ज्ञाता नहीं होता।

११. नयों के विकल्प हैं, वह शरीर का एक भाग है, ज्ञेय का भेद है, ज्ञान का भेद नहीं है।

१२. पूर्व में अनंतबार द्रव्यलिंगी मुनि हुआ, नयज्ञान तक आ गया, और व्यवहारनय हेय है वहाँ तक आया, परंतु निश्चयनय उपादेय है ऐसा (शल्य) रह गया।

१३. व्यवहार का पक्ष सूक्ष्म रह जाता है, यह निश्चय का पक्ष अर्थात् व्यवहार का पक्ष है।

१४. निषेध का भी विकल्प नहीं, विधि का भी विकल्प नहीं, विकल्प मात्र टल जाता है और स्वभाव में ढल जाता है, तब स्वानुभव होता है।

१५. श्रद्धा निर्विकल्प होने से बलवान है। ज्ञान की पर्याय सविकल्प होने से कमजोर है। श्रद्धा के बल से ही उपयोग अंदर में आता है। क्योंकि 'मैं पर को नहीं जानता' उसमें ज्ञान का बल नहीं है अपितु श्रद्धा का बल है।

१६. 'आत्मा पर को जानता नहीं है' वह श्रद्धा का बल है। और 'मैं पर को जानता हूँ' वह मिथ्यात्व है, ज्ञान का दोष नहीं है। श्रद्धा के दोष से ज्ञान का दोष आया है।

१७. एक ज्ञान सच्चा करने जाता है परंतु श्रद्धा उसकी विपरीत रहती है, वह उसे पता नहीं चलता।

१८. स्वभाव सर्वथा होता है।

१९. स्याद्वाद का - कथंचित् का अभाव होने पर भी, सर्वथा में आयेगा तो भी निश्चयाभास नहीं होगा, अनुभव हो जायेगा, जा!

२०. आत्मा में स्याद्वाद का अभाव, मगर अनुभवज्ञान में स्याद्वाद का सद्भाव है।

२१. अनंत नय हैं, एक एक पदार्थ अनंत गुण से और अनंत धर्म से युक्त है।

२२. गुण होता है उसकी पर्याय होती है और धर्म होता है उसकी पर्याय नहीं होती। गुण निरपेक्ष है और धर्म सापेक्ष है - धर्म परस्पर सापेक्ष हैं।

२३. एक-एक नय के द्वारा एक-एक गुण को जानो, एक-एक नय के द्वारा एक-एक धर्म को जानो, तो अनंतकाल चला जाये परंतु आत्मा का अनुभव नहीं होता। उसका मार्ग कोई दूसरा होना चाहिये।

२४. ज्ञानी को एक गुण के प्रति भी उपयोग जाता नहीं है उसीप्रकार एक धर्म के प्रति भी उपयोग जाता नहीं है, धर्मी के प्रति उपयोग लगा हुआ है, उसमें धर्म जानने में आ जाते हैं।

२५. सामान्य के ऊपर जहाँ उपयोग लगा, वहाँ सामान्य-विशेष समस्त पूरा ज्ञेय, अनंत गुणात्मक और अनंत धर्मात्मक पूरा ज्ञेय, ध्येय पूर्वक ज्ञेय हो जाता है, जानने में आ जाता है। ध्येय का ध्यान और ज्ञेय का ज्ञान, समय एक।

२६. कर्ता और भोक्तापना पर्याय का धर्म है। अकारक और अवेदक द्रव्य का स्वभाव है।

२७. द्रव्य का स्वभाव, स्वभाव से ही अकारक-अवेदक है। राग को भी नहीं करता और वीतरागभाव को भी नहीं करता। दुःख को भी नहीं भोगता और आनंद को भी नहीं भोगता।

२८. द्रव्य को कर्ता-भोक्ता कहना वह विभाव और कर्ता-भोक्ता मानना वह मिथ्यात्व।

२९. 'नयातिक्रांत बताया वह समय का सार है', नय से आत्मा का अनुभव नहीं होता। अनुभव के काल में नय नहीं रहते।

३०. द्रव्य का स्वभाव वह नयातीत है। उसमें नय नहीं हैं और उसे प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान, उसमें भी नय नहीं हैं। नय तो मानसिक ज्ञान का धर्म है। वह इन्द्रियज्ञान का धर्म है, नय। विकल्पवाले नय हैं ये।

३१. किसी को नय का ज्ञान न हो तो भी अनुभव हो जाता है।

३२. निश्चयनय से अकर्ता हूँ- वह तेरा विकल्प सच्चा है, विकल्प झूठा नहीं है, परंतु उससे क्या?

३३. तीन पाठ:- (१) 'लकड़ी को जलाती है उसे अग्नि कहा जाता है'- पराश्रित व्यवहार। (२) 'अग्नि उष्ण है' - भेदरूप व्यवहार। (३) 'अग्नि तो अग्नि है' - पराश्रित व्यवहार गया, भेदाश्रित व्यवहार गया और अभेद वस्तु अनुभव में आई।

३४. तीन पाठ:- (१) छह द्रव्य को जाने उसे ज्ञान कहने में आता है, असद्भूत व्यवहार के शल्य ऐसे घुस गए। (२) फिर ज्ञान वह आत्मा, यह भेद का शल्य घुस गया। (३) फिर ज्ञायक तो ज्ञायक है। दोनों शल्य निकल जाएं और अनुभव हो जाए।

३५. नय सापेक्ष होता है और स्वभाव निरपेक्ष होता है।

३६. निश्चयनय तो मात्र स्वभाव का इशारा करता है। व्यवहारनय में तो स्वभाव का इशारा करने की शक्ति भी नहीं है।

३७. स्वभाव नय से सिद्ध नहीं होता, स्वभाव स्वभाव से ही सिद्ध होता है।

३८. द्रव्य पर्याय को नहीं करता क्योंकि पर्याय भिन्न है। एक में दूसरे की नास्ति है, तो पर्याय को कैसे करे?

३९. आत्मा पर्याय मात्र से भिन्न है तो पर्याय सर्वथा भिन्न है या कथंचित् भिन्न-अभिन्न है?

४०. पर्याय द्रव्य को अड़ती नहीं, द्रव्य पर्याय को नहीं अड़ता। सत्ता एक है और सत् दो हैं।

४१. उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्त्, सत्ता एक, परंतु सत् उसमें तीन हैं - उत्पाद सत्, व्यय सत् और ध्रुव सत् है।

४२. आत्मा पहले बंधन करे और फिर बंध को छोड़े और फिर मोक्ष को करे? ऐसे बाद में या पहले कुछ है नहीं। वह तो प्रथम से ही अकारक है।

४३. जेसे शुभाशुभ भाव बंध के कारण हैं, उसीप्रकार नयों के विकल्प भी बंध के कारण हैं।

४४. व्यवहारनय का विकल्प और निश्चयनय का विकल्प बंध का कारण होने पर भी आत्मा के द्रव्य और पर्याय का निर्णय करने के लिये, प्राथमिक भूमिका में, उसे व्यवहारनय से साधन भी कहने में आता है।

४५. व्यवहारनय से ज्ञान पर को जानता है और निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है - ऐसा नहीं है।

४६. ज्ञान उत्पादरूप होता है वह उत्पादरूप पर्याय ध्रुव को ही प्रसिद्ध करती है, पर को नहीं।

४७. ज्ञान की पर्याय, उसका विषय बदलता नहीं है। यह ज्ञान की पर्याय के स्वभाव की बात चल रही है। यह सम्यग्ज्ञान-मिथ्याज्ञान की बात नहीं है।

४८. ज्ञान की पर्याय का अनादि-अनंत ऐसा स्वभाव है, कि वह ज्ञान जो उत्पन्न होता है वह अपने आत्मा को ही जानता प्रगट होता है, क्योंकि उपयोग से आत्मा अनन्य है।

४९. जो सामान्य का विशेष हो, वह विशेष उसके ही सामान्य को प्रसिद्ध करता है, दूसरे को नहीं करता।

५०. लक्ष्य को प्रसिद्ध करती है और अलक्ष्य को प्रसिद्ध नहीं करती, उसे लक्षण कहने में आता है।

५१. ज्ञान की पर्याय आत्मा को जानते-जानते, उसमें लोकालोक का प्रतिभास होता है। इस प्रतिभास को परप्रकाशक कहा जाता है।

५२. सूर्य का प्रकाश मकान को प्रसिद्ध करता है, सूर्य को प्रसिद्ध नहीं करता -ऐसा कोई कहे पागल तो? तो सूर्य को प्रसिद्ध नहीं करेगा उसका प्रकाश? अंधेरा हो जायेगा प्रकाश में? नहीं होगा।

५३. वह ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध किया करता है, समय-समय। यह अनुभव का आसान में आसान उपाय है।

५४. ज्ञान की पर्याय आत्मा को जानती है। किस नय से? प्रश्न ही नहीं है, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही है।

५५. निर्णय में आ गया ऐसा जो मानता है, निर्णय को आगे करता है, वह तो निर्णय में भी नहीं है। निर्णय में ज्ञायक तत्त्व आगे होता है, उसे निर्णय होता है।

५६. निर्णयवाले को रात-दिन एक ज्ञायक ही स्मरण में आता रहता है।

५७. निर्णयवाला ऐसा जानता है, की इस अपूर्व निर्णय का मेरे में अभाव है क्योंकि वह पर्याय है।

५८. व्यवहार का निषेध करे उसका ही नाम निश्चयनय कहलाता है।

५९. पर को नहीं जानता उसमें व्यवहार का निषेध हुआ। निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता उसमें निश्चयनय का निषेध आया। निश्चयनय के विकल्प का निषेध है, उसके विषय का निषेध नहीं है।

६०. किस अपेक्षा से कहने में आता है? यहाँ क्या प्रयोजन सिद्ध करना है? वह समझना चाहिये।

६१. वह नहीं भोगता आनंद को तब ही आनंद प्रगट होगा और पर्याय आनंद को भोगेगी, भोगेगी और भोगेगी! ज्ञान ऐसा जानेगा कि पर्याय भोगती है, मैं नहीं भोगता।

६२. मैं अकारक और अवेदक हूँ, मैं परिणाम का करनेवाला और परिणाम का वेदनेवाला नहीं हूं।

६३. द्रव्य को द्रव्य के स्वभाव से देख और पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देख तो तो तुझे अनुभव हो जायेगा।

६४. जाननहार जानने में आता है वर्तमान में, और जानने में आया ही करता है, किसी भी काल में ज्ञान जानना छोड़ता ही नहीं। तो फिर अनुभव क्यों नहीं होता? कि तुझे कहाँ ऐसा विश्वास है कि जाननहार जानने में आता है?

६५. निमित्त के लक्ष से जाननहार जानने में नहीं आता। त्रिकाली उपादान के लक्ष से जाननहार जानने में आता है, जानने में आता है और जानने में आता है। लक्ष पलट दे न!

६६. जानता है और जानने में आता है, जानता है और जानने में आता है, यह function (फंक्शन, कार्य) चालू ही है, अनादि से।

६७. 'जानता है ' वह ज्ञान प्रधान कथन हुआ और 'आत्मा जानने में आया करता है' वह ज्ञेय प्रधान कथन हुआ। 'जानता है' वह ज्ञान और 'जानने में आता है' वह ज्ञेय। जानता भी आत्मा है और जानने में आता भी आत्मा है।

६८. जहाँ ज्ञेय तुम्हारे श्रद्धा-ज्ञान में रहेगा, वहाँ ही तुम्हारा उपयोग जायेगा।

६९. आबालगोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आया ही करता है, बिना प्रयत्न के हों! कुछ पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता और जानने में आया ही करता है। जानता है और जानने में आता है, ऐसे स्वभाव का स्वीकार करना उसका नाम पुरुषार्थ है।

७०. प्रकार दो हैं, नय और प्रमाण के: (१) 'विकल्पात्मक नय' भी होता है और (२) 'निर्विकल्पात्मक नय' भी कहने में आता है। (१) 'विकल्पात्मक प्रमाण' होता है और (२) 'निर्विकल्प प्रमाण' भी होता है।

७१. अभेद ध्येय में द्वैतपना नहीं है और अभेद ज्ञेय होता है उसमें भी द्वैतपना नहीं है। यह क्या?

७२. ध्येय में गुणभेद दिखता नहीं और स्वज्ञेय हुआ उसमें पर्याय का भेद दिखता नहीं। फिर भी गुण हैं और पर्यायें भी हैं।

७३. जाननहार जानने में आता है इतने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो जाता है? इतना आसान है? स्वभाव आसान होता है, विभाव मुश्किल होता है।

७४. यह प्रयोग की बात चलती है। यह बात 'जाननहार जानने में आता है' यह धारणा की बात नहीं है।

७५. दो प्रकार के अभेद एक अभेद होकर जानने में आते हैं।

७६. 'जाननहार जानने में आता है' - यह साधारण बात नहीं है, इसकी कीमत करना सभी।

७७. व्यवहार से ज्ञाता अर्थात् क्या? कि मन उसे जानता है और कहा जाता है कि आत्मा उसे जानता है, उसका नाम 'व्यवहार से' कहा जाता है।

७८. निर्मल पर्याय का आत्मा व्यवहार से कर्ता है, व्यवहार से कर्ता अर्थात् क्या? कर्ता नहीं है, कर्ता पर्याय की पर्याय है और उपचार आया आत्मा पर।

७९. होने योग्य होते हैं उन्हें जानता नहीं। होने योग्य होते हैं, ऐसा जानकर 'जाननहार को जानता हूँ'।

८०. 'उपचार से कर्ता नहीं है', यह केवलज्ञान का कक्का है।

८१. निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है, स्वभाव से दूर हो गया। उसे ऐसा लगता है कि मैं आगे बढ़ा लेकिन कुछ आगे नहीं बढ़ा है, विकल्प की जाल में अटका है वह।

८२. एक को माने तो भी सम्यग्दर्शन, नौ को भूतार्थनय से जाने तो भी सम्यग्दर्शन!

८३. निश्चयनय से आत्मा को जानता है तो व्यवहारनय से पर को जानता है ऐसा आयेगा। अतः निश्चयनय नहीं, परंतु स्वभाव से ही ज्ञान आत्मा को जाना करता है।

८४. शिष्यों का यह ही प्रश्न है कि हमें क्यों अनुभव नहीं होता? नयों के विकल्प में अटक गया है इसलिये।

८५. निश्चयनय कथन यथार्थ करता है। व्यवहारनय कथन ही विपरीत करता है। ऐसे इन दो कथनों में एक कथन झूठा और एक कथन सच्चा, तब तो अभी नय में आया कहलाता है।

८६. व्यवहारनय तो अन्यथा ही कथन करता है। आहाहा! निश्चयनय कथन सत्य करता है। इसलिये पञ्चाध्यायी में कहा कि निश्चयनय पर दृष्टि रखनेवाला ही सम्यग्दृष्टि है।

८७. व्यवहार झूठा न लगे तब तक तो निश्चय सच्चा नहीं लगता!

८८. एक व्यवहार और एक निश्चय। हैं दोनों व्यवहार! परंतु एक भेद द्वारा अभेद को समझाता है और एक सीधा अभेद को बताता है।

८९. व्यवहारनय कहता है कि ज्ञान है सो आत्मा, निश्चयनय कहता है कि ज्ञायक सो आत्मा। एक कहता है कि ज्ञान आत्मा को जानता है, दूसरा कहता है कि आत्मा आत्मा को जानता है। एक भेद द्वारा और एक अभेद से।

९०. 'अकर्ता है' वह तो स्वरूप है उसका। परंतु 'मैं अकर्ता हूँ' ऐसा जो विकल्प उठता है, तब वह विकल्प उसका कर्म बन गया, ज्ञान कर्म नहीं हुआ। अनुभव नहीं हुआ उसमें।

९१. निश्चयनय का विकल्प सच्चा, विकल्प की उपस्थिति अनुभव में बाधक।

९२. असल में तो वह आगम की भाषा है या वह आत्मा की भाषा है? वह विचारने जैसा है। वह अंदर से उसे आया है या आगम कहता है अकर्ता इसलिए अकर्ता है?

९३. 'स्वभाव से अकर्ता हूँ' इसलिए 'निश्चयनय से अकर्ता हूँ' ऐसा स्थूल विकल्प गया। 'स्वभाव से अकर्ता हूँ' ऐसा सूक्ष्म विकल्प रहा, वह भी छूटकर अनुभव होता है, ऐसा संधिकाल है।

९४. पर को नहीं जानता और जाननहार जानने में आता है- ऐसे दो विकल्प उठते थे विधि-निषेध के, जब स्वभाव में आया, दोनों विकल्प छूट जाते हैं।

९५. निश्चयनय से स्वीकारे वह अलग, और स्वभाव से स्वीकारे वह अलग। निश्चयनय से स्वीकारता है वह अपूर्व निर्णय नहीं है। स्वभाव से स्वीकार आता है वह अपूर्व निर्णय है, उसे अनुभव जरूर होता है।

९६. इस नय से ऐसा हूँ, तो दूसरे नय से दूसरा हूँ, ऐसा आता है।

९७. नयवाला प्रमाण में ही खड़ा है, स्वभाववाला प्रमाण को उल्लंघता है।

९८. नय तो सापेक्ष ही है न? व्यवहारनय कहो तो निश्चयनय गौणरूप से आ जाता है, निश्चयनय कहो तो व्यवहारनय गौणरूप से आ जाता है। मुख्य-गौण होता है न नय में?

९९. उपादेय तत्त्व में दो पहलू नहीं हैं, जिसका लक्ष करना है उसमें दो पहलू नहीं हैं। जिसमें तुम्हें अहम् करना है, उसके दो पहलू नहीं होते।

१००. नय निरपेक्ष नहीं होता, स्वभाव निरपेक्ष होता है।

१०१. पहले पर्याय नक्की मत कर, पहले द्रव्य नक्की कर।

१०२. चौदह गुणस्थान जीवतत्त्व नहीं हैं, अजीवतत्त्व हैं। अजीव को जीव मानना छोड़ दे।

१०३. पर्याय को गौण कर और द्रव्य के विकल्प का अभाव कर।

१०४. स्वभाव से विचार तो स्वभाव की प्राप्ति होगी।

१०५. भूतार्थनय से तू आत्मा को जान मतलब क्या? पर्याय से रहित आत्मा है, नास्ति है ऐसे आत्मा को जान तू! भूतार्थनय से पर्याय को भी जान, कि पर्याय का कोई कर्ता नहीं है, पर्याय सत् अहेतुक है जा। तो ही द्रव्यदृष्टि होगी और कर्ताबुद्धि छूटेगी।

१०६. ११ वीं गाथा में पर्याय से निरपेक्ष द्रव्य बताया। १३ वीं गाथा में द्रव्य से निरपेक्ष पर्याय है वह बताया। द्रव्य से निरपेक्ष पर्याय होती है? कि हाँ। पर्याय से निरपेक्ष द्रव्य होता है? कि हाँ। तो एकांत होगा? कि सम्यक् एकांत हो जायेगा।

१०७. जहाँ कथंचित् कहा तो सापेक्ष हो गया। ज्ञान सच्चा करने गया, श्रद्धा झूठी हो गई। पहले ज्ञान सच्चा होता ही नहीं! श्रद्धा सच्ची होती है तो ज्ञान सच्चा होता है।

१०८. पहले निरपेक्ष और फिर सापेक्ष का ज्ञान होता है।निरपेक्ष के श्रद्धान में, निरपेक्ष का ज्ञान और सापेक्ष का ज्ञान, तीनों आ जाते हैं। अकेली श्रद्धा निरपेक्ष नहीं, ज्ञान भी निरपेक्ष का होता है।

१०९. स्वभाव का अवलंबन लेने पर द्रव्य-पर्याय दोनों का युगपद् एक समय में ज्ञान होता है। नय के विकल्प से अनुभव नहीं होता, दोनों का ज्ञाता नहीं होता, नय विकल्प का कर्ता बन जाता है।

११०. निश्चयनय का पक्ष व्यवहारनय के पक्ष को छुड़ाता है, और स्वभाव निश्चयनय के पक्ष के विकल्प को छुड़ाता है, तब अनुभव होता है।

१११. निश्चयनय एक धर्म को स्वीकारता है। स्वभावदृष्टि में पूरा धर्मी आ जाता है।

११२. नय से एक धर्म जानने में आता था। स्वभावदृष्टि से पूरा धर्मी ज्ञात हो जाता है।

११३. आश्रय एक का और ज्ञान अनंत का हो जाता है। आश्रय सामान्य का और ज्ञान सामान्य-विशेष पूरे आत्मा का।

११४. निश्चयनय तो एक धर्म को अंगीकार करता है और बाकी के धर्म रह जाते हैं।

११५. नय से एक-एक धर्म का ज्ञान होता है। स्वभाव से अनंत धर्म का ज्ञान होता है। नय मानसिक ज्ञान है, वह अतीन्द्रियज्ञान है।

११६. दो नयों को जानते हैं ज्ञानी। क्रम से जानना वह जानना ही नहीं है। द्रव्य-पर्यायस्वरूप सम्पूर्ण वस्तु अक्रम से ज्ञात हो जाते हैं।

११७. भगवान जो आत्मा सामान्य ज्ञायकभाव है, वह अनादि-अनंत अपने स्वभाव से ही शुद्ध है। अशुद्धता टले तो शुद्ध है, ऐसा भी नहीं है, और 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा विकल्प करे तो शुद्ध है, ऐसा भी नहीं है।

११८. व्यवहारनय से विचारे तो भी प्रमाण में और निश्चयनय से विचारे तो भी प्रमाण में आ जाता है। सापेक्ष है न, इसीलिये।

११९. नयों के द्वारा समझाया जाता है परंतु नयों से वस्तु तुझे अनुभव में नहीं आयेगी, अनुमान में आयेगी लेकिन अनुभव में नहीं आयेगी।

१२०. श्रद्धा के बल से ही उपयोग अंदर में आता है। श्रद्धा विपरीत है अनंतकाल से। श्रद्धा का दोष पहले टलता है, फिर चारित्र का दोष टलता है।

१२१. व्यवहारनय संयोग को बताता है, निश्चयनय स्वभाव को बताता है। दोनों विकल्पात्मक नय हैं।

१२२. लोग ज्ञान के बल के ऊपर चले गये, श्रद्धा का बल चाहिये।

१२३. ज्ञान निर्बल है, सविकल्प है। श्रद्धा निर्विकल्प है। श्रद्धा अभेदग्राही है, ज्ञान भेदाभेदग्राही है।

१२४. निश्चयनय से अकर्ता हूँ ऐसा नहीं, स्वभाव से ही अकर्ता हूँ। निश्चयनय से ज्ञाता हूँ ऐसा नहीं, स्वभाव से ही ज्ञाता हूँ।

१२५. निश्चयनय व्यवहार का निषेध करता है और स्वभाव निश्चयनय का निषेध करके अनुभव कराता है।

१२६. व्यवहारनय तो अन्यथा कथन करता है। निश्चयनय तो जैसा स्वरूप है ऐसा प्रतिपादन करता है। परंतु उससे क्या?

१२७. स्वभाव का जोर आने पर विकल्प सहज ही छूटते हैं। छोड़ता नहीं है, विकल्प की उत्पत्ति होती नहीं है।

१२८. विकल्प को छोड़ता भी नहीं और निर्विकल्प को करता भी नहीं, वह तो ज्ञायक को जानता है - वहाँ यह स्थिति बन जाती है।

१२९. विकल्प का अर्थ खंडज्ञान है, विकल्प का अर्थ राग भी है।

१३०. पहले व्यवहार का निषेध उसे विकल्प द्वारा करना पड़ता है। फिर जब ऐसा निश्चयनय का जोर आ जाता है तब उसे निषेध के लिये विकल्प नहीं करना पड़ता, विकल्प के बिना निषेध वर्तता रहता है।

१३१. आत्मा का आश्रय आया नहीं है और निश्चयनय के विकल्प का पक्ष रहा करता है। जब आत्मा का आश्रय आता है, तब निश्चय के पक्ष का विकल्प छूटकर अनुभव हो जाता है।

१३२. व्यवहार का निषेध वह विकल्प का दुरुपयोग। स्वभाव ग्रहण किया विकल्प में, तो विकल्प का सदुपयोग हुआ। वह विकल्प का जो सदुपयोग रहता है, वह विकल्प टूटनेवाला है। जिस विकल्प में दुरुपयोग है, वह विकल्प टूटता नहीं।

१३३. पर तो ज्ञात नहीं होता परंतु मेरे विशेष में सामान्य ज्ञात होता है ऐसा जो विकल्प, एक अपेक्षा से वह सदुपयोग है, व्यवहार की अपेक्षा से। परंतु वह विकल्प की भी अधिकता नहीं आती। यदि अधिकता आ जाये तो निश्चयनय रहता नहीं।

१३४. विकल्प में स्वभाव की अधिकता होती है इसलिए यह विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव अवश्य होता है उसे।

१३५. स्वभाव के लक्ष से ही स्वाध्याय करना, निमित्त के लक्ष से नहीं, भेद के लक्ष से नहीं, राग के लक्ष से नहीं, उघाड़ के लक्ष से नहीं। उसमें उर्ध्व आत्मा, आत्मा आना चाहिये, बस, तो ही स्वाध्याय सच्चा है।

१३६. स्वभाव से देखो तो विकल्प छूट जायेंगे। नय से देखा करोगे तो विकल्प रहेंगे।

१३७. स्वभाव से विचारने पर और स्वभाव से अनुभव करने पर, इन दोनों में फर्क है। स्वभाव से विचारने पर- वह मानसिक है।

१३८. 'मैं स्वभाव से ही शुद्ध हूँ' -उसमें व्यवहारनय से अशुद्ध हूँ, वह दोष छूट जाता है और निश्चयनय से शुद्ध हूँ वह विकल्प छूट जाता है।

१३९. ऐसा द्रव्य स्वभाव त्रिकाली है कि जो परिणाम होते हैं उन्हें करता भी नहीं और परिणाम होते हैं उन्हें जानता भी नहीं। ऐसा द्रव्य स्वभाव निष्क्रिय परमात्मा है।

१४०. स्वभाव से ही अकारक और अवेदक है। किसी भी होते हुये परिणाम को करता नहीं और होते हुये परिणाम को भोगता नहीं।

१४१. जैनदर्शन वस्तु-दर्शन है। इसके दो भेद, द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव। द्रव्य निष्क्रिय और पर्याय सक्रिय, अनादि-अनंत दोनों।

१४२. प्रमाण से एक सत्ता है, नय विभाग से देखो तो दो सत्ता हैं। स्वभाव से देखो तो भी दो सत्तायें हैं, अलग-अलग। अभेदनय से एक सत्ता है, भेदनय से दो सत्ता हैं। वस्तु का स्वरूप है ऐसा।

१४३. अज्ञानी हो, साधक हो, परमात्मा हो, पर्याय में कर्ता और भोक्तापना पर्याय का स्वभाव से ही हुआ करता है।

१४४. होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है। जाननहार को जिसने जाना उसे ऐसा भासित होता है कि होने योग्य होता है।

१४५. आत्मा अकारक और अवेदक है, मूल बात यह है। पर्याय करती है तब द्रव्य अकर्ता रहता है।

१४६. आत्मा कर्ता-भोक्ता है ऐसी भ्रांति अनादिकाल से है, तो भी आत्मा कर्ता होता नहीं है, अकर्तापना छोड़ता नहीं है।

१४७. मिथ्यात्व के परिणाम को जीव करता है वह उपचार का कथन है, व्यवहार का कथन। वह उपचार जो व्यवहार है वह तुझे सत्यार्थ लगा है इसलिये तेरा अज्ञान रह गया।

१४८. गुरुदेव ने वे दो विभाग अलग किये -द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव -इस की बात (प्रवचन रत्नाकर के) ११ भाग तुम पढ़ो तो उसमें मिलेगी।

१४९. आत्मा को अकर्ता रखकर पर्याय पर्याय को करती है ऐसा जानो। ऐसा जानो कि मैं तो अकर्ता हूँ और परिणाम परिणाम से होता है।

१५०. करना-भोगना वह तो पर्याय का स्वभाव है, जीव का स्वभाव नहीं है। जीव तो अकारक-अवेदक निष्क्रिय परमात्मा है।

१५१. मिथ्यात्व की पर्याय होती है तब मिथ्यात्व की पर्याय का भगवान आत्मा अकर्ता है। वह मिथ्यात्व की पर्याय टल जाती है तब अकर्ता हुआ, ऐसा नहीं है। वह तो प्रथम से ही अकर्ता है।

१५२. पर्याय मिथ्यात्व को करती है।सम्यग्दर्शन को करती है, केवलज्ञान को करती है। ऐसा पर्याय स्वभाव है उसे जानने का निषेध नहीं है, परंतु 'मैं करता हूँ' उसका निषेध है।

१५३. पर्याय के कर्ता-भोक्ता धर्म जैसे हैं वैसे जानने में आ जाते हैं। जानने में आ जाते हैं, उन्हें जानता नहीं है, लक्ष नहीं है न वहाँ।

१५४. परिणाम होने योग्य होते हैं और जाननहार जानने में आता है। होने योग्य होता है वह जनाता नहीं है, जाननहार जनाता है।

१५५. पर्याय को मैं करता हूँ वह कर्ताबुद्धि छोड़ दे कि निश्चय से भी कर्ता नहीं हूँ और व्यवहार से भी कर्ता नहीं हूँ। तो व्यवहार करना हो तो क्या कहना? कि व्यवहार से उसे जानता है, इतना कह सकते हैं।

१५६. भाषा बोलता है व्यवहारनय से कर्ता और मानता है निश्चय से कर्ता, ऐसा मईल्ल धवल में पाठ आया है।

१५७. द्रव्य निश्चय से या व्यवहार से कर्ता ही नहीं है क्योंकि होने योग्य परिणाम होते हैं, इसलिये कर्तापना इसे लागु नहीं पड़ता।

१५८. सम्यग्दर्शन का निश्चय से तो कर्ता नहीं है, व्यवहार से भी कर्ता नहीं है। व्यवहार से कर्ता नहीं है अर्थात् उसकी उपस्थिति है तो यहाँ होता है, ऐसा नहीं है।

१५९. उपादानकर्ता पर्याय और निमित्तकर्ता पुराने कर्म का अभाव। परंतु उपादानकर्ता भी आत्मा नहीं और निमित्तकर्ता भी आत्मा नहीं।

१६०. पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चयनय से है तो आत्मा व्यवहारनय से कर्ता है ऐसा आ जायेगा।

१६१. गुरुदेव ने ही पर्याय स्वभाव की बात की है, षट्कारक स्वयं से होते हैं, उसका जन्मक्षण है, उसका स्वकाल है। आत्मा से पर्याय होती नहीं है।

१६२. ज्ञान में स्वच्छता है - पर्याय ज्ञात हो जाती है। जानने का प्रयत्न करे और जानने में आये, ऐसा नहीं है. सहज में ज्ञात हो जाती है।

१६३. पहले जानने का निषेध किया क्योंकि वह तो पर्यायदृष्टि थी। पर्यायदृष्टि थी उसे छुड़ायी, अनुभव हुआ तो द्रव्य-पर्याय एक समय में सब कुछ ज्ञात होता है बस! धर्मी को जानने पर धर्म भी ज्ञात हो जाते हैं।

१६४. होने योग्य होता है, वह पर्याय का स्वभाव है ऐसा तू जान। कर्ताबुद्धि छूटे और ज्ञाताबुद्धि छूटे, साक्षात् ज्ञाता होता है।

१६५. स्वभाव को जानने में नय की जरूरत नहीं है, परंतु नयातीत ज्ञान की तो जरूरत है।

१६६. पर्याय को व्यवहार से करूँ ऐसा नहीं है। भेद में है तू (तो) पर्याय को व्यवहार से जानूँ, इतना रख। अभेद में तो वह भी नहीं है, पर्याय को जानता नहीं। अभेदनय से तो पर्याय स्वयं आत्मा हो जाती है।

१६७. पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देखो तो आत्मा उसका कर्ता है वह भूल निकल जायेगी।

१६८. दोनों स्वभाव ख्याल में आये उसका नाम ज्ञाता बन गया।

१६९. दो स्वभाव ही हैं, (१) द्रव्य स्वभाव और (२) पर्याय स्वभाव। समझने जैसे यह इतना ही है। इसप्रकार से ही समझने जैसा है।

१७०. पर्याय के स्वभाव को जाने तो द्रव्य का स्वभाव दृढ़ होता है और द्रव्य का स्वभाव जाने तो पर्याय का स्वभाव दृढ़ हो जाता है।

१७१. द्रव्य अकर्ता है ऐसा स्वभाव जाने तो पर्याय का कर्तापना नहीं रहता। और पर्याय स्वयं करती है तो कर्ता का उपचार निकल जाता है। कर्ता की बुद्धि भी निकल जाती है और कर्ता का उपचार भी निकल जाता है। दो गुण होते हैं, पहले सम्यग्दर्शन, और फिर विशेष अनुभव - श्रेणी।

१७२. द्रव्य अकर्ता स्वतंत्र है, पर्याय कर्ता स्वतंत्र है - दोनों शाश्वत स्वतंत्र हैं।

१७३. द्रव्य स्वभाव में बैठे बैठे अर्थात् द्रव्य को लक्ष में लेते-लेते पर्याय का ज्ञाता हो जाता है, पर्याय का लक्ष नहीं है।

१७४. नय से विचार करता है वहाँ स्वभाव का अनुभव नहीं हुआ, विकल्प का अनुभव हुआ, ज्ञान का अनुभव नहीं हुआ, राग का अनुभव हुआ।

१७५. द्रव्य स्वभाव को जानने पर सम्यग्दर्शन होता है और पर्याय स्वभाव को यथार्थ जाने तो क्षायिक हो जाता है।

१७६. अकर्ता में बैठे बैठे कर्ता धर्म को जानता है। अकर्ता स्वभाव को छोड़े तो? कर्ताबुद्धि होती है। किसी को नहीं जान सकता, अज्ञान हो जाता है।

१७७. निश्चयनय का विकल्प भी अनुभव में बाधक है। निर्णय के लिये साधक हैं परंतु अनुभव में बाधक हैं।

१७८. जाननहार जानने में आता है उसमें चले जाओ। जानने में आ जायेगा।

१७९. मैं स्वभाव से ही ज्ञायक हूँ। निश्चयनय से ज्ञायक हूँ, ऐसा नहीं है।

१८०. पर्याय के मूल स्वभाव को मूल में से देख।

१८१. पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चय से है, तो व्यवहार से कौन करता है? कि आत्मा करता है, आ जायेगा वह।

१८२. पर्याय का कर्ता पर्याय स्वभाव से ही है।

१८३. अकेले ज्ञान में आनंद आता है। नय वाले ज्ञान में आनंद नहीं आता।

१८४. ध्येय, ज्ञेय होता है और फिर फल में, ज्ञेय - सामान्य-विशेषात्मक पूरा आत्मा, ज्ञेय हो जाता है।

१८५. उपादेयरूप से भी एक ज्ञेय, ज्ञायक - सामान्य। और जानने की अपेक्षा से भी अभेद ज्ञानपर्याय-परिणत पूरा आत्मा, सामान्य-विशेष दोनों, वह ज्ञेय।

१८६. विकल्प के द्वारा दो नयों का ज्ञाता नहीं हो सकता (और) विकल्प रहित अतीन्द्रियज्ञान, अनुभव होता है तब दो नयों का साक्षात् ज्ञाता है।

१८७. अनुभव का विषय और अनुभव, समझ गये? भेद करो तो दोनों को जानता है, अभेद से एक को जानता है और प्रमाण से भेदाभेद को जानता है। वह कुछ नहीं है, एक ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, बस!

१८८. द्रव्य को द्रव्य स्वभाव से जानता है, पर्याय को पर्याय स्वभाव से जानता है। द्रव्य को द्रव्यार्थिकनय से नहीं जानता, पर्याय को पर्यायार्थिकनय से नहीं जानता। अर्थात् किसी भी प्रकार का विकल्प उत्पन्न हुए बिना दोनों का ज्ञाता हो गया।

१८९. भगवान आत्मा ज्ञेय हो गया। ज्ञान भी एक, ज्ञेय भी एक और ज्ञाता भी एक। ज्ञेय दो, ज्ञान दो और ज्ञाता दो का, ऐसा नहीं है।

प्रकाशन

पूज्य भाईश्री की छत्रछाया मे हुए प्रकाश

इंद्रीयज्ञान ज्ञान नहीं है
द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव (गुजराती)
भेदज्ञान भजनावली

श्री कुंदकुंद कहानामृत स्वाध्याय हॉल के प्रकाशन

१. ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान	२. द्रव्यस्वभाव-पर्यायस्वभाव की चर्चा
३. जाननहार जानने मे आता है	४. आत्मजयोती
५. चैतन्य विलास	६. शुद्ध अन्तःतत्त्व
७. मंगल ज्ञानदर्पण भाग-१	८. ज्ञायक स्वरूप प्रकाशन
९. अनेकांत अमृत	१०. ज्ञान का ज्ञानत्व
११. पूज्य 'भाईश्री' के सिद्धांतों की सरिता	१२. बूँद बूँद में अमृत
१३. लंडन के प्रवचन भाग-१	१४. नयचक्र तत्त्वचर्चा
१५. आध्यात्मिक ज्ञानगोष्ठी भाग-१	१६. चितस्वरूप जीव
१७. सत् अहेतुक ज्ञान	१८. 'બે ભૂલ' - 'दो भूल'
१९. **द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव (गुजराती और हिन्दी)**	२०. **द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव - अपूर्व स्पष्टीकरण (गुजराती)**
२१. द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव - अपूर्व स्पष्टीकरण (हिन्दी)	

श्री समयसारजी स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या.

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

श्री कुंदकुंद अचार्यदेव

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो ! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो.

(अनुष्टुप)

अहो ! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना !
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां.

(शिखरिणी)

सदा द्रष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे कांई न मळे.

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयुं 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेन्द्रिमां - अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा.

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र ! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र ! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी ! तने नमुं हुं.

(स्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति ! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

क्रमबद्ध पर्याय मे महा रहस्य है। क्योंकि उसमें जैनदर्शन का रहस्य है। क्योंकि जैनदर्शन अकर्तावादी है और उसमें अकर्ता की पराकाष्ठा का स्वरूप है।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

गुरुदेव

आत्मा अकर्ता है यह जैनदर्शन की पराकाष्ठा है ऐसा दर्शानेवाले, तथा परिणाम का कर्ता परिणाम है ऐसी कर्ताकर्म की पराकाष्ठा प्रकाशित करनेवाले।

(अध्यात्म युग प्रवर्तक पूज्य श्री कानजीस्वामी)

जिनजीनी वाणी

(राग – आशाभर्या अमे आवीया)

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,
एनी कुंदकुंद गूंथे माळ रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.
वाणी भली, मन लागे रळी,
जेमां सार-समय शिरताज रे,
जिनजीनी वाणी भली रे......सीमंधर०
गूंथ्यां पाहुड ने गूंथ्युं पंचास्ति,
गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.
गूंथ्युं नियमसार, गूंथ्युं रयणसार,
गूंथ्यो समयनो सार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.......सीमंधर०
स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो,
जिनजीनो ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.
वंदुं जिनेश्वर, वंदुं हुं कुंदकुंद,
वंदुं ए ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.......सीमंधर०
हैडे हजो, मारा भावे हजो,
मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.
जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा
वाजो मने दिनरात रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.......सीमंधर०

स्व को जानना छोड़कर, पर को जानना यह भावबंध की पराकाष्ठा है

मैं जाननहार हूँ,
मैं करनार नहीं हूँ।

जाननहार ही जानने में आता है
वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

पूज्य भाईश्री लालचंदभाई

आत्मा अकर्ता है यह जैनदर्शन की पराकाष्ठा है और
वो ही जानने मे आ रहा है यह ज्ञान की पराकाष्ठा है।
विधि संबंधी सरलता की पराकाष्ठा समयसार गाथा १७-१८ मे बतायी है
(श्री कहानगुरु के लघुनंदन स्वानुभव विभूषित पूज्य 'भाईश्री' लालचंदभाई)

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव पर प्रवचन

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव
विमोचन और तत्त्व चर्चा, मांगलिक-स्तुति
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट
तारीख: १६-१०-१९९० कार्तिक कृष्ण १३-धनतेरस

प्रवचन: LA ४०४

(आत्मा) ज्ञान स्वभावी है। वह आत्मा व्यवहारनय से अपने परिणाम का कर्ता है, निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है। व्यवहारनय से अपने परिणाम का जो फल उसका भोक्ता भी है, निश्चयनय से आत्मा उस परिणाम का अभोक्ता है। ऐसे अनेक प्रकार से नय का वर्णन दो नयों के द्वारा आता है शास्त्र में। और उन दो नयों के जो विकल्प हैं, वह तीर्थंकर भगवान की वाणी में आया कि हमने दो नयों से स्वरूप का वर्णन किया है। उन्हें भावी तीर्थंकर पद्मप्रभमलधारीदेव कहते हैं हे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा, आपके ये नयकथन तो इंद्रजाल हैं। आहाहा! नयों का स्वरूप आपने भले ही कहा, परंतु नयों के विकल्प में जीव अटक जाते हैं।

समयसार में ७३ गाथा में एक बात आती है कि जिसप्रकार समुद्र में कोई तूफान आता है और भँवर आता है तो जहाज उसमें फंस जाता है, छूट नहीं सकता। परंतु वह तूफान शांत होता है तो वह जहाज छूटकर चलने लगता है। इसीप्रकार इन नयों के इंद्रजाल में अभ्यासी जीव अटक गये थे। (यह) दिखाई देता है संतों को, ज्ञानियों को। कि ये (नयज्ञान) तो मात्र अनुमान के द्वारा पदार्थ का निर्णय करने का साधन था। नयज्ञान से आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता। इसलिये तू उन नयों के विकल्पों को छोड़कर, विकल्पातीत होकर, नयातिक्रांत होकर, नय पक्षातिक्रांत

होकर आत्मा का अनुभव कर ले। तब उसके लिये २० कलश लिखे। उसमें पहला कलश आचार्य भगवान ने कहा, वह बोलो तुम।

मुमुक्षु: **य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं**
स्वरुपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति।।६७।।

पू. लालचंदभाई: उन नयों के विकल्प द्वारा जानकार फिर नयों के विकल्पों को छोड़ता है और साक्षात् आत्मा का अनुभव करता है। आहाहा! वह आनंद का अनुभव कर सकता है। इस २० कलश का ही तात्पर्य पंचाध्यायीकर्ता ने एक श्लोक में (५८४, पूर्वार्ध) कहा है, कि जीव स्व का या पर का कर्ता-भोक्ता हो या न हो। स्व अर्थात् वीतराग परिणाम और पर अर्थात् राग, स्व का या पर का। परपदार्थ से कुछ संबंध नहीं है। स्व का या पर का कर्ता-भोक्ता हो या न हो। हो तो हो, न हो तो न हो, परंतु तात्पर्य तो यह है कि ज्ञानस्वरूप जीव तो ज्ञानस्वरूप है। चित्स्वरूप जीव तो चित्स्वरूप है।

इसप्रकार जब आत्मा आत्मा को जानता है तब वे सभी धर्म हैं आत्मा में, कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता सभी धर्म रहे हुए हैं परंतु उन धर्मों को क्रम-क्रम से जानने पर विकल्प उत्पन्न होता था। क्रम से जानता है तो विकल्प उत्पन्न होता ही है, क्योंकि एक धर्म को जानता है तो दूसरा धर्म जानना रह गया, तो इच्छा उत्पन्न होती है। तब आचार्य भगवान कहते हैं, कि जब आत्मा उन नयों से पार जाननहार को जानता है, जब ज्ञायक के अंतरसन्मुख होकर, तब एक अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है। वह अतीन्द्रियज्ञान सभी धर्मों को एक समय में जान लेता है, अक्रम से। धर्मों को बेदखल नहीं किया, धर्म धर्मी में से निकाले नहीं जा सकते। परंतु एक-एक धर्म के लक्ष से होता हुआ विकल्प, वह निकल जाता है, छूट जाता है। और पूरा धर्मी, अनंत धर्मों का धारक, एक समय में अतीन्द्रियज्ञान में अक्रम, जैसा केवली जानते हैं, ऐसा श्रुतज्ञानी जानता है। अर्थात् किसी भी प्रकार का विकल्प नहीं उठता। इसलिए जीव स्व का या पर का कर्ता-भोक्ता हो या न हो, तात्पर्य तो यह है कि ज्ञानस्वरूप जीव तो ज्ञानस्वरूप है।

'होने योग्य सब होता है और जाननहार जानने में आता है' इसमें बारह अंग

का सार समा जाता है। वह इस पुस्तक में है। यह पुस्तक ऐसी है कि नयों के द्वारा अभ्यास करने के बाद जिसे अनुभव न हो रहा हो और नयों के विकल्प उसे बाधक होते हैं अनुभूति में, घातक होते हैं, बाधक और घातक। जैसा स्वरूप है ऐसा विकल्प उठाये 'मैं तो जाननहार हूँ', उससे क्या? 'मैं तो ज्ञाता हूँ' ऐसा विकल्प उठाये, उससे क्या? आहाहा! वह विकल्प छूटकर साक्षात् ज्ञाता हो जाता है। तब किसी भी प्रकार का विकल्प नय का रहता नहीं, तब बहन ने जो बोला कि आनंद को पीता है।

विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता, विकल्प शांत हो जाते हैं सभी, विकल्प विलय को प्राप्त होते हैं, सभी विकल्प। कोई विकल्प रहता है? कि सभी विकल्प चले जाते हैं। आहाहा! धर्मों का अभाव नहीं होता। एक-एक धर्म के लक्ष से क्रम-क्रम से विकल्प उठता था, वह विकल्प निकल जाता है और धर्मों का ज्ञान हो जाता है। और धर्म के लक्ष बगैर, धर्मी के लक्ष से, धर्म के लक्ष बगैर, सभी धर्मों का युगपद्, युगपद् एक समय में ज्ञान हो जाता है। यह इसका नाम अनुभव है आत्मा का। आत्मा का अनुभव कैसे हो? और नयों के विकल्प में अटका हो, उसे अनुभव होने के लिये की यह अंतिम बात है। अभ्यासी जीव के लिये है। जिसने नयों से अभ्यास किया है, यह उसके लिये है। आहाहा!

नियमसार (कलश ११९) में कहा, हे भगवान! यह तेरा नयों के विकल्प का इंद्रजाल है! उसमें अंत में फंस जाता है। कर्ता-कर्म अधिकार में एक श्लोक (९५), अंतिम कहा। आहाहा! विकल्प करनेवाला केवल कर्ता और विकल्प केवल कर्म। आता है न बहन?

मुमुक्षु: हाँ इसमें है।

पू. लालचंदभाई: लो वह। पढ़ो। पृष्ठ कौन सा है?

मुमुक्षु: पृष्ठ २३. **श्लोकार्थ :- [विकल्पक: परं कर्ता] विकल्प करनेवाला ही केवल कर्ता है और [विकल्प: केवलम् कर्म] विकल्प ही केवल कर्म है; (अन्य कोई कर्ता-कर्म नहीं है;) [सविकल्पस्य] जो जीव विकल्प सहित है उसका [कर्तुकर्मत्वं] कर्ताकर्मपना [जातु] कभी [नश्यति न] नष्ट नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! नयों के जो विकल्प उठते हैं, जैसा स्वरूप है, व्यवहारनय से कर्ता, निश्चयनय से अकर्ता, स्वरूप है वह, सच्ची बात है। वह जो नयों का वर्णन है और उसका जो वाच्य है, वह तो सच्चा है। परंतु विकल्प है न, विशेष

अपेक्षा से कर्ता, सामान्य अपेक्षा से अकर्ता। हें? आहाहा! कर्ता धर्म है, कर्ता नय है, अकर्ता नय है, भोक्ता और अभोक्ता, सभी धर्म हैं। तो एक-एक धर्म को क्रम-क्रम से जानने पर विकल्पों का जाल खड़ा होता है। आहाहा! तो वह विकल्प ही कर्म हो गया। 'मैं अकारक, मैं अवेदक' ऐसा जो विकल्प, 'मैं जाननहार, करनेवाला नहीं, मैं तो जाननहार' ऐसा विकल्प, वह संसार है। ऐसा विकल्प संसार है। जाननहार है और जाननहाररूप विकल्प उठाता है! आहाहा! उसमें अनुभव नहीं होता। पश्चात वह विकल्प छूट जाता है।

यह विकल्प छूटकर अनुभव कैसे हो? तू द्रव्य को भी नय से मत देख, उसके स्वभाव से देख। और पर्याय को भी नय से मत देख, अपितु स्वभाव से देख। निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है, ज्ञान की पर्याय निश्चयनय से आत्मा को जानती है, वह कथन सच्चा है परंतु उसमें अनुभव नहीं है।

तब क्या करना? कि ज्ञान का स्वभाव, स्वभाव से ही आत्मा को जानने का है। जाना ही करता है अनादि-अनंत। तेरे विकल्प की उसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय को उसके स्वभाव से देख कि ज्ञान की पर्याय... सूर्य का प्रकाश तो सूर्य को प्रसिद्ध किया ही करता है। आहाहा! 'सूर्य का प्रकाश निश्चयनय से सूर्य को प्रसिद्ध करता है और व्यवहारनय से घट-पट को प्रसिद्ध करता है' (उन) नयों के विकल्प को छोड़ दे। आहाहा!

ज्ञान में ज्ञायक आबालगोपाल सभी को जानने में आया ही करता है। आहाहा! उसका स्वीकार कर ले अंतर में जाकर। विकल्प छूट जायेगा, अनुभव हो जायेगा। ऐसी अंतिम बात इसमें अभ्यासी जीव के लिये है यह। अभ्यास करके विकल्पों द्वारा निर्णय किया हो। विकल्प द्वारा निर्णय किया हो, कदाचित् सच्चा भी हो, ऐसा हम ले लेते हैं, झूठा नहीं। क्योंकि जैसे धर्म हैं ऐसे धर्म को उसने स्वीकार किया न? विकल्पात्मक ज्ञान में, मानसिक ज्ञान में, उससे क्या? आहाहा! अनुभव नहीं होता उसमें।

समयसार तो समयसार है! और कर्ता-कर्म अधिकार में वे २० कलश लिखे हैं। स्थापना की- एक नय कहता है कर्ता है, दूसरा नय कहता है अकर्ता है, इसप्रकार चित्स्वरूप जीव के विषय में दो नयों के दो पक्षपात हैं। परंतु तत्त्ववेदी तो ऐसा जानता है कि चित्स्वरूप जीव तो चित्स्वरूप है। अर्थात् दो धर्म रखे, कर्ता-

अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता। धर्म को उड़ाया नहीं जा सकता, परंतु धर्म के लक्ष से जो विकल्प है, धर्मी का लक्ष करने पर वह विकल्प छूट जाता है और धर्मों का ज्ञान हो जाता है। धर्मी के आश्रय से धर्म का ज्ञान होता है और विकल्प रहित ज्ञान होता है।

मुमुक्षु: सही है! ज्ञान विकल्प रहित ही होता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। ऐसा अपूर्व इसमें माल भरा है। कुदरती पल आ गया ३१ दिसम्बर (१९८९)। और सुबह के पहर में शांतिभाई जवेरी के घर, देवलाली से आये थे, वहाँ ठहरे थे। बहन भी थी। रोज सुबह को ६ बजे उठते तो पंकज और (दूसरे लोग) घर में से आ जाते, बहनें आ जाती, बहनें। तुरंत ही सब एकत्रित हो जाते। और यह विषय, कि आत्मा को नय से जाना नहीं जा सकता। आहाहा! निश्चयनय से आत्मा शुद्ध नहीं है, स्वभाव से शुद्ध है। उसमें ये सब बहुत है, हाँ। और भरतभाई ने प्रस्तावना भी अच्छी लिखी है। देखा, मैंने पढ़ा कल।

मुमुक्षु: बहन ने लिखी है, मेरा तो नाम है।

पू. लालचंदभाई: तो भी नाम हो वह बाहर आता है न, हें?

मुमुक्षु: नहीं, आपने तो लिखी थी न? ये देखो आपका ही है पैराग्राफ। बहुत सुंदर रचना हो गई है।

पू. लालचंदभाई: यह नयों के अभ्यास में अटके हुये हों, इंद्रजाल में। 'हम जैसा है ऐसा जानते हैं, यह इस नय से ऐसा है और इस नय से ऐसा है'। कोई भूल न निकाल सके। व्यवहारनय से ज्ञान का कर्ता (और) व्यवहारनय से आनंद का भोक्ता, निश्चयनय से अकर्ता और अभोक्ता हूँ। राग की बात तो जाने दो। आहाहा! उसके पक्ष में तो अज्ञान खड़ा होता है। इसके पक्ष में आता है, तो अज्ञान गलता है परंतु अज्ञान टलता नहीं। वह विकल्प अंतिम टूट जाता है, छूट ही जाता है, विकल्प सहज छूटता ही है।

मुमुक्षु: ऐसी वाणी सुनने को मिले फिर विकल्प रहता ही नहीं। छूट ही जाता है। नयों के चक्र में से बाहर निकालने के लिये ही आयी है यह वाणी।

पू. लालचंदभाई: नयचक्र में से बाहर निकलने का ही यह साधन है, चौबीस पेज हैं, चौबीस तीर्थंकरों की वाणी है इसमें। तीर्थंकर भगवंतों ने कहा है, पक्षातिक्रांत होने का उपदेश दिया है न? इसमें पहले पेज पर ही लिखा है न? पहला पेज खोलो अंदर। देखो उसमें यह गोलाकार में क्या लिखा है?

मुमुक्षु: '**नयपक्ष से अतिक्रांत भाषित वह समय का सार है।**' भूत, वर्तमान और भावी - तीनोंकाल के तीर्थंकरों की यह एक ही बात है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! तीनोंकाल के तीर्थंकरों की, भूत, भविष्य और वर्तमान, एक ही बात (है)। नयों से प्रतिपादन आता है, दूसरा तो उपाय नहीं है। प्रतिपादन में नय का सहारा होता है सुननेवाले को और कहनेवाले को होता है। फिर स्वभाव के सन्मुख होता है। आहाहा! इंद्रजाल में फंसा था जहाज, भँवर में से निकल गया है, विकल्प के जाल (में से)। वह नियमसार में कहा है। क्या कहा है वह तो देखो। नियमसार लाओ, श्लोक (११९) बोलो। मौखिक हो तो बोलो।

मुमुक्षु: इंद्रजाल का?

पू. लालचंदभाई: हाँ। इंद्रजाल का।

मुमुक्षु: **ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति**
व्यक्तं सदाशिवमये परमात्मतत्त्वे।
सास्तीत्युवाच सततं व्यवहारमार्ग-
स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम्॥११९॥

पू. लालचंदभाई: सर्वज्ञ भगवान के साथ बात करते हैं संत, कि यह तुम्हारा इंद्रजाल है। मैं फँसूँगा नहीं, अनेकों फंस गये। अनेकों फंस गये, भविष्य में फंसेंगे परंतु लायक जीव इंद्रजाल में से निकलकर अनुभव कर लेगा। बोलो! बोलो! उनके सामने, सर्वज्ञ भगवान के (सामने बाँहें चढ़ाते हैं)।

मुमुक्षु: स्वयंभू तीर्थंकर, वर्तमान में क्या आयेगा वाणी में, तुम सावधान रहना.....हो जायेगा।

पू. लालचंदभाई: आते हैं, अभ्यास क्रम में नयों के विकल्प बीच में आ जाते हैं। मुंबई जाते हुए दूसरे स्टेशन बहुत आते हैं। दिल्ली जाते हुए स्टेशन आते हैं, लेकिन प्रेमचंदजी उतरते नहीं हैं, सीधा दिल्ली आये तब उतरते हैं।

मुमुक्षु: 'उससे क्या?' का खुलासा इसमें है। 'उससे क्या?'

पू. लालचंदभाई: 'उससे क्या?'

मुमुक्षु: द्रव्य को स्वभाव से देखो और पर्याय को स्वभाव से देखो। आपका प्रताप है साहब।

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय से ऐसा है, उससे क्या? उसके स्वभाव से देख न?

नय का आलंबन छोड़ दे। आहाहा! नय का आलंबन कहो या इंद्रियज्ञान कहो, एक ही है। 'इंद्रियज्ञान ज्ञान नहीं है' वह आया इसमें, क्योंकि नय इन्द्रियज्ञान में होते हैं। मानसिक ज्ञान में नय होते हैं, अतीन्द्रियज्ञान में नय नहीं होते।

मुमुक्षु: बहुत स्पष्ट बात।

पू. लालचंदभाई: यह प्रसंग है न? इसीलिये उससे संबंधित सब कुछ आता है। कैसे इसका (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** का) जन्म हुआ।

मुमुक्षु: एकदम सही टाइम पर बाहर आयी है साहब, बिल्कुल।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। यह केवल अभ्यासी के लिये है। यह पुस्तक दूसरा कोई पढ़े तो उसकी चोंच भी नहीं डूबेगी, कि 'इसमें क्या है?'।

मुमुक्षु: कठिन लगे, ख्याल न आये।

पू. लालचंदभाई: हाँ! ख्याल न आये कि 'यह लिखने का प्रयोजन क्या था?'। परंतु अभ्यासी को ख्याल आता है कि नयों के विकल्प में मैं अटका था। आहाहा! व्यवहारनय से पर को जानता हूँ, निश्चयनय से स्व को जानता हूँ, ऐसे विकल्प, उससे क्या? अथवा विधि-निषेध, निश्चयनय से स्व को जानता हूँ और पर को नहीं जानता, उससे क्या?

मुमुक्षु: उससे क्या? तन्मय तो हुआ नहीं।

पू. लालचंदभाई: तन्मय तो हुआ नहीं।

मुमुक्षु: ईलाबेन कहती हैं कि मैं शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, अभेद हूँ उसमें आया तो निश्चय के पक्ष में आया, परंतु उससे क्या?

पू. लालचंदभाई: पक्ष में आया (परंतु) उससे क्या?

मुमुक्षु: तन्मय तो हुआ नहीं। गुरुदेव की वाणी का कहती हैं। गुरुदेव की वाणी को अपने भाव से पढ़ती हैं।

पू. लालचंदभाई: सत्य बात है। वास्तव में कैंसर के रोग से, दुःख से बहुत घिरा हुआ है जीव अभी परंतु पुरुषार्थ शुरु हो चुका है और निकल जायेगा। थोड़े समय में निकल जायेगा। आहाहा! यह सत् जिसे बैठा उसे भव नहीं होते।

मुमुक्षु: नहीं होते। (भव) होते ही नहीं। सही है।

पू. लालचंदभाई: भले सम्यग्दर्शन न हुआ हो परंतु तत्त्व बैठा है न? आहाहा! सत् का पक्ष है न? सत् का पक्ष है न वह पक्षातिक्रांत होता है। असत् के पक्ष में

पक्षातिक्रांत नहीं आता, बारी नहीं आती। वह हो जाता है। मैं निरालंबी हूँ। आहाहा! किस नय से निरालंबी? स्वभाव से ही निरालंबी हूँ। द्रव्य तो पर का आलंबन नहीं लेता, परंतु ज्ञान पर का आलंबन नहीं लेता, ज्ञान का स्वभाव ही नहीं है, वह भी निरालंबी है। सामान्य जैसा विशेष होता है, आत्मा निरालंबी तो आत्मा का ज्ञान भी निरालंबी है। उसे शास्त्र का अवलंबन नहीं होता। अवलंबन ले तो वह ज्ञान नहीं है।

मुमुक्षु: अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञाता है।

पू. लालचंदभाई: प्रत्यक्ष ज्ञाता है। स्वभाव के द्वारा ही आत्मा जाना जा सकता है अतः आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! निरालंबी तत्त्व है। वह जैसे बहन बोलती हैं, अरिहंत का देह स्वयं, (बहन) बोलती हो न निरालंबी अरिहंत का देह।

मुमुक्षु: **ऊँचे चतुरांगुल जिन राजे,**
इंद्रों, नरेंद्रों, मुनिनाथ पूजे;
जैसा निरालंबन आत्म द्रव्य,
वैसा निरालंबन जिनदेह। (श्री समवशरण स्तुति)

पू. लालचंदभाई: वहाँ से नहीं उठाया, यहाँ से (अपने से) उठाया है। जैसा यह (आत्मा) निरालंबी है ऐसा उनका देह भी निरालंबी है। वह कमल के फूल को छूता नहीं। आहाहा! ऊपर अद्धर ही रहता है।

मुमुक्षु: देह को निरालंबी समझाने के लिये यहाँ आत्मा का उदाहरण दिया।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! जैसे शुद्धात्मा निरालंबी है ऐसे उपयोग भी जो प्रगट होता है, (वह) निरालंबी है। वह आलंबन लेने जाये तो ज्ञान का अज्ञान हो जाता है। आहाहा! क्योंकि जैसा सामान्य अंश है वैसा विशेष होता है। धर्मी जैसा धर्म होता है। त्रिकाली द्रव्य निरालंबी तो ज्ञान भी (निरालंबी ही है), उसे किसी का आलंबन नहीं है। आहाहा!

अभी भाई आये घर, तब निरालंबी की विचारणा चलती थी। उनके सामने कहा। मुझसे कहा कि मुझे तो मिल गया यह तो। निरालंबी तत्त्व, किसी का आलंबन नहीं है आत्मा को। आहाहा! स्वभाव से ही निरालंबी है। ज्ञान को पहले आलंबन होता है? कि नहीं, पहले या बाद में, आलंबन ही नहीं होता। ज्ञान (को आलंबन) ही नहीं होता। वहाँ से शुरुआत कर तू। ज्ञान कहना और उसे पर का आलंबन? ऐसा होता ही नहीं, निरपेक्ष तत्त्व है। भूतार्थनय से जान ज्ञान को तो निरालंबी दिखेगा। त्रिकाली

द्रव्य तो निरालंबी है परंतु जिस उपयोग में आत्मा जानने में आता है वह भी निरालंबी है। आहाहा! वहाँ तक है कि, उपयोग ऐसा निरालंबी है कि शुद्धात्मा का आश्रय ले तो शुद्ध होवे, ऐसा भी आलंबन उसे नहीं है। सत् अहेतुक है, पर्याय में भी। अंदर में इतना सब है।

यह अंतिम कोटि की बात है। अभ्यासी जीव विकल्प में अटके हैं, नयों के विकल्प में। और जैसे सर्वज्ञ भगवान ने कहा उसी तरह से, उससे विपरीत विचारता है तो तो झूठा है। उसकी बात ही नहीं है, उसकी तो बात ही नहीं है। आगम के अनुसार नयों से ज्ञान करता है परंतु नयों के विकल्प जाल में (फंस गया है)। हे भगवान! तेरा इंद्रजाल है यह। ध्यानावली है न? आहाहा! धर्मध्यान और शुक्लध्यान, यह ध्यानावली तो आत्मा में है ही नहीं। किसने कहा यह? किसने कहा कि शुक्लध्यान और धर्मध्यान आत्मा में हैं? ऐसा कहनेवाला कौन है? हमने तो शुद्धात्मा के सन्मुख होकर त्रिकाली द्रव्य को देखा, तो उसमें कोई ध्यान की पर्याय तो दिखती नहीं है। आहाहा! क्योंकि नास्ति है न ध्यान की? ध्येय में ध्यान की नास्ति है ऐसी ध्येय की अस्ति है, उसका अनुभव वह मस्ती! निरालंबी है। आहाहा!

मुनिराज कहते हैं कि यह कुटुंब-कबीला तेरी धूर्तों की टोली है, फंसना मत (श्री सोमदेव, यशस्तिलक चंपू. अधिकार दूसरा, श्लोक-११९)। आहाहा! तिरस्कार नहीं किसी के प्रति, परंतु सजग हो जाना, अपना काम निकाल लेना, बस। हो गया टाइम। एकाध, एक भक्ति छोटी आज बहुत दिन हो गये (लो)। हें? सही है? जो लेनी हो वह लो। बहुत अच्छा।

मुमुक्षु: प्रभु मैं हो गया भव से पार, गुरुजी तेरो अनंत उपकार,
बंध-मोक्ष से रहित ज्ञानमय, एक ज्ञायक देखा सार,
प्रभु मैं हो गया भव से पार, गुरुजी तेरो अनंत उपकार।
अनंत शक्तिमय ध्रुव चिन्मय, अभेद ज्ञायक ज्ञायक तन्मय,
सदा ज्ञानमय स्वयं ज्ञानमय, हूँ बस जाननहार,
प्रभु मैं हो गया भव से पार, गुरुजी तेरो अनंत उपकार।
सिद्ध प्रभु ज्यों ज्ञाता-द्रष्टा, मैं भी जानन-देखनहार ही,
पूर्ण-अपूर्ण का प्रश्न नहीं कुछ, केवल जाननहार,
प्रभु मैं हो गया भव से पार, प्रभु मैंने देखा समय का सार।

ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है, ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है, ज्ञान-ज्ञेय सब ज्ञायक ही है,

ज्ञान-ज्ञेय में भेद नहीं कुछ, एक अभेद जाननहार,

प्रभु मैं हो गया भव से पार, प्रभु मैंने जानो है जाननहार।

ज्ञायक पर को नहीं जानता, ज्ञायक पर को नहीं जानता, ज्ञायक ज्ञायक को ही जानता,

ये दोनों तो नय पक्ष हैं।

पू. लालचंदभाई: दोनों... ज्ञायक नयों से पार, प्रभु मैं हो गया भव से पार। वह इसमें (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** में) लिखा है।

मुमुक्षु: प्रभु मैं हो गया भव से पार, प्रभु मैं हो गया भव से पार।

पू. लालचंदभाई: दोनों नयपक्ष हैं, एक असद्भूत व्यवहार, एक सद्भूत व्यवहार।

मुमुक्षु: ज्ञायक पर को नहीं जानता।

पू. लालचंदभाई: वह कव्वाली में आता है न, क्या? क्या आता है?

मुमुक्षु: फिर से कहो। ए जी क्या कहा? (भेदज्ञान-भजनावली, आध्यात्मिक भजन-१२)

पू. लालचंदभाई: ए जी क्या कहा? बस वह। भरतभाई ने कहा फिर से लो।

मुमुक्षु: ज्ञायक पर को नहीं जानता, ज्ञायक ज्ञायक को ही जानता,

ये दोनों तो नय पक्ष हैं।

पू. लालचंदभाई: ये दोनों तो नय पक्ष हैं, ज्ञायक नयों से पार,

प्रभु मैं हो गया भव से पार, प्रभु मैं हो गया भव से पार।

गुरुजी तेरो अनंत उपकार, प्रभुजी तेरो अनंत उपकार।

मुमुक्षु: ज्ञानमयी बस ज्ञानमयी हूँ, सब कुछ मेरा ज्ञानमयी है,

गुरु ही मेरा ज्ञानमयी है, भक्ति आपकी ज्ञानमयी है,

ज्ञेय नहीं बदले अब मेरा, निज में ही स्थिरता धार,

पू. लालचंदभाई: प्रभु मैं हो गया भव से पार, गुरुजी तेरो अनंत उपकार, प्रभुजी तेरो अनंत उपकार।

इसमें वह ही है। पर को जानता हूँ वह भी नयपक्ष। आहाहा! ज्ञायक ज्ञायक

को जानता है, स्वयं अपने को जानता है, वह भी नयपक्ष है। नयों से समझाने में आता है, दूसरा उपाय नहीं है। नय से अनुभव नहीं होता।

यह अभ्यासी होगा न, वह ही समझेगा। वरना 'इसमें क्या कहना चाहते हैं?', उसकी चोंच नहीं डूबेगी कि 'क्या कहते हैं यह?'। हें? लेकिन अब तो गुरुदेव ने बहुत अभ्यास कराया है, नयों से (पार होने का)। आहाहा! ये जो दो पुस्तकें हैं न ये विद्वानों के लिये हैं खास, **इन्द्रियज्ञान....ज्ञान नहीं है** उसे ज्ञान मानता है और यह (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव**) नय के इन्द्रजाल में फंसा है (उसके लिये है)।

मुमुक्षु: गुरुदेव की वाणी को आप आगे बढ़ाते हो, उसकी सुरक्षा करते हो। उनके तीर्थ के ऊपर अपने स्थापना के कलश चढ़ाते हो।

मुमुक्षु: सत्य बात है।

मुमुक्षु: यह वाणी आपकी पंचमकाल के अंत तक रहेगी।

पू. लालचंदभाई: लोगों को उपयोग में आयेगी, बात सच्ची है। माल तो गुरुदेव का ही है। उसका ही स्पष्टीकरण चलता है, कोई नयी बात नहीं की है हमने। आहाहा!

मुमुक्षु: परंतु अनुभव की ऐसी सरल विधि इसमें भरी हुई है कि अनुभव हो जायेगा लोगों को पढ़ने पर।

पू. लालचंदभाई: हाँ, अनुभव होगा। नयों के विकल्प छूट जायेंगे। नयों के विकल्प की उसे अधिकता नहीं रहेगी, 'यह तो विकल्प है, उसमें कुछ है नहीं'।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा! इसमें खूब अच्छा। वह श्रीमद्‌जी का है न अंत में, बहुत अच्छा है। श्रीमद्‌जी का इसमें, प्रस्तावना में श्रीमद्‌जी का यह इतना ज्यादा अच्छा है।

पू. लालचंदभाई: एक-एक धर्म को, वह न? वह अच्छा है। बहुत सुंदर है।

मुमुक्षु: वह ही बात आपने फरमायी है इसमें अंदर में कि एक-एक धर्म को जानेगा तो दूसरों को जानने की इच्छा रहेगी, आकुलता रहेगी, तृप्ति नहीं होगी। अनुभव नहीं होगा।

पू. लालचंदभाई: धर्मी को जानने पर अनंत धर्म एक समय में ज्ञात हो जाते हैं। कुछ जानना बाकी नहीं रहता। इसप्रकार ही धर्म जानने में आते हैं, धर्म के लक्ष से धर्म जानने में नहीं आते। धर्म के लक्ष से धर्म जानने में नहीं आते। आहाहा! धर्मी के लक्ष से (धर्म जानने में आते हैं), (धर्म के) लक्ष बिना, उसके (धर्म के) सन्मुख हुये

बिना। अभेद के सन्मुख होने पर भेद सभी जानने में आ जाते हैं। एक अभेद के सन्मुख होने पर समस्त भेद ज्ञात हो जाते हैं। एक दर्पण के सामने देखने पर, एक लाख वस्तुएँ सामने पड़ी हों। एक लाख वस्तुओं को ऐसे-ऐसे करके देखो तो कितना टाइम जायेगा? और दर्पण के सामने देखो तो?

मुमुक्षु: सभी एक साथ। देखे बिना दिख जाती हैं।

पू. लालचंदभाई: देखे बिना दिख जाती हैं, लक्ष के बिना जानने में आ जाती हैं, जानने के लोभ के बिना ज्ञात हो जाती हैं। लोकालोक ज्ञात हो जाता है परंतु जानने का लोभ नहीं है और जानने में आये बगैर रहता नहीं है और उसे जानता भी नहीं है। ऐसी वस्तु है। हो गया टाइम, ११ बज गये।

मुमुक्षु: परम कृपालु श्री सद्गुरुदेव की जय हो! कहान किरण लाल की जय हो! लाल की दिव्य देशना जयवंत वर्तो, जयवंत वर्तो, जयवंत वर्तो!

पू. लालचंदभाई: यह जो बहन ने बोला न, वह (गुरुदेव के शब्द) इसमें (फोटो में) है। सिद्ध भगवान जैसे देखने-जाननेवाले हैं ऐसे तू (भी) जाननेवाला-देखनेवाला (ही) है। अधूरे-पूरे का प्रश्न ही नहीं है (द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर बोल २०)। यह तो गुरुदेव का ही प्रताप है।

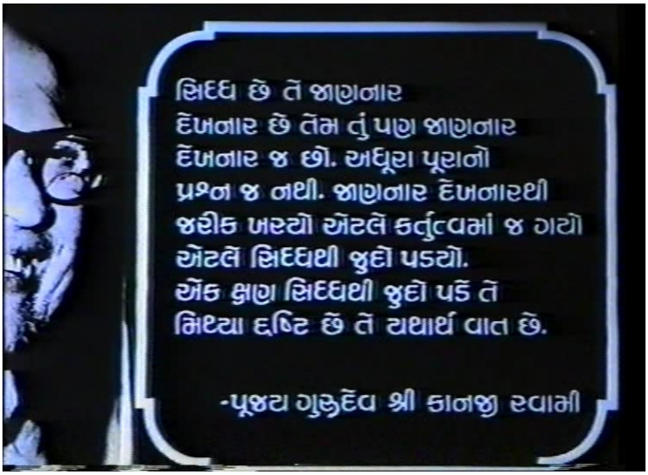

मुमुक्षु: पंचमकाल में चमत्कार हो गया है, गुरुदेव का यहाँ पदार्पण हुआ, पंचमकाल में चमत्कार हो गया है।

पू. लालचंदभाई: चमत्कार है यह।

मुमुक्षु: विदेह की वाणी यहाँ आ गई है। गुरुदेव का यहाँ पदार्पण हुआ है।

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव
टाइटल पेज से प्रथम प्रवेश द्वार पेज १-५
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट
तारीख : १७-१०-१९९०

प्रवचन LA ४०५

बोलो। पढ़ो।

मुमुक्षु: कहाँ से?

पू. लालचंदभाई: पहले से ही।

मुमुक्षु: **श्री सद्गुरुदेवाय नमः द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव। नयपक्ष से अतिक्रांत भाषित वह समय का सार है।**

मुमुक्षु: पहला पेज।

पू. लालचंदभाई: इसमें यह आनेवाला है।

मुमुक्षु: एकदम पहला पेज।

पू. लालचंदभाई: फर्स्ट पेज एकदम। हाँ, वह।

मुमुक्षु: **अध्यात्मरसिक**, **शुद्धात्मवेदी**, **स्वभावग्राही पूज्य श्री लालचंदभाईश्री की द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव को दर्शाती हुई अतिअपूर्व परम हितकारी तत्त्वचर्चा।**

पू. लालचंदभाई: **प्रकाशक**।

मुमुक्षु: **प्रकाशक**: **श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल**, **महावीरनगर**, **हिम्मतनगर।**

पू. लालचंदभाई: हिम्मतनगर के भाग्य में आया है यह।

मुमुक्षु: आपका प्रताप है। आपकी कृपा से।

मुमुक्षु: **प्रकाशकीय निवेदन।** प्रकाशीय नहीं प्रकाशकीय होना चाहिये.....

प्रकाशीय निवेदन प्रकाशकीय होना चाहिये। प्रकाशकीय निवेदन ऐसा।

पू. लालचंदभाई: हाँ। प्रकाशीय, भूल हो गई है। **प्रकाशकीय निवेदन** (होना चाहिये)। ठीक है।

मुमुक्षु: **प्रकाशकीय निवेदन। परम देवाधिदेव जिनेश्वरदेवश्री वर्धमान स्वामी, गणधरदेवश्री गौतमस्वामी तथा आचार्य भगवान श्री कुंदकुंददेवादि को अत्यंत भक्ति सहित नमस्कार। इस काल में कि जब मोक्षमार्ग प्रायः लुप्त हो गया था ऐसे काल में हमारे महाभाग्य से जैनशासन के नभोमंडल में एक महाप्रतापी क्रांतिकारी युगपुरुष आत्मज्ञ संत परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के उदय से हम सभी जैनधर्म के मार्गानुसारी बने।**

पू. लालचंदभाई: सही।

मुमुक्षु: **हमें नया जीवन देनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री को भी अत्यंत भक्तिभाव से नमस्कार। जैनदर्शन बहुत विशाल है। नय द्वारा प्रतिपादन करके आत्मस्वरूप समझाने की शैली परमागम में आती है जिससे आत्मस्वरूप का अनुमान हो सकता है परंतु अनुभव नहीं हो सकता। नय से स्वरूप का विचार करके बहुत से तो उसमें ही संतुष्ट हो जाते हैं। तथा बहुत लोगों को**। घणा खराने अर्थात्?

पू. लालचंदभाई: बहुत लोगों को, बहुत लोगों को, बहुविध।

मुमुक्षु: अच्छा! **बहुत लोगों को उन नय के विकल्प से छूटकर अनुभव कैसे होवे वह मार्ग सूझता नहीं है। उसका मार्गदर्शन देता हुआ अर्थात् कि स्वभाव को स्वभाव से ही समझने का परमार्थ दृष्टिकोण अध्यात्मरसिक, शुद्धात्मवेदी पूज्य श्री लालचंदभाई ने दिया है।**

जिसप्रकार परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री की राजकोट शहर के ऊपर अमी दृष्टि थी वैसे ही पूज्य भाईश्री की हमारे मुमुक्षु मंडल के ऊपर अमी दृष्टि है। वे हमारे प्रत्येक आमंत्रण को मान देकर यहाँ पधारते हैं। इस बार पर्युषणपर्व में वे पधारे थे और एक माह तक अध्यात्म की मूसलधार वर्षा की थी। जिसमें द्रव्य स्वभाव को तथा पर्याय स्वभाव को किसी नय से नहीं परंतु स्वभाव से देखने की बात की, जो हमारे मंडल के सभी मुमुक्षुओं को पुराने कानों को नयी लगी।

इस विषय की विस्तृत चर्चा पू. भाईश्री ने मुंबई श्री शांतिभाई झवेरी के यहाँ की थी ऐसी जानकारी मिलने पर यह चर्चा पुस्तकाकार में सभी के हाथों में आये तो सभी इसका लाभ ले सकें। और आज इसे पुस्तकाकार में समाज में रखते हुए मंडल धन्यता अनुभव करता है।

इस पुस्तक का सारा खर्च श्री शांतिभाई झवेरी, मुंबई की तरफ से मिला है। उसके लिए मंडल उनका भी आभार मानता है। पुस्तक का सुंदर प्रिंटिंग करके देने के लिए श्री योगेशभाई, गुजरात ऑफसेट का भी आभार मानते हैं।

आप सभी इस चर्चा का स्वाध्याय करो और... मैं तो स्वभाव से ही ज्ञायक हूँ, स्वभाव से ही जाननहार हूँ... मैं तो जाननहार हूँ ऐसा अभेद अनुभव सभी को होवे यह ही भावना।

श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल, महावीरनगर, हिम्मतनगर। प्रमुख-ताराचंद पोपटलाल कोटडिया। सेक्रेटरी-महेंद्रकुमार पुंजालाल महेता।

पू. लालचंदभाई: अब शांतिभाई झवेरी बोलेंगे।

मुमुक्षु: हाँ जी। **श्री सद्गुरुदेवाय नमः अध्यात्मयुगसृष्टा परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने स्वानुभवमयी मोक्षमार्ग को अपनी सातिशय दिव्यवाणी के द्वारा प्रकाशित करके हम मुमुक्षुओं पर अनंत उपकार किया है। और ऐसे पूज्य गुरुदेवश्री के स्वानुभवमयी वीतराग मार्ग को अपने अंदर आत्मसात् करके पूज्य गुरुदेवश्री के शासन को सुरक्षित रखकर दैदीप्यमान करनेवाले, पूज्य गुरुदेवश्री के वारिस सुपुत्र पूज्य श्री लालचंदभाई हैं। अनेकों मुमुक्षुओं के पास से सुनने में आता है कि 'आज पूज्य गुरुदेवश्री पूज्य लालचंदभाई के रूप में सुरक्षित हैं... जयवंत हैं'।**

हमारे महान महान भाग्य से ऐसे पूज्य लालचंदभाई की हमारे कुटुंब के ऊपर अपार करुणा है। इसलिये वे कृपा करके देवलाली पंचकल्याणक के बाद मुंबई हमारे आँगन में पधारे थे। तब ३१ दिसम्बर की प्रातः जागरण की मंगल बेला में पूज्यश्री के चंद्रमुख में से अमृत... अमृत... अमृत झर पड़ा कि जिस अमृतमयी तत्त्वचर्चा से हमारे अंतर के कपाट खुल गये।

आहा... नयपक्ष से अतिक्रांत होने की कोई अद्‌भुत से अद्‌भुत अजोड़

विधि दर्शायी। जिसमें द्रव्य को स्वभाव से देखो, किसी नय से नहीं और पर्याय को भी स्वभाव से देखो, किसी नय से नहीं... ऐसी कोई अति गूढ़ और अपूर्व, कभी भी नहीं सुनी हुई, नहीं विचारी हुई बात आयी। हमें इस चर्चा से ऐसा लगा कि अब हमें सारा निधान और निधान की चाबी सबकुछ मिल गया है। अपार हर्ष से हर्षित हुए इस हृदय में सहज ऐसा भाव भी आया कि यह चर्चा हमें छपवानी है, जिससे अन्य सभी मुमुक्षु भी लाभान्वित हो सकें।

पूज्य भाईश्री की आज्ञा लेकर यह छपवाकर हम अपार आनंद का अनुभव करते हैं। आप स्वयं पढ़ो... पढ़कर विचार करो... आपको भी पढ़कर बहुत अच्छा लगेगा और निश्चित आत्मलाभ होगा। ऐसी भावना के साथ...

पूज्य भाईश्री को बारंबार नतमस्तक होकर प्रणाम करते हुए... आपके चिरऋणी, शांतिभाई चिमनलाल झवेरी, शांताबहन आपका नाम है, **संगीताबहन, तरलाबहन, मयूरीबहन, भरतभाई, पंकजभाई, प्रदीपभाई।** अब **प्रथम प्रवेश द्वार, ॐ, नमः समयसाराय।**

पू. लालचंदभाई: यह भरतभाई का है।

मुमुक्षु: **अध्यात्म युग प्रवर्तक स्वानुभव प्रेरणामूर्ति परम उपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने इस काल में तीर्थ (मोक्षमार्ग) स्थापित किया। उस स्थापित किये तीर्थ की सुरक्षा करनेवाले, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त, शुद्धात्मवेदी, सिद्धांत बोध रसिक, सूक्ष्म अध्यात्म रहस्यों के उद्घाटक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म जटिल शल्यों के सुप्रसिद्ध चिकित्सक, अध्यात्म-जगत के सुप्रसिद्ध सिरमौर प्रवक्ता पूज्यश्री लालचंदभाई के मुखारविंद में से झरे हुए दो गूढ़ रहस्य...**

(१) **द्रव्य स्वभाव**, (२) **पर्याय स्वभाव की - अति अपूर्व अद्भुत परमामृतमय भेंट आत्मार्थियों को अर्पित करते हुए अति हर्ष होता है।**

विश्व के प्रत्येक पदार्थ की तरह आत्मवस्तु द्रव्य-पर्यायात्मक होने से अनेकांतिक है। उसे समझाने के लिये भगवान की तथा तद्अनुसारिणी संतों की वाणी द्विनयाश्रित होती है। द्विनयाश्रित होती है।

पू. लालचंदभाई: सही है। द्विनयाश्रित है वाणी। क्योंकि वस्तु दो प्रकार से है न? सामान्य-विशेष द्रव्य-पर्याय स्वरूप है, तो उसे समझाने के लिये दो नय होते हैं

न? इसप्रकार। पदार्थ एकरूप ही हो तो तो एक ही नय हो परंतु यह दोरूप है। बहुरूपी है न? द्रव्य-पर्याय स्वरूप अतः दो नय हैं।

मुमुक्षु: ठीक! **उसे समझाने के लिये भगवान की तथा तद्अनुसारिणी संतों की वाणी द्विनयाश्रित होती है। इसप्रकार समझाने के लिये तथा समझने के लिये नयों का प्रयोग होता है। परंतु आत्मानुभव नयातिक्रांत होने से**, परंतु आत्मानुभव नयातिक्रांत होने से।

पू. लालचंदभाई: होने से (अर्थात्) अनादि-अनंत।

मुमुक्षु: (**आत्मानुभव**) **नयातिक्रांत होने से नयों के द्वारा ही वस्तु को जानने में अटकने से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।**

पू. लालचंदभाई: **नहीं होती।** नयों तक अनंतबार आया। द्रव्यलिंगी मुनि हुआ, इन दो नयों तक अनंतबार आया। अनंतबार, यह एक बार नहीं, नवमें ग्रैवेयक तक गया। आहाहा! परंतु पक्षातिक्रांत नहीं हुआ। नय को ही साधन माना और ज्ञान साधन है (वह) रह गया।

नयज्ञान ज्ञान ही नहीं है, वह ख्याल नहीं आया। नयज्ञान इन्द्रियज्ञान है, नयज्ञान ज्ञान ही नहीं है। अतीन्द्रियज्ञान ज्ञान है, ऐसा ख्याल में मेरे और तुम्हारे आत्मा को नहीं आया। अपन तो अपनी ही बात करो न, हें? अपन अनंतबार गये नवमें ग्रैवेयक। आहाहा! राजपाट छोड़ा, नग्न दिगंबर मुनि हुए, २८ मूलगुण निरतिचार पाले, हों! आहाहा! परंतु ऐसा शल्य रह गया कि इस नय से ही आत्मा का अनुभव होता है। आहाहा! नय से कोई अलग अंतर्मुखी अतीन्द्रियज्ञान नया प्रगट होता है, उसमें आत्मा का अनुभव होता है, वह ख्याल में से रह गया, निकल गया। ऐसा ख्याल में नहीं आया। आहाहा!

मुमुक्षु: नय को ज्ञान माना न? नयज्ञान को ज्ञान माना।

पू. लालचंदभाई: नयज्ञान को ज्ञान माना। (नयज्ञान) वह तो इन्द्रियज्ञान है, मानसिकज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु: अपूर्व बात है।

पू. लालचंदभाई: अनंतकाल से भूल थी, वह भूल गुरुदेव के प्रताप से गई। आहाहा! नयज्ञान, ज्ञान नहीं है, वास्तव में इंद्रियज्ञान है अर्थात् अज्ञान है। क्योंकि स्वभाव को तिरोभूत करता है। (नयज्ञान) विकल्प है। आहाहा!

नय तक आ जाने के बाद, नयों के द्वारा वस्तु का स्वरूप जानने के बाद नयों में ही अटक जाने से अनुभव नहीं होता। वह नय को छोड़े तब अनुभव होता है। अर्थात् नय तक जो जीव आ चुके हैं, उन्हें अब यह जरा धक्का मारकर अंदर ले जाते हैं बस।

जो नयज्ञान से बिल्कुल अनजान है, उसे तो इसमें कुछ पता ही नहीं चलेगा कि यह क्या कहना चाहते हैं। गुरुदेव के अनुयायी जो हैं, नय के अभ्यासी, उनके लिये तो (यह) अमृत है।

मुमुक्षु: **रहस्यपूर्ण चिट्ठी में नयचक्र के आधार से पं. श्री टोडरमलजी ने फरमाया है कि तत्त्व के अवलोकन के समय शुद्धात्मा को युक्ति से अर्थात् नय, प्रमाण के द्वारा पहले जान**।

पू. लालचंदभाई: **जान**।

मुमुक्षु: अवलोकन के समय।

पू. लालचंदभाई: अनुभव से पहले ऐसा वस्तु का स्वरूप है ऐसा मानसिक ज्ञान के द्वारा जान।

मुमुक्षु: **आराधना के समय नहीं, क्योंकि अनुभव प्रत्यक्ष है।**

पू. लालचंदभाई: यह परोक्ष है। इन्द्रियज्ञान परोक्ष है। क्या कहा? **रहस्यपूर्ण चिट्ठी में नयचक्र के आधार से पं. श्री टोडरमलजी ने फरमाया है कि तत्त्व के अवलोकन के समय**, अवगाहन के समय, जानने के समय, अनुभव से पहले, **शुद्धात्मा को युक्ति से**, युक्ति का अर्थ- **नय** और **प्रमाण** वह युक्ति है। समझ गये? **के द्वारा पहले जान; आराधना के समय नहीं**।

जब अनुभव का काल आए तब यह बात छोड़ देना **क्योंकि अनुभव प्रत्यक्ष है**। नय परोक्ष है, नयज्ञान परोक्ष है क्योंकि मन में नय उठते हैं। मन में नयों के विकल्प उठते हैं। ज्ञान में नयों के विकल्प नहीं होते, ज्ञान अकेला होता है। ज्ञान अकेला होता है और नय खंडज्ञान है, राग मिश्रित होता है। आहाहा! नयज्ञान पराधीन होता है। इसलिये अनुभव तो प्रत्यक्ष है। नयज्ञान तो परोक्ष है। परोक्ष तक आया अनंतबार परंतु नय के विकल्प नहीं छूटे, इसीलिए अनुभव रह गया। वह अनुभव कैसे होवे उसकी यह कला है। उदाहरण देते हैं अब।

मुमुक्षु: **जिसप्रकार अभिमन्यु को चक्रव्यूह में प्रवेश करना आता था**

परंतु उसमें से बाहर निकलना नहीं आया।

पू. लालचंदभाई: नय के चक्रव्यूह। आहाहा!

मुमुक्षु: **उसीप्रकार अज्ञानी शास्त्र के अवलंबन से नयचक्र में प्रवेश करता है परंतु उसमें से पार होकर पक्षातिक्रांत होने की विधि से अनजान है।**

पू. लालचंदभाई: अभिमन्यु मर गया, (क्योंकि) बाहर निकलना नहीं आया। नय के चक्रव्यूह में (अटका है जीव)। आहाहा! जैसे वह जहाज का उदाहरण दिया था न? समुद्र में भँवर आता है तो जहाज फंस जाता है, निकलता नहीं। वह जब चक्रवात शांत होता है तब निकल जाता है। इसीप्रकार इस नय के चक्रवात में अटका है जीव। आहाहा! भँवर में है, घूमरी खाता है चार गति में। नय का सहारा लेकर घूमरी खाता है, नय का सहारा लेकर! मनुष्य होता है ऊँचा, देव होता है फिर, मनुष्य होता है। आहाहा! क्योंकि नय के चक्कर वाला जीव, वह स्वभाव घूँटता है इसलिये कषाय की तीव्रता नहीं होती। इसलिये नरक और निगोद में, तिर्यंच में नहीं जाता, लेकिन चक्कर में फंस जाता है। आहाहा! मिथ्यात्व है न? छूटा कहाँ है? सूक्ष्म मिथ्यात्व का कण भी बुरा है। नयज्ञान के साथ मिथ्यात्व है। आत्मज्ञान हुआ, मिथ्यात्व (चला) जाता है। नय भी गया, मिथ्यात्व गया, अनुभव हुआ।

मुमुक्षु: नय गया, मिथ्यात्व गया, अनुभव हुआ। इसमें कारण भी दिया है रहस्यपूर्ण चिठ्ठी का कि, कारण कि अनुभव प्रत्यक्ष है।

पू. लालचंदभाई: प्रत्यक्ष है। वह (नयज्ञान) परोक्ष है, परोक्ष ज्ञान है न? इंद्रियज्ञान परोक्ष है। परोक्ष ज्ञान में अनुभव नहीं होता। प्रत्यक्ष ज्ञान में अनुभव होता है।

छोटा सा शास्त्र है यह, पक्षातिक्रांत होने की विधि। पक्ष में आने के बाद अटका हुआ हो उसके (लिये)। आगे।

मुमुक्षु: **प्रस्तुत चर्चा में पक्षातिक्रांत होने की गूढ़ विधि समझाते हुए पूज्य भाईश्री फरमाते हैं कि द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से देख और पर्याय स्वभाव को भी स्वभाव से देख। किसी नय से मत देख।**

पू. लालचंदभाई: अब नय से देखना छोड़ दे। अभी तक (द्रव्य और पर्याय को) नय से देखता था, अब नय से मत देख, उसे स्वभाव से देख।

मुमुक्षु: **नय से देखने पर स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। अज्ञानी जीव**

शास्त्र का बहुत अभ्यास करने पर भी स्वभाव की प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से वंचित हैं। वे केवल नयों के विकल्पों में रुके हुए हैं और नयातिक्रांत होने की कला से अनजान हैं। नय विकल्प में अटके हुए जीव नयातिक्रांत होकर आत्मा का साक्षात् अनुभव कर सकें तदर्थ परम कृपालु भाईश्री ने यह विकल्पांतकारी निर्विकल्प होने की अर्थात् नयातीत होकर पक्षातिक्रांत होने की रहस्यात्मक कला (विधि) दर्शाई है। पूज्य भाईश्री के हृदय में आया हुआ यह उत्कृष्ट भाव, संतों के आगम में से मिल जाता है। क्योंकि वस्तु के स्वरूप के लिये और स्वरूप के अनुभव के लिये अनंत ज्ञानियों का एक ही मत होता है।

पू. लालचंदभाई: पक्षातिक्रांत होता है। शास्त्र का आधार है।

मुमुक्षु: **यह चर्चा नय से पक्षातिक्रांत होकर प्रत्यक्ष अनुभव कराने के हेतु से हुई है। पक्षातिक्रांत को प्राप्त आत्मा शुद्धात्मा की दृष्टिपूर्वक दो नयों के विषयों को जानता है।**

पू. लालचंदभाई: दो नयों के दो विषय हैं, उन धर्मों को जानता है। फिर आगे।

मुमुक्षु: **कोई भी नय आहत होता नहीं और पक्ष रहता नहीं**।

पू. लालचंदभाई: **रहता नहीं**, बोलो! यह खूबी है।

मुमुक्षु: **कोई भी नय आहत होता नहीं**।

पू. लालचंदभाई: **कोई भी नय आहत होता नहीं** अर्थात् दो नय हैं और दो नयों के विषय को जानता है। किसी नय को उड़ाता नहीं है परंतु नय के विकल्प को उड़ाता है। नय के विषय हैं, उनका ज्ञाता है। परंतु इस नय से ऐसा और इस नय से ऐसा ऐसे जो विकल्प उठते थे (वे) विकल्प छूट जाते हैं। नयों का ज्ञाता होता है, दो नयों का ज्ञाता है। **कोई भी नय आहत होता नहीं और पक्ष रहता नहीं**। विकल्प नहीं रहा, निर्विकल्प अनुभव हो गया। पक्ष अर्थात् विकल्प। **और दो नयों का ज्ञाता हो जाता है।** इस डेढ़ लाइन में रहस्य है। **कोई नय आहत होता नहीं और पक्ष रहता नहीं और दो नयों का ज्ञाता हो जाता है।** परम शुद्ध सत्य है।

मुमुक्षु: वाह साहब! परम सत्य।

पू. लालचंदभाई: एकांत का दोष नहीं लगता। दो नयों का ज्ञाता है न!

मुमुक्षु: नयातिक्रांत होकर नयों का ज्ञाता होता है।

पू. लालचंदभाई: (ज्ञाता) होता है। नयातिक्रांत होने से पहले नयों का ज्ञाता होता नहीं है, नय का कर्ता होता है। विकल्प का कर्ता होता है, ज्ञाता नहीं होता। ज्ञाता हो वह कर्ता नहीं और कर्ता हो वह ज्ञाता नहीं। आगे। आहाहा!

मुमुक्षु: **नय से देखने पर बहुत करके तीन दोष आते हैं।** (१) **नयज्ञान सापेक्ष है। सापेक्ष में, प्रतिपक्ष व्यवहार के पक्ष का विकल्प उत्पन्न होने पर, मिथ्यात्व का शल्य रह जाता है। जबकि निरपेक्ष में आने पर दृष्टि तथा ज्ञान सम्यक् होते हैं, विकल्प छूट जाता है और दो नयों का ज्ञाता होकर वीतरागता प्रगट होती है।** यह तो कोई भाई...

पू. लालचंदभाई: निर्दोष है बात सारी।

मुमुक्षु: एकदम निर्दोष है।

पू. लालचंदभाई: थोड़ा जरा कठिन तो है परंतु विचार करे तो... क्योंकि ऐसे शब्द आते हैं न? सापेक्ष और निरपेक्ष वे बहुत आते हैं। संक्षेप में वह ही आता है न? दूसरा क्या आवे? दूसरा (बोल पढ़ो)।

मुमुक्षु: (**२**) **नय विकल्परूप है।**

पू. लालचंदभाई: पहले में नयज्ञान को सापेक्ष कहा। दूसरे में नय विकल्परूप है।

मुमुक्षु: **विकल्प से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।**

पू. लालचंदभाई: सही है।

मुमुक्षु: **नयपक्ष आकुलतारूप है। नयज्ञान इन्द्रियज्ञान होने से शुद्धज्ञान तो नहीं है, परंतु स्वज्ञेय भी नहीं है - परज्ञेय है।**

पू. लालचंदभाई: नयज्ञान परज्ञेय है। फिर प्रेमचंदजी बहुत निकालेंगे बाद में।

मुमुक्षु: आपका प्रताप। परम प्रताप है।

पू. लालचंदभाई: खूब मंथन करेंगे इसका। तीसरा।

मुमुक्षु: (**३**) **नय अंशग्राही है।**

पू. लालचंदभाई: तीनों बातें आयी। (**१**) **नयज्ञान सापेक्ष है।** (**२**) **नय विकल्परूप है** और (**३**) **नय अंशग्राही है।** तीन बातें की।

मुमुक्षु: **नय के द्वारा जानने पर नय अंशग्राही होने से एक धर्म को**

जानता है, बाकी के धर्मों को जानना बाकी रह जाता है। अर्थात् ज्ञान के विषय का प्रतिबंध होता है। प्रतिबंध होने पर उसे जानने की इच्छा उत्पन्न होने पर आकुलता होती है। निर्विकल्प अतीन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करने पर वह ज्ञान सविकल्प होने से और उसका सामर्थ्य सर्वग्राही होने से युगपद् अक्रम से सभी धर्म एक समय में जानने में आते हैं। कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता इसलिए इच्छा उत्पन्न नहीं होती। अतः निराकुल आनंद का अनुभव होता है। इसप्रकार स्वभाव की प्राप्ति की रीति, नयों से अलग है। बहुत सुंदर।

पू. लालचंदभाई: अभ्यासी जीव को यह अमृत है, अभ्यासी के लिये ही यह है। बिन-अभ्यासी को कुछ पता नहीं चलेगा कि यह क्या कहते हैं। और गुरुदेव के शिष्य तो बहुत वर्षों से अभ्यास करते हैं, उनके लिये है। आगे।

मुमुक्षु: **इस चर्चा में खास बात यह है कि नय से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।**

पू. लालचंदभाई: मूल है यह।

मुमुक्षु: **क्योंकि नय सापेक्ष होते हैं। उसके आधाररूप में पंचाध्यायी पूर्वार्ध गाथा-५१५ में स्पष्ट कहा है कि, जिस प्रकार छेदन क्रिया का कारण ऐसी कुल्हाड़ी छेदन क्रिया करने में स्वतंत्र रीति से चलायी जाती है उसीप्रकार नय स्वतंत्र रीति से वस्तु को किसी धर्म से विशिष्ट न ही समझता है और न कहता ही है।** नय स्वतंत्र नहीं होता। जैसे कुल्हाड़ी है वह स्वतंत्र होती है ऐसे नय स्वतंत्र नहीं होता, सापेक्ष होता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ। पराश्रित है न? स्वतंत्र नहीं है। ज्ञान स्वतंत्र कहा जाता है। नय स्वतंत्र नहीं है, नय पराधीन है, मन के संग से आता है।

मुमुक्षु: बहुत स्पष्ट किया है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान स्वतंत्र है। नय स्वतंत्र नहीं है, विकल्प है न नय।

मुमुक्षु: **भावार्थ: कुल्हाड़ी चलाने में यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी दूसरे हथियार की अपेक्षा रखकर ही छेदनक्रिया करे। कुल्हाड़ी चलाने में यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी दूसरे हथियार की अपेक्षा रखकर ही छेदनक्रिया करे।**

पू. लालचंदभाई: एक हथियार से कर सकता है। दूसरे हथियार की जरूरत

नहीं है, इसप्रकार।

मुमुक्षु: **परंतु नय का प्रयोग स्वतंत्र नहीं हो सकता है।**

पू. लालचंदभाई: स्वतंत्र यदि एक नय का प्रयोग करने जाये तो मिथ्यानय हो जाता है। सापेक्ष नय सम्यक् है। निरपेक्ष नय मिथ्या है ऐसा आयेगा। नय अकेला नहीं होता, सापेक्ष ही होता है।

मुमुक्षु: स्वभाव अकेला होता है इसलिये स्वभाव में आ जाता है। अकेला हो जाता है।

पू. लालचंदभाई: Liftoff (उड़ना)! शीघ्रता कर रही हैं अब। उड़ने की शीघ्रता कर रही हैं। अच्छा है! अच्छा है! इसमें तो शीघ्रता करने जैसा है।

मुमुक्षु: **परंतु नय का प्रयोग स्वतंत्र नहीं हो सकता है। किसी विशेष अपेक्षा के बिना नय प्रयोग नहीं हो सकता है।**

पू. लालचंदभाई: व्यवहारनय से देखने पर सापेक्ष निश्चयनय दूसरा आता है। निश्चयनय से देखने पर व्यवहार (नय) आता है। समझ गये? आहाहा!

मुमुक्षु: **किसी विशेष अपेक्षा के बिना नय प्रयोग नहीं हो सकता है। नय प्रयोग में विशेष अपेक्षा तथा प्रतिपक्ष नय की सापेक्षता आवश्यक है।**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् विद्वता का वाक्य भी आवे न इसमें? क्योंकि इसके सिवाय समझाया नहीं जा सकता। उस शब्द प्रयोग के बिना समझाया नहीं जा सकता। कठिन बात है। **इसलिये**...

मुमुक्षु: **नय प्रयोग में विशेष अपेक्षा तथा प्रतिपक्ष नय की सापेक्षता आवश्यक है।**

पू. लालचंदभाई: आवश्यक है।

मुमुक्षु: **इसीलिये छेदन क्रिया में कुल्हाड़ी के समान नय स्वतंत्र नहीं**, **किन्तु विवक्षा और प्रतिपक्ष नय से वह परतंत्र है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! **विवक्षा**...

मुमुक्षु: **और प्रतिपक्ष नय से वह परतंत्र है।**

पू. लालचंदभाई: यह उसमें से लिया है न?

मुमुक्षु: पंचाध्यायी में से।

पू. लालचंदभाई: पंचाध्यायी में से। पंचाध्यायी शास्त्र का आधार है। नय की

पराधीनता का उसमें उदाहरण दिया है। ५१५ (गाथा), पहला भाग। ठीक। आहाहा!

मुमुक्षु: **जो नय अपेक्षा के बिना और प्रतिपक्ष नय की सापेक्षता के बिना प्रयोग किया जाता है उसे नय ही नहीं कहना चाहिये अथवा मिथ्या नय कहना चाहिये।**

पू. लालचंदभाई: हाँ, नय सापेक्ष ही होता है।

मुमुक्षु: इसमें गंभीरता है बहुत!

पू. लालचंदभाई: बहुत गंभीरता, बहुत गंभीरता!

मुमुक्षु: क्योंकि नय का स्वरूप समझाया है न? नय सापेक्ष ही होते हैं। उसमें वह (नय पक्ष वाला) खुश हो जाता है (की) 'हाँ, नय सापेक्ष ही होते हैं, निरपेक्ष नय नय नहीं होता!'।

पू. लालचंदभाई: हाँ, निरपेक्षा नया मिथ्या (आप्त-मीमांसा गाथा ८) और सापेक्ष नय करने जाओ तो स्वभाव हाथ में नहीं आएगा।

मुमुक्षु: वह रह गया।

पू. लालचंदभाई: वह रह गया।

मुमुक्षु: भाई! यह बात कहाँ से निकाली आपने? किसप्रकार से निकाली? कैसी बात है न?

पू. लालचंदभाई: नय से मत देख, स्वभाव से देख। द्रव्य को भी स्वभाव से देख, ज्ञान की पर्याय को भी उसके स्वभाव से देख, नय से मत देख। तब विकल्प छूट जायेगा। चलो, गूढ़ तो है परंतु अब बाहर आया है अतः बहुत लोगों का काम तो होगा।

मुमुक्षु: **उसे नय ही नहीं कहना चाहिये अथवा मिथ्यानय कहना चाहिये।**

पू. लालचंदभाई: सही है।

मुमुक्षु: **नय सापेक्ष ही होता है।**

पू. लालचंदभाई: **सापेक्ष ही होता है।**

मुमुक्षु: **नय निरपेक्ष नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: **नहीं होता।और स्वभाव निरपेक्ष ही होता है।**

मुमुक्षु: **और स्वभाव निरपेक्ष ही होता है, सापेक्ष नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: सापेक्ष है वह नय है। और ज्ञान जो स्वभाव है, वह तो

निरपेक्ष ही होता है, उसे किसी की अपेक्षा नहीं है।

मुमुक्षु: टोटल (Total) यह कहना है।

पू. लालचंदभाई: (हा).

मुमुक्षु: नय सापेक्ष ही होते हैं और स्वभाव निरपेक्ष ही होता है। इसीलिये नय से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।

पू. लालचंदभाई: क्योंकि दो को विषय करेगा तो दोनों ही उपादेय हो जायेंगे, सच्चा मानेगा तो। आहाहा!

मुमुक्षु: और नय सम्यक् करने जाये तो स्वभाव हाथ में नहीं आता।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! बहुत अच्छा, आधार लेकर प्रकाशित हुआ है, शास्त्र का आधार है, शास्त्र के आधार से लोगों को श्रद्धा बैठती है।

मुमुक्षु: **नय सापेक्ष ही होता है। नय निरपेक्ष नहीं होता। और स्वभाव निरपेक्ष ही होता है**, **सापेक्ष नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: देखो।

मुमुक्षु: **इसीलिये सापेक्ष नय से निरपेक्ष स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।**

पू. लालचंदभाई: एक-एक शब्द की कीमत है। **सापेक्ष नय से निरपेक्ष स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।** मोदी साहब, जरा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु: सूक्ष्म बहुत है।

पू. लालचंदभाई: बहुत सूक्ष्म है, बहुत सूक्ष्म है, सच्ची बात है। है, सूक्ष्म है, परंतु समझ में आये, यदि समझने की कोशिश करे। आत्मा है न? (अपना) सर्वज्ञ स्वभावी भगवान विराजमान है न? समझने जैसा है। चलो!

मुमुक्षु: **इसप्रकार नय सापेक्ष ही होते हैं क्योंकि** '**निरपेक्ष नया मिथ्या**' **ऐसा शास्त्र का वचन है।**

पू. लालचंदभाई: देखा?

मुमुक्षु: **इसलिए निश्चयनय से मैं अकर्ता हूँ -इसप्रकार एक नय का ही पक्ष करे तो वह तो मिथ्या एकांत हो गया। इसलिये**, '**सापेक्ष नया सम्यक्**' **होने से**, **निश्चय से अकर्ता हूँ तो व्यवहार से कर्ता हूँ** - **ऐसा लेने में नय ज्ञान तो सम्यक् हो गया परंतु सापेक्षता में आने के कारण अर्थात्**...

पू. लालचंदभाई: अर्थात् अनुमान सच्चा हो गया। सम्यक् अर्थात् सच्चा

अनुमान। **सापेक्षता में आने के कारण**...

मुमुक्षु: **कारण अर्थात् नयज्ञान में आने के कारण**, **निरपेक्ष स्वभाव से दूर हो गया।**

पू. लालचंदभाई: दूर हो गया, स्वभाव से दूर हो गया। उसे ऐसा लगता है कि यह सच्चा करता हूँ, सम्यक् शब्द प्रयोग किया है न, जैसा है ऐसा लेता हूँ। स्वभाव से दूर हो गया, विकल्प उठा है उसे।

मुमुक्षु: बकरी निकालने गया और ऊंट घुस गया! गजब बात है हों!

पू. लालचंदभाई: उसे तो ऐसा ही लगता है कि 'जैसा स्वभाव है ऐसा ही मेरे ख्याल में आ गया है', (मगर) नय के द्वारा।

मुमुक्षु: स्वभाव ख्याल में नहीं आया, स्वभाव से दूर हो गया।

पू. लालचंदभाई: ऐसा कहते हैं, स्वभाव से दूर हो गया।

मुमुक्षु: नयज्ञान सच्चा हुआ। ज्ञान सच्चा नहीं हुआ।

पू. लालचंदभाई: नहीं हुआ। नयज्ञान सच्चा हुआ परंतु ज्ञान झूठा हुआ।

मुमुक्षु: ज्ञान प्रगट ही नहीं हुआ।

पू. लालचंदभाई: प्रगट ही नहीं हुआ।

मुमुक्षु: ज्ञान झूठा हुआ उसका पता भी नहीं चलता। ज्ञान सच्चा हुआ (ऐसा लगता है)। अंधेरे में रह जाता है।

पू. लालचंदभाई: सत्य बात है।

मुमुक्षु: यह बहुत सूक्ष्म बात है। परंतु अज्ञान को ज्ञान माना तो सच्चा ज्ञान प्रगट करने का पुरुषार्थ ही कहाँ रहा?

पू. लालचंदभाई: नहीं, पुरुषार्थ नहीं रहा, समाप्त! जैसा स्वभाव है ऐसा मैं मानता हूँ। मैं अकर्ता मानता हूँ आत्मा को, मैं कर्ता तो मानता नहीं अब, अकर्ता मानता हूँ। अकर्ता पराकाष्ठा है जैनदर्शन की, मैं भी अकर्ता मानता हूँ। आहाहा! 'व्यवहार से कर्ता है', मैं कर्ता का निषेध करता हूँ। कर्ता का निषेध करके अब मैं अकर्ता में आ गया हूँ। मैं अकर्ता हूँ, कर्ता नहीं। अकर्ता हूँ और कर्ता नहीं हूँ- (ये) नय का विकल्प है! अकर्ता के स्वभाव तक पहुँचे, (तो) 'मैं अकर्ता हूँ' ऐसी वाणी बंद हो जाये, पहुँचे तो। 'मैं अकर्ता हूँ' वह स्वभाव में पहुँचे तो 'मैं अकर्ता हूँ' - ऐसा विकल्प, वाणी बंद हो जाये, तब अकर्ता में पहुँचा कहलाता है। 'मैं अकर्ता हूँ' उसमें

अकर्ता में नहीं पहुँचता। 'मैं ज्ञायक हूँ' उसमें ज्ञायक में नहीं पहुँचता। 'मैं ज्ञाता हूँ' उसमें ज्ञाता में नहीं पहुँचता। सूक्ष्म बात तो है, मोदी साहब! क्या हो लेकिन? ये अंतिम विकल्प टूटकर अनुभव कैसे होवे? यह उसके लिये ही है यह।

मुमुक्षु: अनुभव कराकर नयज्ञान चला जाता है न? वह बात है। अनुभव हो जाता है वह बात (है)!

पू. लालचंदभाई: हाँ। चला जाता है बस! निश्चयनय अनुभव कराके, आनंद की प्राप्ति कराके चला जाता है।

मुमुक्षु: यह पुस्तक है न? यह अनुभव प्राप्त कराके फिर बंद हो जाये, ऐसा है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! बंद हो जाये ऐसा है, सच्ची बात है।

मुमुक्षु: एक दफा आपसे पूछा फोन पर कि कुछ फरमाओ। तो (आपने कहा कि) नहीं है। बोलना नहीं है तो बंद कर दो और विकल्प हैं उन्हें अटकाकर अंदर में चले जाओ। ऐसा आपने फोन में पंद्रह-बीस वर्ष पहले कहा था। बोलना बंद कर दो।

पू. लालचंदभाई: बोलना बंद कर दो।

मुमुक्षु: और विकल्प अटकाकर अंदर चले जाओ, बस।

पू. लालचंदभाई: अंदर चले जाओ, बस! सब कुछ उन्हें याद है, पंद्रह वर्ष पहले का। वर्षों से बहुत गाढ़ परिचय (है)। हमें तो लगता था बहुत वर्ष पहले। चलो।

मुमुक्षु: **नयज्ञान में आने के कारण, निरपेक्ष स्वभाव से दूर हो गया। नयज्ञान से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती - क्योंकि स्वभाव, स्वभाव से ही निरपेक्ष है। नय को सम्यक् करने गया, तो स्वभाव से दूर हो गया और स्वभाव में आया, तो नयपक्ष स्वयं सहज अस्त हो जाता है।**

पू. लालचंदभाई: स्वभाव में आया, कोई विकल्प रहा नहीं, अस्त हो जाता है विकल्प। आहाहा! आत्मा का स्वरूप ही अलौकिक है, बस, वाणी से अगोचर है, मन से अगोचर है। आगे।

मुमुक्षु: **नय का सही प्रतिपादन करने के लिये सापेक्ष से बात करनी ही चाहिये।**

पू. लालचंदभाई: **नय का सही प्रतिपादन करने के लिये सापेक्ष से बात करनी ही चाहिये। नहीं तो एकांत हो जाता है।**

मुमुक्षु: **और सापेक्ष करने जायें तो आत्मा का अनुभव नहीं होता क्योंकि निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है ऐसा कहने पर, कहे बिना भी 'व्यवहारनय से कर्ता है' -ऐसा आ जाता है।**

पू. लालचंदभाई: बराबर।

मुमुक्षु: **अतः इसप्रकार सापेक्ष सिद्ध करने में भी जीव नयातिक्रांत नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा!

मुमुक्षु: यह मूल में भूल है साहब! यह चक्रव्यूह में से बाहर निकालने की अपूर्व आपकी देन है।

पू. लालचंदभाई: अभिमन्यु का चक्रव्यूह का उदाहरण अच्छा है। आहाहा! बाहर निकलना नहीं आया, नयों के इन्द्रजाल में फंस गया, पकड़ा गया उसमें।

मुमुक्षु: प्रवेश करने से पहले बाहर किस प्रकार निकलना, वह समझना पहले जरूरी है।

पू. लालचंदभाई: कि यह तो कामचलाऊ स्वरूप समझने के लिये है, उससे लंबे टाइम तक मत चिपकना। वह तो निकट भव्य हो न (तो) छूट जाता है, छूट जाता है, छूट जाता है। न छूटे ऐसा कुछ नहीं है, छूट जाता है, वह तो सहज है। चलो।

मुमुक्षु: **निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है ऐसा कहने पर, कहे बिना भी 'व्यवहारनय से कर्ता है' -ऐसा आ जाता है। अतः इसप्रकार सापेक्ष सिद्ध करने में भी जीव नयातिक्रांत नहीं होता। क्योंकि त्रिकाली वस्तु जो श्रद्धा का विषय है वह सापेक्ष नहीं है। वह तो निरपेक्ष ही है।**

पू. लालचंदभाई: **निरपेक्ष ही है।** आहाहा!

मुमुक्षु: **दो नयों का विषय तो ज्ञान का ज्ञेय है, श्रद्धा का श्रद्धेय नहीं है। अतः दो नयों के आश्रय से श्रद्धा प्रगट नहीं होती।** कारण कितना अच्छा है! **दो नयों का विषय तो ज्ञान का ज्ञेय है, श्रद्धा का श्रद्धेय नहीं है। अतः दो नयों के आश्रय से श्रद्धा प्रगट नहीं होती। इसलिये दो नयों के पक्ष को छोड़कर, त्रिकाल निरपेक्ष स्वभाव का अवलंबन लेने पर श्रद्धा सम्यक् होती है क्योंकि श्रद्धा एकांतिक ही होती है। और श्रद्धा सम्यक् होने पर ज्ञान सम्यक् होता है**

और सम्यग्ज्ञान स्वभाव से अनेकांतिक होने से...

पू. लालचंदभाई: श्रद्धा स्वभाव से एकांत। ज्ञान स्वभाव से अनेकांत। **होने से**...

मुमुक्षु: **दो नयों के विषय को**, **जैसा है वैसा**, **पक्षपात रहित**, **जानता है।**

पू. लालचंदभाई: **जानता है।** सब कुछ आ गया। सब कुछ आ गया। श्रद्धा का विषय एकांतिक है। ज्ञान होने पर अनेकांतिक होता है। श्रद्धा सच्ची होवे तो ज्ञान अनेकांतिक, दो नयों का ज्ञाता। श्रद्धा झूठी हो तो ज्ञान झूठा। ज्ञान झूठा हो तो दो नयों का ज्ञाता कहाँ से होवे? आगे।

मुमुक्षु: **दो नयों का विषय तो ज्ञान का ज्ञेय है**, **श्रद्धा का श्रद्धेय नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: फिर से पढ़ रही हैं। ठीक है।

मुमुक्षु: **अतः दो नयों के आश्रय से श्रद्धा प्रगट नहीं होती।**

पू. लालचंदभाई: दो नयों के विषय को समानरूप से सत्यार्थ माने और उसका श्रद्धान करे, तो श्रद्धान प्रगट नहीं होता।

मुमुक्षु: **इसीलिए दो नयों का पक्ष छोड़कर**, क्योंकि नय सापेक्ष है न?

पू. लालचंदभाई: हाँ।

मुमुक्षु: तो एक का पक्ष करे तो दूसरा आ ही जाता है उसमें।

पू. लालचंदभाई: आ ही जाता है।

मुमुक्षु: **इसीलिये दो नयों का पक्ष छोड़कर**, **त्रिकाल निरपेक्ष स्वभाव का अवलंबन लेने पर श्रद्धा सम्यक् होती है**।

पू. लालचंदभाई: **होती है**।

मुमुक्षु: **क्योंकि श्रद्धा एकांतिक ही होती है। और श्रद्धा सम्यक् होने पर ज्ञान सम्यक् होता है और सम्यग्ज्ञान स्वभाव से अनेकांतिक होने से दो नयों के विषय को**, **जैसा है वैसा**, **पक्षपात रहित**, **जानता है।**

पू. लालचंदभाई: **जानता है**, विकल्प रहित जानने में आता है। अनुभव के काल में सामान्य-विशेष को अक्रम से जानता है।

मुमुक्षु: **इसप्रकार ज्ञानी दो नयों के ज्ञाता हैं। इसप्रकार ज्ञानी दो नयों के ज्ञाता हैं। परंतु अज्ञानी दो नयों के विकल्प का कर्ता है।**

पू. लालचंदभाई: ज्ञाता नहीं है। इस नय से ऐसा और उस नय से ऐसा,

निश्चयनय से अकर्ता (और) व्यवहारनय से कर्ता - ऐसे विकल्प करके उनका कर्ता हो गया।

मुमुक्षु: **इसलिये अज्ञानी को प्राथमिक प्रमाण-नय से अभ्यास करने के बाद द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से और पर्याय स्वभाव को स्वभाव से ही देखने का अभ्यास करना चाहिये। नयों का सहारा छोड़ देना चाहिये। नयों का सहारा छोड़ देना चाहिये। अर्थात् स्वभावग्राही ज्ञान से ही स्वभाव का अनुभव होता है।**

पू. लालचंदभाई: बड़े अक्षरों में है।

मुमुक्षु: **स्वभावग्राही ज्ञान से ही स्वभाव का अनुभव होता है। नय सापेक्ष से अनुभव नहीं होता। परंतु अनुभव होने के पश्चात परस्पर दो नय सापेक्ष हैं ऐसा ज्ञान अवश्य होता है। इसप्रकार नयातिक्रांत होने पर, नयों का ज्ञाता होता है।**

पू. लालचंदभाई: कहीं दोष नहीं लगता जिनवाणी का।

मुमुक्षु: **इसप्रकार नयातिक्रांत होने पर, नयों का ज्ञाता होता है।** कितनी बढ़िया बात! **इसप्रकार नयातिक्रांत होने पर, नयों का ज्ञाता होता है।**

पू. लालचंदभाई: उसके बाद ही ज्ञाता होवे न? पक्षातिक्रांत होने के बाद, नहीं तो नय का-विकल्प का कर्ता बनता है।

मुमुक्षु: पक्षातिक्रांत के बाद ज्ञाता होता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। यह विषय लिया है फिर।

मुमुक्षु: **नयातिक्रांत होने के पहले नयों का ज्ञाता नहीं हो सकता परंतु नय विकल्पों की कर्ताबुद्धि रह जाती है।**

पू. लालचंदभाई: हो गया टाइम लो।

ॐ

प्रथम प्रवेश द्वार पेज ६-९
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट
तारीख : १८-१०-१९९०

प्रवचन LA ४०६

नयज्ञान है वह खंडज्ञान है, उससे शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होती। फिर (जिसके) हाथ में यह पुस्तक (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव**) आयेगी उसका काम हो जायेगा।

मुमुक्षु: जैसे गुरुदेव ने **द्रव्य दृष्टि प्रकाश** दूसरे भाग का... ऐसी पुस्तक है यह।

पू. लालचंदभाई: यह पुस्तक छपवाकर लाभ लिया है। इसमें (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** में) बहुत ऊँचे प्रकार की बात है। इसमें तो निश्चयनय का निषेध करते हैं - निश्चयनय का जो विकल्प है...

मुमुक्षु: उसकी तो बात ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: उसकी तो बात ही नहीं है। अर्थात् दूसरा कुछ नहीं। हमने छपवाया है वह सभी को देना ही है... परंतु थोड़ा उसे हजम होना चाहिये, होजरी तैयार हो। जैसे गुरुदेव ने परद्रव्य कहा, फिर राग का कर्ता नहीं है, फिर ज्ञान का कर्ता नहीं है, फिर पर का ज्ञाता नहीं है, धीरे-धीरे-धीरे कहा न? इस प्रकार छह महीने बस, यह एक पुस्तक distribute (वितरण) होने दो। फिर हाथ में देंगे खुशी से। देने के लिये ही है यह पुस्तक। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देखकर काम करने जैसा है।

मुमुक्षु: यह पुस्तक किस तरह से पचे वह प्रकार आपने स्पष्ट फरमाया है कि वह पचे...

पू. लालचंदभाई: वह पचे तो (यह) पचे! इन्द्रियज्ञान का निषेध आता है और अतीन्द्रियज्ञान का पक्ष आ जाता है। उसमें अतीन्द्रियज्ञान का पक्ष आता है, फिर (यह पुस्तक समझने से) पक्षातिक्रांत होता है। इसलिये जल्दी नहीं है, बस।

मुमुक्षु: ऐसा ही क्रम है।

पू. लालचंदभाई: सचमुच तीनों काल थोड़े ही जीव होते हैं, अधिक होते ही नहीं। इस काल में, पंचमकाल में तो थोड़े में भी थोड़े। इस काल में हैं अवश्य, अल्पकाल में मोक्ष जानेवाले जीव। तीनोंकाल होते हैं और चारों गति में होते हैं सम्यक् पानेवाले। सम्यक् को प्राप्त करनेवाले चारों गति में होते हैं। तो यह गुरुदेव की मूसलधार वाणी निकली इसमें तो बहुत जीव प्राप्त करेंगे, उसमें कहीं थोड़े नहीं प्राप्त करेंगे। चलो। कौन सा पृष्ठ है बहन?

मुमुक्षु: छठ्ठा पृष्ठ।

पू. लालचंदभाई: छठ्ठा पृष्ठ। लो पढ़ो बहन।

मुमुक्षु: **अर्थात् नय विकल्पों की कर्ताबुद्धि कैसे छूटे और फिर नयों का ज्ञाता किस प्रकार हो**?

पू. लालचंदभाई: आहाहा! कितना सुंदर वाक्य है, हें? मानो अनुभव करके यह लाइन, हें? **नय विकल्पों की कर्ताबुद्धि**, नयों के विकल्प रहेंगे बाद में।

मुमुक्षु: कर्ताबुद्धि छूट गई न?

पू. लालचंदभाई: नय के विकल्प की कर्ताबुद्धि छूटने के बाद अनुभव होगा और फिर नयों के विकल्प रहेंगे परंतु कर्ताबुद्धि नहीं रहेगी। 'मैं करता हूँ, मैं उसका स्वामी हूँ' ऐसा नहीं रहेगा। नयों के विकल्प तो रहते हैं न? आचार्य भगवान ने दो नयों से कथन किया है तो विकल्प तो उनके आये, परंतु विकल्प की कर्ताबुद्धि छूट गई है। एक-एक वाक्य शांति से यदि विचारे न, तो काम होवे। राग की कर्ताबुद्धि छूटती है, राग रह जाता है। इन्द्रियज्ञान की कर्ताबुद्धि छूटती है, और इन्द्रियज्ञान रह जाता है। नयों के विकल्प की कर्ताबुद्धि छूटती है, नय रह जाते हैं। क्योंकि दूसरे को समझाते हैं तब नयों के प्रयोग से समझाते हैं न? तो नय तो रह गया न? नय का स्वामी(पना) छूट गया।

मुमुक्षु: नय का स्वामी(पना) छूट गया। वाह! वाह!

पू. लालचंदभाई: (नय का) स्वामीपना छूटता है। बस।

मुमुक्षु: अर्थात् लक्ष छूटता है?

पू. लालचंदभाई: लक्ष छूटता है। नयज्ञान मेरा नहीं है। आहाहा! मेरा तो ज्ञायक एक भाव है। स्वस्वामी संबंध जोड़ा ज्ञायक में, और नयों के विकल्प का

स्वस्वामी संबंध तोड़ा, (और) अनुभव हुआ। फिर नयों के विकल्प तो आयेंगे, वे ज्ञान के ज्ञेयपने रहेंगे। आहाहा! ज्ञान के ज्ञेयपने रहेंगे, ज्ञान के ज्ञेयपने जानेगा ऐसा नहीं कहा। ज्ञेयपने रहे तो रहे! चलो, छठ्ठा पेज, मोदी साहेब पहली लाइन।**अर्थात्** ...

मुमुक्षु: **अर्थात् नय विकल्पों की कर्ताबुद्धि कैसे छूटे और फिर नयों का ज्ञाता कैसे होवे?**

पू. लालचंदभाई: **होवे?** देखो ज्ञाता हुआ न? नयों का ज्ञाता हो जाता है।

मुमुक्षु: **कि द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से देख**, तो कर्ताबुद्धि छूट जायेगी।

पू. लालचंदभाई: छूट जायेगी। नय से मत देख।

मुमुक्षु: नहीं। नय से देखेगा तो निश्चयनय के विकल्प के साथ कर्ताबुद्धि हो जायेगी।

पू. लालचंदभाई: कर्ताबुद्धि होगी, एकत्व होगा। नय से देखना बंद कर दे।

मुमुक्षु: **द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से देख**, **निश्चयनय से नहीं**।

पू. लालचंदभाई: द्रव्य स्वभाव व्यवहारनय से तो जाना ही नहीं जा सकता, वह तो प्रश्न ही नहीं है। परंतु द्रव्य स्वभाव को निश्चयनय से भी जाना नहीं जा सकता, क्योंकि निश्चयनय भी एक पुनि (परंतु) विकल्प है। पुनि विकल्प, पुनि आता है। परंतु, अर्थात् विकल्प है, परंतु। पुनि अर्थात् परंतु एक विकल्प है, इसप्रकार। वह इसमें आता है, कलश-टीका में। वह उसमें था न, उनकी मूल भाषा में। ढूढ़ारी भाषा में था। बहुरि-बहुरि पुनि इसप्रकार आता था, मूल में।

मुमुक्षु: पुनि, ... नहीं पुनि।

पू. लालचंदभाई: पुनि, अच्छा पुनि - परंतु।

मुमुक्षु: परंतु।

मुमुक्षु: **द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से देख**, **निश्चयनय से नहीं**, **और पर्याय को स्वभाव से देख**, **निश्चय (नय) से भी नहीं।**

पू. लालचंदभाई: **निश्चयनय से भी नहीं।**

मुमुक्षु: हाँ! **निश्चयनय से भी नहीं।**

पू. लालचंदभाई: 'पर्याय का कर्ता पर्याय है' वह निश्चयनय से बात है। परंतु अब 'पर्याय का कर्ता पर्याय है' वह निश्चयनय से मत देख, उसके स्वभाव से करती है पर्याय पर्याय को। क्रिया के कारक वह पर्याय के स्वभाव से पर्याय पर्याय को करती

है। निश्चयनय से मत देख। पर्याय को भी, (उसके) स्वभाव तक पहुँच जा, तो नय का विकल्प निकल जायेगा। आहाहा! और पर्याय के स्वभाव से देखेगा तो होने योग्य होता है, उसमें कर्ताबुद्धि छूटकर जाननहार जानने में आ जायेगा। सूक्ष्म बातें हैं इसमें।

मुमुक्षु: बहुत सूक्ष्म बात। पर्याय कैसी? दो स्वभाव बताये आपने।

पू. लालचंदभाई: दो स्वभाव बताये।

मुमुक्षु: एक तो पर्याय होने योग्य होती है, वह उसका स्वभाव है। और दूसरा - इस ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही जानने में आता है, स्वभाव से ही जानने में आता है।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव से ही जानने में आता है। किसी नय से नहीं। दो बातें की हैं।

मुमुक्षु: दो स्वभाव हैं। पर्याय स्वतंत्ररूप से कर्ता होकर द्रव्य का लक्ष करती है।

पू. लालचंदभाई: करती है। बस! बस! आहाहा! द्रव्य से पर्याय की रचना नहीं होती। आहाहा! चलो आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय को स्वभाव से देख, निश्चयनय से भी नहीं।**

पू. लालचंदभाई: जिसप्रकार, द्रव्य को (उसके) स्वभाव से देख, निश्चयनय से नहीं, ऐसे ही पर्याय को (भी) उसके पर्याय स्वभाव से देख, निश्चयनय से नहीं।

मुमुक्षु: **स्वभाव से देखने पर नयविकल्प छूट जाते हैं।**

पू. लालचंदभाई: तुझे अनुभव होगा। अपूर्व है हों! आहाहा! कोई काल आया है, अच्छा काल आया है।

मुमुक्षु: **स्वभाव से देखने पर नय विकल्प छूट जाते हैं।**

पू. लालचंदभाई: **छूट जाते हैं।**

मुमुक्षु: **निश्चयनय के पक्ष से निर्णय होता है परंतु अनुभव नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: क्योंकि पक्ष में तो राग है।

मुमुक्षु: **अतः निश्चय का पक्ष भी छोड़कर स्वभाव से देखने पर अनुभव होता है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! ऊपर आया न? अनुभव कैसे होवे?

मुमुक्षु: **नय विकल्पों की कर्ताबुद्धि कैसे छूटे**?

पू. लालचंदभाई: हाँ।

मुमुक्षु: **और फिर नयों का ज्ञाता कैसे होवे?**

पू. लालचंदभाई: **कैसे होवे?** अक्षर भी ऐसे मोती के दाने जैसे हैं (कि) इसमें तो अंधा (भी) पढ़ सकता है। कागज सफेद, स्याही काली, अक्षर बड़े और अलग-अलग।

मुमुक्षु: देखता हो जाये, देखता हो जाये।

पू. लालचंदभाई: देखता हो जाये। सही बात है।

मुमुक्षु: **निश्चय का पक्ष भी छोड़कर स्वभाव से देखने पर अनुभव होता है।**

पू. लालचंदभाई: सही है।

मुमुक्षु: **श्री समयसार नाटक** (**जीव द्वार**, **गाथा १०**)**में कहा है कि**, '**जे जे वस्तु साधक है तेऊ तहां बाधक है** '**। यही बात श्री पंचाध्यायी गाथा ६४५ से ६४८ में कही है।**

पू. लालचंदभाई: **कही है।**

मुमुक्षु: **शंकाकार**: **जो व्यवहारनय का अवलंबन करता है**, **वह जैसे सामान्य रीति से मिथ्यादृष्टि है**।

पू. लालचंदभाई: देखो! व्यवहारनय का अवलंबन करता है वह तो सामान्य अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि है, उसके संबंध में तो मुझे कुछ विचारना नहीं है। इसप्रकार शंकाकार ने इतना तो स्वीकार कर लिया।

मुमुक्षु: इतना तो वह समझता है।

पू. लालचंदभाई: समझता है कि पराश्रित व्यवहार से तो साध्य की सिद्धि नहीं होती। परंतु मेरा एक प्रश्न है अब। आहाहा!

मुमुक्षु: **शंकाकार**: **जो व्यवहारनय का अवलंबन करता है**, **वह जैसे सामान्य रीति से मिथ्यादृष्टि है**।

पू. लालचंदभाई: उसमें तो कोई प्रश्न है ही नहीं। जो व्यवहार का अवलंबन करता है, जो व्यवहार के पक्ष में पड़ा है, वे तो सब मिथ्यादृष्टि हैं। वह सम्यग्दृष्टि होगा या नहीं, होवेगा या नहीं?

मुमुक्षु: वह तो कोई बात ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: होगा या नहीं या होवेगा या नहीं, ऐसा भी प्रश्न ही नहीं है। **उसी प्रकार**...

मुमुक्षु: **उसी प्रकार जो निश्चयनय का अवलंबन करता है वह मिथ्यादृष्टि क्यों है?**

पू. लालचंदभाई: यह पंचाध्यायी शास्त्र है उसमें एक प्रश्न उठा कि व्यवहारनय का अवलंबन करनेवाले जीव तो मिथ्यादृष्टि हैं। यह तो समझा जा सकता है, परंतु आपने ऐसा कहा कि निश्चयनय का अवलंबन लेनेवाले भी मिथ्यादृष्टि हैं, वह क्या? यह क्या बात है?

मुमुक्षु: यह मूल बात समझने जैसी है। ऐसी गुप्त बात है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ।) गुप्त। यह बहन, अनुभवी के अलावा यह शास्त्र कोई लिख नहीं सकता। निश्चयनय के विकल्प का निषेध कौन करे? अनुभवी कर सकता है। आहाहा! सुंदर प्रश्न किया। आपकी इतनी बात तो मैं मान्य रखता हूँ, परंतु आप ऐसा कहते हो कि निश्चयनय का अवलंबन करे वह भी मिथ्यादृष्टि है, वह क्या? वह मेरी समझ में नहीं आया, कृपा करके समझाओ।

मुमुक्षु: **अर्थात् व्यवहारनय का अवलंबन करनेवाले को मिथ्यादृष्टि कहा गया है**, **सो ठीक**।

पू. लालचंदभाई: वह तो ठीक है, इतना तो मैं मान लेता हूँ। सही है। इतना स्वीकार किया, समझ गये? इस व्यवहार का निषेध करके निश्चय में आया है। और जैसे मैं आया हूँ ऐसे ही बहुत से जीव व्यवहार का निषेध करके निश्चय में आयेंगे, और उन्हें भी तुम मिथ्यादृष्टि कहते हो, उसका कारण समझाइए। मैं भी यहाँ तक आया हूँ और मेरे जैसे अन्य जीव भविष्य में व्यवहार का पक्ष छोड़कर निश्चय के पक्ष में आयेंगे, और उन्हें मिथ्यात्व रह जायेगा! वह क्या?

मुमुक्षु: वहाँ कोई शिष्य तो बैठा नहीं था परंतु शिष्य के रूप में प्रश्न करके.....वह अपूर्वता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ!

मुमुक्षु: **व्यवहारनय का अवलंबन करनेवाले को मिथ्यादृष्टि कहा गया है**, **सो ठीक**।

पू. लालचंदभाई: **वह ठीक है**। उसमें तो मेरा प्रश्न ही नहीं है, इतना तो स्वीकार मैं कर लेता हूँ। **परंतु** ...

मुमुक्षु: **परंतु निश्चयनय का अवलंबन करनेवाले को भी मिथ्यादृष्टि ही कहा गया है वह किस प्रकार**?

पू. लालचंदभाई: यह पंचाध्यायी जिसमें यह गुरुदेव की उपस्थिति में पूरा पढ़ा गया था, उसमें यह प्रश्न हुआ है। आहाहा! उसका उत्तर माँगता है शिष्य। उत्तर देंगे। आहाहा! **उत्तर**...

मुमुक्षु: **पू. लालचंदभाई: ठीक है**, अर्थात् वह भी मिथ्यादृष्टि ही है।**ठीक है**।

पू. लालचंदभाई: सत्यं।

मुमुक्षु: **ठीक है**, **परंतु निश्चयनय से भी विशेष कुछ है।**

पू. लालचंदभाई: हाँ, **कुछ है।**

मुमुक्षु: **परंतु निश्चयनय से भी विशेष कुछ है। वह सूक्ष्म है**, **इसलिये वह गुरु के ही उपदेश योग्य है।**

पू. लालचंदभाई: एक अनुभवी पुरुष तुझे मिलेंगे, तब वे तुझे कहेंगे, और तुझे ख्याल आ जायेगा। श्रीगुरु अर्थात् आत्मज्ञानी, उन्हें गुरु कहने में आता है। शास्त्रपाठी गुरु नहीं है, आत्मज्ञानी गुरु (हैं)।

मुमुक्षु: **इसलिये वह गुरु के ही उपदेश योग्य है। महनीय गुरु के सिवा उसका स्वरूप कोई नहीं बतला सकता।**

पू. लालचंदभाई: वह तो निश्चयनय के पक्ष में आकर, पक्षातिक्रांत होकर अनुभव हुआ हो, ऐसे आत्मज्ञानी पुरुष तुझे बतायेंगे।

मुमुक्षु: **महनीय गुरु के सिवा उसका स्वरूप कोई नहीं बतला सकता। वह विशेष स्वानुभूति की महिमा है**। जिन्हें स्वानुभूति हुई है, गुरु को, वे ही कह सकते हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ! वे ही कह सकते हैं। **वह विशेष स्वानुभूति की महिमा है जो कि निश्चयनय से भी बहुत सूक्ष्म**। सूक्ष्म नहीं (परंतु) **बहुत सूक्ष्म और भिन्न है।**

मुमुक्षु: प्रचलित बात से कोई अलग ही बात है यह।

पू. लालचंदभाई: अपूर्व प्रश्न किया है, प्रश्न बहुत अच्छा निकाला है। मीठाभाई,

आत्मा के अनुभव बिना यह मोक्षमार्ग प्रगट नहीं हो सकता, चाहे जितने क्रियाकांड करे, शास्त्र पढ़े, तप तपे, सूख जाये, (तो भी वह) कुछ है नहीं। और यह तो शास्त्र का आधार दिया।

मुमुक्षु: गजब बात है! जैसा आपकी वाणी में आ गया ऐसा ही आगम में निकलता है, इसमें मिला है। अर्थात् ये ऐसा कहते हैं कि ऐसे गुरु हमें मिल गये हैं, कि जिन्होंने यह बात की है।

पू. लालचंदभाई: बहुत विरले होते हैं, पात्र जीव, बस! आगे।

मुमुक्षु: **उभयं णयं विभिणिमं जाणइ णवरं तु समय पडिबद्धो।**

णदु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो॥[1]

पू. लालचंदभाई: यह किसमें से लिया है?

मुमुक्षु: यह गाथा है, समयसार की १४३ गाथा, १४३.

पू. लालचंदभाई: १४३ गाथा है? १४३ गाथा।

मुमुक्षु: दो नयों के कथन हैं (समय से प्रतिबद्ध) जानता है, किसी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता।

पू. लालचंदभाई: हाँ।**उभयं णयं विभिणिमं जाणइ**।

मुमुक्षु: पक्षातिक्रांत का स्वरूप यह है।

पू. लालचंदभाई: हाँ।

मुमुक्षु: वह आधार बड़ा है। अभी भी लेना था। पंचाध्यायी में ही था यह। पंचाध्यायी (कर्ता) ने स्वयं ही आधार लिया है।

---

1 **दोण्ह वि णयाण भणिदं जाणदि णवरं तु समयपडिबद्धो ।**

णदु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो ।। १४३ – सम्यसार में:- (१) अमृतचंद्र आचार्य की आत्मख्याति टीका, और (२) जयसेनाचार्य की तात्पर्यावृत्ति टीका और पंडित देवकीनंदनजी द्वारा पंचाध्यायी की टीका।

उभयं णयं विभिणिमं जाणइ णवरं तु समय पडिबद्धो।

णदु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ।। - पंडित मक्खनलालजी की पंचाध्यायी की टीका।

पंडित मक्खनलालजी की पंचाध्यायी पर की गई टीका में समयसार गाथा १४३ के शब्दों में और पंडित देवकीनंदनजी की टीका में थोड़ा अंतर है।

पू. लालचंदभाई: पंचाध्यायीकार ने स्वयं आधार लिया है? वह ही मुझे कहना था। वह ही मुझे पूछना था। पंचाध्यायीकार ने यह समयसार का आधार स्वयं लिया है, मूल कुंदकुंद भगवान का।

मुमुक्षु: अर्थात् अमृतचंद्र आचार्य ने कुंदकुंद आचार्य का आधार लिया।

पू. लालचंदभाई: आधार लिया है। किसी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता। वह स्वयं उन्होंने जो जवाब दिया, महान गुरु कहते हैं उन गुरु का आधार उन्होंने दिया। नहीं तो स्वयं कह सकते थे, स्वयं तो कह सकते थे, (क्योंकि) स्वयं गुरु हैं, ज्ञानी थे, लिखनेवाले। उन्होंने यह आधार दिया दो हजार वर्ष पहले (का)। महान गुरु यह कह सकते हैं, देखो। आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार की १४२-१४३-१४४ गाथा अंतिम हैं, समाप्त! आहाहा! 'निश्चयनय से आत्मा अभेद है, अखंड है, शुद्ध है' उससे क्या? आहाहा! पढ़ो।

मुमुक्षु: 'उससे क्या?' में कितनी गंभीर बात थी यह! 'उससे क्या?' कहा, उसमें क्या कहना चाहते थे मुनिराज?

पू. लालचंदभाई: वह यह! अर्थात् कि व्यवहारनय का पक्ष तो पहले से हम छुड़ाते आए हैं, उसकी बात तो अब हम करते ही नहीं हैं। हमारा शिष्य यहाँ तक तो आ गया है। निश्चयनय के विषय को नय द्वारा, विकल्प द्वारा, मानसिक ज्ञान द्वारा तो ग्रहण किया है परंतु अभी विकल्प छूटता नहीं है, निश्चयनय का विकल्प छूटता नहीं है। निश्चयनय का जो विकल्प है वह विकल्प मिथ्यात्व सहित का है, मिथ्यात्व है, वह अनंतानुबंधी कषाय है। आहाहा! निकट भव्य जीव को (यह **द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** पढ़ने से) काम होगा।

मुमुक्षु: १४३ गाथा का आधार आप गाँव-गाँव में देते थे। **समय से प्रतिबद्ध होता हुआ** ऐसा फरमाते थे आप। बहुत दफे फरमाया आपने।

पू. लालचंदभाई: अर्थात् यह गाथा तो ऐसी है परंतु उसका पंचाध्यायी कर्ता ने आधार दिया है। खूबी तो यह है। क्योंकि उन्होंने ऐसा कहा कि श्रीगुरु, महान गुरु तुझे कहेंगे इसलिये उन्होंने गुरु का आधार दिया। जैसे गुरुदेव सर्वज्ञ का आधार देते हैं, समयसार का आधार देते हैं, ऐसे इन्होंने कुंदकुंद (आचार्य) का आधार दिया। आहाहा! 'ले मैं तुझे कह देता हूँ' शिष्य को ऐसा नहीं कहा। जो पूर्वाचार्य हो गये हैं न, उन्होंने ऐसा कहा है, देख! आहाहा! स्वभाव में नय नहीं हैं। स्वभाव का जो ज्ञान प्रगट

होता है उसमें भी नय नहीं होते। शुद्धोपयोग में नय नहीं होते। नय तो विकल्प है। आगे।

मुमुक्षु: कितना ऊँचा खुलासा किया, महान गुरु की व्याख्या।

पू. लालचंदभाई: आधार दिया। देखो ऐसा कह गये हैं। आहाहा! निरभिमानपना अपना।

मुमुक्षु: **निश्चयनय का अवलंबन करनेवाले को भी मिथ्यादृष्टि कहा गया है इस विषय में उक्त गाथा भी प्रमाण है।**

पू. लालचंदभाई: उक्त गाथा का मैंने प्रमाण दिया है।

मुमुक्षु: **उसका अर्थ यह है कि जो दो प्रकार के नय कहे गये हैं**। **उसका अर्थ यह है कि जो दो प्रकार के नय कहे गये हैं उन्हें सम्यग्दृष्टि जानता तो है**।

पू. लालचंदभाई: **जानता तो है**, उनका ज्ञाता है।

मुमुक्षु: **परंतु किसी भी नय के पक्ष को ग्रहण नहीं करता है**।

पू. लालचंदभाई: उसका स्वामी नहीं होता है। नयों के विकल्प हैं परंतु उनका स्वामी नहीं होता, अर्थात् उनके साथ कर्ता-कर्म संबंध टूट गया है। भेदज्ञान हो गया है, अतः उनका ज्ञाता रहता है। इतना व्यवहार (रखा)।

मुमुक्षु: **उन्हें सम्यग्दृष्टि जानता तो है परंतु किसी भी नय के पक्ष को ग्रहण नहीं करता है**, **वह नयपक्ष से रहित है।**

पू. लालचंदभाई: परंतु सम्यग्दृष्टि होने के बाद दो नयों का ज्ञाता होता है। सम्यग्दर्शन होने से पहले दो नयों का कर्ता होता है, ज्ञाता नहीं होता। सम्यग्दृष्टि शब्द प्रयोग किया है। पक्षातिक्रांत होकर अनुभव हुआ, सविकल्पदशा में आया, दो नय से शास्त्र लिखे, दो नय से किसी को समझाये, समय हो तो। परंतु उसका ज्ञाता है, उसका आग्रही नहीं है। हेयबुद्धि से जानता है न! उसमें उपादेयबुद्धि नहीं होती और ज्ञेयबुद्धि भी नहीं होती। विकल्प को, नय के विकल्प को मैं नहीं जानता, इंद्रियज्ञान जानता है। मैं तो मेरे आत्मा को जानता हूँ। ये अंदर के खेल हैं सब। आहाहा! 'मैं उसे जानता हूँ' तो मैंपना, तो वह ज्ञेय हो गया। उसका ज्ञेय नहीं है, उसका ज्ञेय तो ज्ञायक हो गया है और अधिक होवे तो ज्ञान उसका ज्ञेय है, परंतु नय ज्ञेय नहीं है उसका।

मुमुक्षु: दो नयों का ज्ञाता है उसका यह रहस्य (है)।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। उसका प्रतिभास होता है भले। आहाहा! प्रतिभास की अपेक्षा से कहा जाता है, भले कहा। अथवा इन्द्रियज्ञान की अपेक्षा से भले कहा जाये (दो नयों का) ज्ञाता है, परंतु वास्तव में तो - वह तो ज्ञायक का ज्ञाता है। वास्तव में 'भगवान तू पर को जानता ही नहीं' (अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय, पृष्ट-१३९) यह नयज्ञान तो पर है। आहाहा! यहाँ अतीन्द्रियज्ञान अभेद हुआ है, वहाँ से यदि भेद पड़कर छूटे तो नयों के विकल्प को जाने। नयों के विकल्प हैं, वह शरीर का एक भाग है, ज्ञेय का एक भाग है, ज्ञेय का भेद है, ज्ञान का भेद नहीं है। आहाहा! चलो। सूक्ष्म तो है।

मुमुक्षु: अरे! अपूर्व है।

पू. लालचंदभाई: लक्ष नहीं है न वहाँ? लक्ष नहीं है। आगे।

मुमुक्षु: **इस गाथारूप सूत्र से यह बात सिद्ध हुई कि सम्यग्दृष्टि निश्चयनय का भी अवलंबन नहीं करता है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! उसे तो आत्मा का अवलंबन है।

मुमुक्षु: स्वभाव का अवलंबन करता है।

पू. लालचंदभाई: है, हाँ।

मुमुक्षु: **दूसरी बात यह है कि निश्चयनय को भी आचार्य ने सविकल्प बतलाया है और जितना सविकल्प ज्ञान है उसे अभूतार्थ कहा है। जैसा कि पहले कहा गया है गाथा-५०६ में**, '**यदि वा ज्ञानविकल्पो नयो विकल्पोस्ति सोप्यपरमार्थ:**' **इसलिये सविकल्प-ज्ञानात्मक होने से भी निश्चयनय मिथ्या सिद्ध होता है**।

पू. लालचंदभाई: आहाहा!

मुमुक्षु: **तथा अनुभव में भी यही बात आती है कि जितने भी नय हैं वे सभी परसमय-मिथ्या हैं**। **परसमय-मिथ्या हैं तथा उन नयों का अवलंबन करनेवाला भी मिथ्यादृष्टि है।**

पू. लालचंदभाई: कल बात की थी कि यह धंधा हम सबने पूर्व में अनंतबार करके, द्रव्यलिंगी मुनि हुआ। नय तक तो आ गया था, नयज्ञान तक आ गया, और व्यवहारनय हेय है वहाँ तक आया, परंतु निश्चयनय उपादेय है ऐसा (शल्य) रह गया।

मुमुक्षु: अर्थात् इन्द्रियज्ञान उपादेय है ऐसा (शल्य) रह गया।

पू. लालचंदभाई: ऐसा रह गया। बस! नवमें ग्रैवेयक तक अनंतबार गया, एक

बार, दो बार नहीं। आत्मा तो अनादि का चार गति में भटक रहा है न। आहाहा! वह जब निकटभव्य होता है तब आत्मज्ञानी गुरु मिलते हैं और ऐसी बात बाहर आती है।

मुमुक्षु: यह साहब गुप्त बात रह गई थी, आपके द्वारा बाहर आ गई यह। वास्तव में!

पू. लालचंदभाई: यह बात गुप्त थी। शास्त्र के बहाने भी मरता है। जयपुर में बहुत चला पूरे दिन। आहाहा! शास्त्र ज्ञान के नाम पर भी मिथ्यात्व रह जाता है। शाम को फिर... तुम थे न?

मुमुक्षु: हाँ जी।

पू. लालचंदभाई: बहन थी। और आज तो पूरे दिन ऐसा विचार आया। फिर बहन ने कहा वह बात सच्ची है। यह १७३ कलश में है। फिर कलश-टीका निकलवाई, ढूंढवाया सेठी भाई के पास १७३ कलश। उसके ऊपर से बहन को विचार आया, ओहो! जितने व्यवहार उतने मिथ्यात्व 'तेई विवहार भाव केवली-उकत हैं' (नाटक समयसार बंध द्वार, गाथा ३२)। आहाहा! बस! मैंने कहा समाधान हो गया, समाधान हो गया। व्यवहार का पक्ष सूक्ष्म रह जाता है, यह निश्चय का पक्ष अर्थात् व्यवहार का पक्ष है। निश्चय का अर्थात् शुद्धात्मा संबंधित निश्चय का पक्ष अर्थात् राग, वह तो व्यवहार ही है न? वह कहाँ निश्चय है?

मुमुक्षु: पक्ष का पक्ष है न?

पू. लालचंदभाई: पक्ष का पक्ष है। गुरुदेव ने पहले तो शुद्धात्मा का निर्णय अपूर्व आने के बाद अनुभव होता है (ऐसा कहा था)। अभी पक्ष में भी आते नहीं हैं, शुद्धात्मा का निर्णय करते नहीं हैं जीव। फिर थोड़े टाइम बाद उन्हें ख्याल आया कि यह तो निर्णय तो किया नहीं परंतु निर्णय के पक्ष में आये हैं जीव। निर्णय का कुछ काम नहीं है - उन्होंने कहा। निर्णय-फिर्णय की बात नहीं है यहाँ पर, सीधा आत्मा को जान। उन्हें ख्याल आ गया। समझ गये? पक्ष तो आया नहीं है परंतु पक्ष का विकल्प।

मुमुक्षु: हाँ, पक्ष आ गया है ऐसा भ्रम हो गया।

पू. लालचंदभाई: भ्रम हो गया उसे।

मुमुक्षु: पक्ष का पक्ष हो गया।

पू. लालचंदभाई: पक्ष का पक्ष हो गया। बिल्कुल पक्ष-फक्ष की बात नहीं है

यहाँ पर। फिर (गुरुदेव ने) कहा शुद्धनय का पक्ष कभी आया नहीं अर्थात्? अर्थात् आत्मा का अनुभव हुआ नहीं, ऐसा अर्थ है उसका, इसप्रकार। पहले शुद्धनय का पक्ष आया नहीं है, यह बात करते थे। और बाद में पता चला उन्हें, 'नहीं, शुद्धनय (का) पक्ष (कभी आया नहीं) अर्थात् अनंतकाल से अनुभूति नहीं हुई है'। अनुभूति कर ले। आहाहा! धर्मपिता थे न? कहाँ अटक जाते हैं जीव (उन्हें पता चल जाता है)। अटकने के स्थान तो बहुत हैं। आहाहा! आगे।

मुमुक्षु: **स्वानुभूति का स्वरूप**।

पू. लालचंदभाई: देखो अब **स्वानुभूति का स्वरूप**। पहला प्रश्न था न? उसका अब चल रहा है, वह भी चलता है।

मुमुक्षु: **उस स्वानुभूति की महिमा इसप्रकार है कि सविकल्प ज्ञान होने पर**, **निश्चयनय उन विकल्पों का निषेध करता है। परंतु** '**जहाँ न तो विकल्प ही है और न तो निषेध ही है**, **वहाँ चिदात्मा अनुभूति मात्र है।**'

पू. लालचंदभाई: निषेध का भी विकल्प नहीं, विधि का भी विकल्प नहीं, विकल्प मात्र टल जाता है और स्वभाव में ढल जाता है, तब स्वानुभव होता है। विकल्प छूट जाता है। स्वभाव का जोर आता है न! स्वभाव का जोर आता है न, तो विकल्प (छूट जाता है)। विकल्पातीत, वचनातीत है, इशारे से समझाते हैं स्वानुभव का स्वरूप। **न तो विकल्प ही है और न तो निषेध ही है**, **वहाँ आगे चिदात्मा अनुभूति मात्र है।** आगे।

मुमुक्षु: **वास्तव में जब तक श्रद्धा विपरीत है तब तक दो नयों का परस्पर सापेक्ष ऐसा सम्यग्ज्ञान भी प्रगट नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: श्रद्धा का दोष बहुत बड़ा है। श्रद्धा के बल से उपयोग अंदर में आता है। उपयोग बलवान नहीं है, सविकल्प है इसलिये बलवान नहीं है। जितनी श्रद्धा बलवान है उतनी ज्ञान की पर्याय बलवान नहीं है। श्रद्धा निर्विकल्प होने से बलवान है। ज्ञान की पर्याय सविकल्प होने से कमजोर है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय में दो नय खड़े होते हैं, श्रद्धा की पर्याय में नय ही नहीं है। अर्थात् जिसमें दो नय खड़े होते हैं वह ज्ञान कमजोर कहलाता है और जिसमें नय ही खड़े नहीं होते वह बलवान श्रद्धा है। श्रद्धा के बल से ही उपयोग अंदर में आता है। क्योंकि 'मैं पर को नहीं जानता', 'मैं पर को नहीं जानता' उसमें ज्ञान का बल नहीं है अपितु श्रद्धा का बल है।

क्योंकि 'ज्ञान तो कथंचित् स्व और कथंचित् पर को जानता है, स्वपरप्रकाशक है' - ऐसा शल्य ज्ञान में पड़ा है। ज्ञान ने वह ग्रहण कर रखा है, स्वपरप्रकाशकपना। श्रद्धा तो कहती है कि श्रुतज्ञान की पर्याय का ही मेरे में अभाव है, अतः स्वपरप्रकाशक की बात ही मेरे में नहीं है।

वह बैंगलोर में कहा था बहन ने। ट्रेन (train)चली जाये तो भले ही चली जाये, मैं कल चली जाऊँगी। टिकिट थी। मैंने कहा बहन छोड़ दो, अब टाइम हो गया है, उठो। उठे ही नहीं। आहाहा! 'आत्मा पर को जानता नहीं है' वह श्रद्धा का बल है। और 'मैं पर को जानता हूँ' वह मिथ्यात्व है, ज्ञान का दोष नहीं है। श्रद्धा के दोष से ज्ञान का दोष आया है। श्रद्धा बलवान बहुत है। बलवान इसीलिये कि निर्विकल्प है, भेदाभेद को विषय नहीं करती। सविकल्प नहीं है, निर्विकल्प है।

देखो न, श्रद्धा में ऐसा आया कि परपदार्थ मेरा, वह किसी के समझाने से नहीं समझता। गुरु समझाते हैं (तो भी), 'नहीं, ये परपदार्थ मेरे ही हैं' - वह (श्रद्धा) निर्विकल्प है न? मिथ्यात्व भी निर्विकल्प! श्रद्धा है न वह निर्विकल्प ही होती है, जिसे पकड़ती है उसे पकड़ती है। और यदि पलट गई, तो देव आयें तो भी बदलती नहीं। सम्यग्दर्शन होने के बाद श्रद्धा पलट गई? देव आयें तो (भी) पलटती नहीं। श्रद्धा को कहता है ज्ञान, श्रद्धा को ज्ञान कहता है कि देखो, मैं व्यवहारनय से पर को जानता हूँ, समझ गये? निश्चयनय से तो तेरे पक्ष में हूँ - स्व को जानता हूँ, परंतु व्यवहार से मैं पर को जानता हूँ। तू कबूल कर ले न, इतना? सम्यग्ज्ञान है मेरे पास, वापस ऐसा कहता है ज्ञान हों! यह सम्यग्ज्ञान होने के पश्चात संवाद है। श्रद्धा कहती है बिल्कुल नहीं। यदि मैं तेरे पक्ष में आऊँ तो मेरी भी मौत और तेरी भी मौत, दोनों मरेंगे! इसीलिये उसके बजाय तू मेरे पक्ष में रह। अतः ज्ञान हथियार नीचे डाल देता है, बात तेरी सच्ची है। ऐसे अंदर के खेल हैं।

कि कथंचित् निर्मल पर्याय का कर्ता है, (ऐसा) व्यवहारनय कहता है श्रद्धा को, हों! श्रद्धा कहती है कि आत्मा त्रिकाल अकर्ता है, कथंचित् उसमें है ही नहीं, स्याद्वाद नहीं है, आत्मा के स्वभाव में स्याद्वाद का अभाव है। वहाँ ज्ञान ने हथियार नीचे डाल दिये कि बात तेरी सच्ची है। ये सभी अंदर के खेल हैं। यह श्रद्धा का बोल अच्छा है। आहाहा! श्रद्धा का बोल अच्छा है। **वास्तव में जब तक श्रद्धा विपरीत है तब तक दो नयों का परस्पर सापेक्ष ऐसा सम्यग्ज्ञान भी प्रगट नहीं होता।**

आहाहा! आगे पढ़ो।

मुमुक्षु: **निरपेक्ष तत्त्व की दृष्टि बिना**।

पू. लालचंदभाई: **दृष्टि बिना** अर्थात् श्रद्धा बिना। **दृष्टि बिना** अर्थात्? श्रद्धा बिना।

मुमुक्षु: **अपेक्षाओं का ज्ञान सम्यक् नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: अपेक्षा लगाने लगा पहले से ही। आहाहा!

मुमुक्षु: सोगानीजी ने फरमाया था 'मूल बात में अपेक्षा लगाता है, हमको बहुत खटकता है'।

पू. लालचंदभाई: खटकता है, बस! अपेक्षा लगा दे, (तो) गया दुनियाँ में से। एक ज्ञान सच्चा करने जाता है परंतु श्रद्धा उसकी विपरीत रहती है, वह उसे पता नहीं चलता। उसे ऐसा लगता है कि अब मेरा ज्ञान सापेक्षता से सच्चा हो रहा है। निरपेक्षा नया मिथ्या नय सापेक्षा नय सम्यक् नय (आप्त-मीमांसा गाथा १०८), उसका पढ़ा हुआ है। समझ गये? वह श्रद्धा के पक्ष में नहीं आ सकता। आहाहा!

श्रद्धा कहती है 'स्वप्रकाशक ही है, परप्रकाशक नहीं है और स्वपरप्रकाशक भी नहीं है'। ज्ञान कहता है कि 'नहीं! स्वपरप्रकाशक है'। समझ गये? आहाहा! ऐसा का ऐसा रह गया। श्रद्धा के पक्ष में आजा। फिर ज्ञान तो देख क्या होता है! ज्ञान मुड़ जाता है अंदर में (और) स्वप्रकाशक में अनुभव होता है, श्रद्धा के बल से - 'जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर नहीं जानने में आता। अकर्ता हूँ, कर्ता नहीं'। कथंचित्? कि बिल्कुल नहीं, सर्वथा अकर्ता! स्वभाव सर्वथा होता है।

मुमुक्षु: सही है। स्वभाव सर्वथा ही होता है।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! गुरुदेव ने जो दृष्टि का विषय दिया ४५ वर्ष, वह यह - (आत्मा) अकर्ता है वह जैनदर्शन की पराकाष्ठा है। ऐसा कहा न?

मुमुक्षु: हा जी।

पू. लालचंदभाई: अर्थात् अकर्ता है और कर्ता नहीं है ऐसा आ गया। वाह, वाह! गुरुदेव वाह! विराजमान हैं यहाँ (फोटो में)। देखो, यह पैराग्राफ बहुत अच्छा है, पढ़ो।

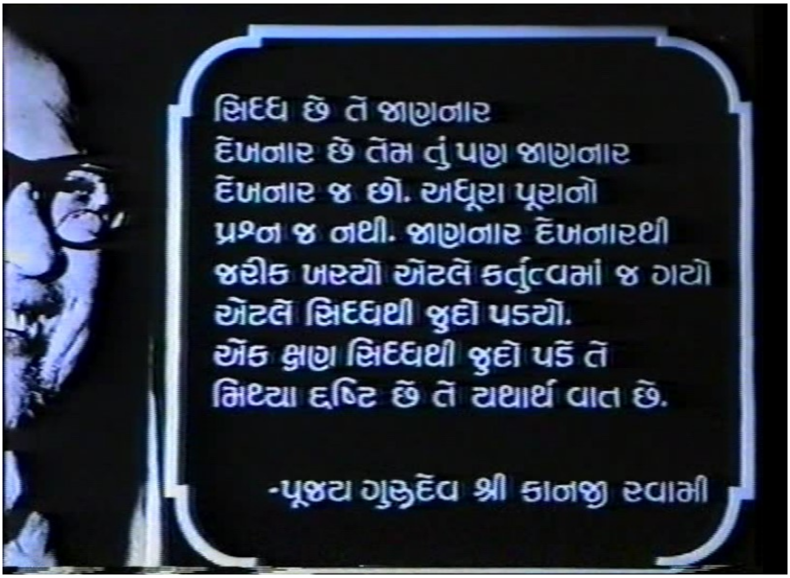

मुमुक्षुः **निरपेक्ष तत्त्व की दृष्टि के बिना**, **अपेक्षाओं का ज्ञान**, **सम्यक् नहीं होता। अतः आत्मार्थी को प्रथम श्रद्धा की संशुद्धि हेतु स्वभाव से स्वभाव को देखना चाहिये**, **किसी नय से नहीं।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! (अज्ञानी कहता है) कि श्रद्धा की शुद्धि होती है स्याद्वाद से। (ज्ञानी कहते हैं) कि झूठी बात है। आत्मा में स्याद्वाद का अभाव होने पर भी निश्चयाभासपना नहीं आता है (श्री देवसेनाचार्य कृत नयचक्र, पृष्ट ३१)। आहाहा! टंकोत्कीर्ण शब्द हैं, टंकोत्कीर्ण। स्याद्वाद का अभाव होने पर भी, कथंचित् का अभाव होने पर भी, सर्वथा में आयेगा तो भी निश्चयाभास नहीं होगा, अनुभव हो जायेगा, जा! आहाहा! गुरुदेव की उपस्थिति में यह गाथा आयी थी हाथ में, छपवाकर विद्वानों को दी। किसी की तरफ से suport (सहकार) नहीं मिला, क्योंकि स्याद्वाद का-व्यवहार का पक्ष है न। उसमें लिखा है कि आत्मा में स्याद्वाद का अभाव (है) तो भी निश्चयाभासपना नहीं आता है। कॉपी कराकर दी (और) पीछे पड़ गया उसका संस्कृत का हिन्दी कराने (के लिये)। और कोई सही नहीं कर सका, एक मात्र हुकुमचंदजी ने किया, वह बहुत अच्छा किया। उस पुस्तक का (संस्कृत से) हिन्दी करने के लिए, अनुवाद करने के लिए जयपुरवालों को लिखा। समझ गये? (नहीं हुआ), नहीं तो पूरी पुस्तक हो जाती। आहाहा! आत्मा में स्याद्वाद का अभाव! आहाहा! कौन सुने यह? मोक्ष जानेवाला हो वह सुनता है और अपना लेता है, जो

निकटभवी हो। आहाहा! कितनी श्रद्धा के बल से उन्होंने लिखा आत्मा में स्याद्वाद का अभाव! आत्मा में स्याद्वाद नहीं होता, ज्ञान की पर्याय में स्याद्वाद होता है, वह तो ज्ञान हो गया।

मुमुक्षु: वह भी सम्यग्ज्ञान में होता है।

पू. लालचंदभाई: तब।

मुमुक्षु: आत्मा में तो ज्ञान का अभाव है इसलिये आत्मा में स्याद्वाद नहीं होता।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान ही नहीं है उसमें। वह जब जामनगर में कहा, धड़ाका किया। बहुत वर्षों बाद कहा 'एक बार बात तो फैलने दो', फिर जो हो वह ठीक। उसमें उस भाई ने पकड़ा, उनका पुत्र। त्रंबकभाई के पुत्र ने बात पकड़ी, बहुत पकड़ी। खुलेआम खड़े होकर कहा 'यह बात अपूर्व आयी है'। हमें ऐसा ही मिला करता है।

मुमुक्षु: हाँ! वह ही कह रही हूँ, कि कहाँ से ऐसा सब मिल जाता है आपको!

मुमुक्षु: यह आपकी करुणा सभी का ध्यान खींचने के लिये सामने...

पू. लालचंदभाई: दिया, दिया, विद्वानों को दिया। नाम नहीं दे रहा हूँ, विद्वानों को दिया। (किन्तु कुछ नहीं हुआ), समझ गया मैं। आहाहा! स्वभाव का पक्ष नहीं है न? नहीं तो चर्चा करते मेरे साथ कि आपने यह भिजवाया और इसमें भी लिखा (है), वह क्या? वरना स्याद्वाद तो, स्याद्वाद तो जैनदर्शन का trademark (खास निशान) है। और आत्मा में स्याद्वाद का अभाव? आहाहा! अपरिणामी में स्याद्वाद नहीं होता।

मुमुक्षु: सही बात है। सही। परिणामी में स्याद्वाद का सद्भाव।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अपरिणामी में (स्याद्वाद का) अभाव है। परिणामी भी सम्यक् प्रकार से आत्माराम होवे तब उस अनुभवज्ञान में स्याद्वाद का सद्भाव है। वहाँ किशोरभाई के घर, बंगले पर, सुबह चर्चा हुई यह। बहन आयी। यह बात की कि 'आत्मा में स्याद्वाद का अभाव है' आज जाहिर कर देना है। फिर मोटर में बैठे, बहन आयी। (मैंने कहा) आत्मा में स्याद्वाद का अभाव, परंतु अनुभवज्ञान में स्याद्वाद का सद्भाव। तुम नहीं थे न उस समय?

मुमुक्षु: था।

पू. लालचंदभाई: थे। ऐसा? ठीक। हमारे साथ साथ ही रहते हैं हों! साथ साथ ही। खूब अर्पणता, खूब। कोई प्रशंसा नहीं की जा सकती, ऐसी अर्पणता। आहाहा!

तन से, मन से और धन से तीनों प्रकार से, ऐसा। आहाहा! धन से गौण है, धन से गौण है, परंतु तन से, तन से साथ ही होते हैं हों! आहाहा! श्रवणबेलगोला में, वहाँ हिम्मतनगर में, दो बजे मैं बाथरूम (के लिये) उठूँ, धीरे से, उनकी नींद न खुल जाये, तो भी उठ जाते। आहाहा! पैर दबाना, शरीर की मालिश करना, बाम लगाना। आहाहा!

मुमुक्षु: अरे, ये परमाणु भी साहेब पवित्र हो गये आपके स्पर्श से।

पू. लालचंदभाई: खूब सेवा करते हैं, खूब, अर्पणता। ऐसे जीव कम हैं। आहाहा! नहीं तो लाखोपति, करोड़पति है (ये) व्यक्ति, कोई साधारण नहीं है।

मुमुक्षु: इसके आगे उसकी क्या कीमत है? कोई कीमत नहीं है।

पू. लालचंदभाई: कोई कीमत नहीं है। एक बार शुरुआत में गुरुदेव को अपनाने के बाद गुरुदेव के पैर धो रहा था सुबह में। वहाँ से आते न, सभी, तब मैं पैर धोता था। गुरुदेव कितने विचक्षण! मुझे कहते हैं 'लालभाई!'। 'जी प्रभु!'। कि एक अन्यमति में शिवाजी पैर धोते थे रामतीर्थ के। रामतीर्थ जैसा कोई नाम उनका है न? तो कहते हैं उसके गुरु, शिवाजी को हों! शिवाजी तो राजा बड़ा। अरे! हमारे कोई चक्रवर्ती पैर धोये न तो भी हमें तत्त्व का जो विचार आता है, उसके आगे इसकी कोई कीमत नहीं है! ऐसा मुझे कहा। सबकुछ कह दिया। आहाहा! गुरुदेव तो गुरुदेव (थे)। याद आता है प्रसंग। आहाहा! यह मार्ग अपूर्व मार्ग है, इस मार्ग को अपना ले (तो) निहाल हो जाये। आहाहा! अपने विकल्प में (भी) अपनायेगा न, तो विकल्प नहीं रहेगा।

मुमुक्षु: ऐसी बात आये तो (विकल्प) खड़ा कैसे (रहे)?

पू. लालचंदभाई: कहाँ से रहे?

मुमुक्षु: ऐसा स्वरूप!

पू. लालचंदभाई: आगे।

मुमुक्षु: **यह ही भाव श्रीमान् अमृतचंद्राचार्यदेव ने समयसार कलश ६९-७० में दर्शाया है।**

पू. लालचंदभाई: बोलो कलश।

मुमुक्षु:- **य ऐव मुक्त्वा नयपक्षपातं**

स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।

विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥६९॥

पू. लालचंदभाई: साक्षात् अमृत को पीता है, साक्षात् आहाहा! प्रत्यक्ष। आहाहा!

मुमुक्षु: **श्लोकार्थ** (६९):- **जो नयपक्षपात को छोड़कर** ...

(**भावार्थ**:-) ... **जब नयों का सब पक्षपात दूर हो जाता है तब वीतराग दशा होकर स्वरूप की श्रद्धा निर्विकल्प होती है**, **स्वरूप में प्रवृत्ति होती है और अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। अब २० कलशों द्वारा नयपक्ष का विशेष वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो ऐसे समस्त नयपक्षों को छोड़ देता है**, **वह तत्त्ववेत्ता** (**तत्त्वज्ञानी**) **स्वरूप को प्राप्त करता है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! उसका (नय का) ज्ञान कराते आये हैं और विकल्प छूट जाते हैं। दो नयों से ज्ञान कराते हैं (और) उसे छोड़कर अंदर में गुप्त होते हैं।

मुमुक्षु: **श्लोकार्थ (७०):- जीव कर्मों से बंधा हुआ है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव कर्मों से नहीं बंधा हुआ है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है**।

पू. लालचंदभाई: वह दो विकल्प उत्पन्न करता है, इसप्रकार। वहाँ धर्म का निषेध नहीं है, विकल्प का निषेध करना है। संसारी जीव कर्म से बंधा हुआ है ऐसा एक व्यवहारनय का विकल्प, और बंधा हुआ नहीं है ऐसा दूसरा (निश्चयनय का) विकल्प। आहाहा! (दोनों) विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! संयोग छूटता नहीं है, आठ कर्म का, निमित्त अपेक्षा से जो बंध अवस्था है वह छूटती नहीं है। आगे। यह तो अंदर से विचारे तो ... पूरा हो ऐसा है।

मुमुक्षु: **इसप्रकार चित्स्वरूप जीव के संबंध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता** (**वस्तुस्वरूप का ज्ञाता**) **पक्षपात रहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है** (**अर्थात् उसे चित्स्वरूप जीव जैसा है वैसा निरंतर अनुभव में आता है**)**।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! होने योग्य हुआ करता है और जाननहार जानने में आता है। बस! दूसरा कुछ नहीं है। ज्ञानस्वरूप जीव तो ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! बंधा हूँ ऐसा विकल्प नहीं है और अबद्ध हूँ ऐसा (भी) विकल्प नहीं है। दो नयों के विकल्प को छोड़ देता है।

मुमुक्षुः **भावार्थः**-

पू. लालचंदभाईः **इस ग्रंथ में** ...

मुमुक्षुः **इस ग्रंथ में पहले से ही व्यवहारनय को गौण करके और शुद्धनय को मुख्य करके कथन किया गया है। चैतन्य के परिणाम परनिमित्त से अनेक होते हैं उन सबको आचार्यदेव पहले से ही गौण कहते आये हैं और उन्होंने जीव को शुद्ध चैतन्यमात्र कहा है। इसप्रकार जीव-पदार्थ को शुद्ध**, **नित्य**, **अभेद चैतन्यमात्र स्थापित करके अब कहते हैं कि- जो इस शुद्धनय का भी पक्षपात** (**विकल्प**) **करेगा वह भी उस शुद्ध स्वरूप के स्वाद को प्राप्त नहीं करेगा।** स्वाद को प्राप्त नहीं करेगा।

पू. लालचंदभाईः आहाहा! **इस शुद्धनय का भी पक्षपात करेगा**, **वह भी**, वह भी! व्यवहार के पक्षवाले की बात तो दूर रहो, **वह भी शुद्ध स्वरूप के स्वाद को**, आनंद को **प्राप्त नहीं करेगा**, सम्यक् नहीं होगा।

मुमुक्षुः **अशुद्धनय की तो बात ही क्या है?**

पू. लालचंदभाईः लो!

मुमुक्षुः **किन्तु यदि कोई शुद्धनय का भी पक्षपात करेगा तो पक्ष का राग नहीं मिटेगा**, **इसलिये वीतरागता प्रगट नहीं होगी। पक्षपात को छोड़कर चिन्मात्र स्वरूप में लीन होने पर ही समयसार को प्राप्त किया जाता है। इसलिये शुद्धनय को जानकर**, **उसका भी पक्षपात छोड़कर शुद्धस्वरूप का अनुभव करके**, **स्वरूप में प्रवृत्तिरूप चारित्र प्राप्त करके**, **वीतराग दशा प्राप्त करनी चाहिये।**

पू. लालचंदभाईः **करनी चाहिये।** हो गया टाइम। **यह ही भाव समयसार कलशटीका**, **कलश-९३ में भी पांडे राजमलजी ने दर्शाया है**। अंतिम अब कल पूरा होगा।

ॐ

प्रथम प्रवेश द्वार पेज १०-११
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट
तारीख : १९-१०-१९९०

प्रवचन LA ४०७

पेज नं. १०. **द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** पेज नं. १० बोलो।

मुमुक्षु: **जितने नय हैं उतने श्रुतज्ञानरूप हैं**; **श्रुतज्ञान परोक्ष है**, **अनुभव प्रत्यक्ष है**; **इसलिये**।

पू. लालचंदभाई: अर्थात् नय से आत्मा का अनुभव नहीं होता क्योंकि नयज्ञान स्वयं परोक्ष है। और अनुभव होता है तब नयज्ञान नहीं होता, प्रत्यक्षज्ञान, अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, अतः वह प्रत्यक्ष है। **इसलिये**...

मुमुक्षु: **इसलिये श्रुतज्ञान के बिना जो ज्ञान है**।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! इन्द्रियज्ञान के बिना जो ज्ञान है, अतीन्द्रियज्ञान है, **वह प्रत्यक्ष अनुभव करता है।** फिर से **इसलिये श्रुतज्ञान के बिना**, अर्थात् मानसिक ज्ञान के बिना, इन्द्रियज्ञान के बिना, **जो** अतीन्द्रिय **ज्ञान है वह प्रत्यक्ष अनुभव करता है** आत्मा का। **इन्द्रिय**ज्ञान आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता क्योंकि परोक्ष है। आगे। **इसलिये**, **इसलिये**...

मुमुक्षु: **इसलिए प्रत्यक्षपने अनुभव करता हुआ जो कोई शुद्ध स्वरूप आत्मा वह ही ज्ञानपुंज वस्तु है**, **ऐसा कहा जाता है।**

पू. लालचंदभाई: **ऐसा कहा जाता है।** बस! इन्द्रियज्ञान को छोड़कर अंतर्मुख होकर अतीन्द्रियज्ञान से जो आत्मा को अनुभवता है, उसे **शुद्ध स्वरूप आत्मा वह ही ज्ञानपुंज वस्तु है**। ज्ञान अर्थात् अतीन्द्रियज्ञानमयी ऐसा कहा जाता है। सही है। आगे।

मुमुक्षु: **पूज्य भाईश्री ने परम करुणा करके फरमाया कि**, '**हे भव्यों**! **हमारा आशय तो**, **सब नयातीत होओ**, **परमानंद को प्राप्त करो इतना है**'।

अतः स्वभाव प्राप्ति की रीति नयों से अलग है।

पू. लालचंदभाई: पूरी रीति ही अलग है। नय में अटक गये हों तो नय से अनुभव नहीं होता, ज्ञान से अनुभव होता है। आगे।

मुमुक्षु: **श्रीमद् राजचंद्रजी ने भी यह रहस्य पत्र नं. २०८, वर्ष २४वाँ, मुंबई माघ कृष्ण-३० १९४७ - में दर्शाया है।**

पू. लालचंदभाई: उन्नीस सौ सैंतालीस में, समकित शुद्ध प्रकाश्यु रे (धन्य रे दिवस,राजपद, श्रीमद् राजचंद्रजी)। १९४७ के साल में जब उनको सम्यग्दर्शन हुआ। सम्यग्दर्शन होने के बाद का यह लेख है। स्वयं लिखते हैं उन्नीस सौ सैंतालीस में, समकित शुद्ध प्रकाश्यु रे! अर्थात् व्यवहार समकित तो हो गया था पहले - निर्णय, परंतु प्रत्यक्ष अनुभव अब हुआ ४७ में। और सम्यग्दर्शन के बाद का यह लेख है। यह लेख बहुत ऊँचा है, काफी ऊँचा है। इस लेख को यदि ख्याल में रखे तो इसमें कहीं उसे विरोध नहीं लगेगा। इस लेख को मुख्य रखना चाहिए, बहुत स्पष्ट किया है इसमें। दसवाँ पेज है मोदी साहब, नीचे का अंतिम पैराग्राफ।

मुमुक्षु: **अनंत नय हैं, एक एक पदार्थ अनंत गुण से और अनंत धर्म से युक्त है।**

पू. लालचंदभाई: सहित है। अनंत गुण से सहित है और अनंत धर्मों से भी सहित है। गुण निरपेक्ष होते हैं और धर्म सापेक्ष होते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण होते हैं, उनकी पर्याय होती है। और धर्म सापेक्ष हैं, वे धर्म हैं परंतु उनकी पर्याय नहीं होती, धर्म की पर्याय नहीं होती। धर्म के दो प्रकार, एक द्रव्य अपेक्षित धर्म जैसे कि द्रव्य नित्य है। यह एक मुद्दे की बात है। क्या कहते हैं?

किन्हीं भाईयों को जगह कम पड़ती हो तो दो-तीन भाई यहाँ आ सकते हैं। आ सकते हैं यहाँ। यहाँ आवें, जगह खाली है। भाईयों! जगह बहुत है जितने आयें उतने समा जायें। सिद्ध लोक में तो, एक वहाँ अनंत।

मुमुक्षु: एक सिद्ध में सिद्ध अनंत जान। सत्ता सबकी भिन्न-भिन्न पहचान।

पू. लालचंदभाई: सत्ता अलग-अलग परंतु एक में अनंत। अरूपी हैं न? इसलिये कोई जगह नहीं चाहिये उन्हें।

मुमुक्षु: समोशरण में भी जगह कम नहीं पड़ती।

पू. लालचंदभाई: समोशरण में जगह कम नहीं पड़ती। चाहे जितने लोग आयें

(उतने) समा जाते हैं। ऐसा अतिशय है न वहाँ का, तीर्थंकर का। आहाहा! पुण्य प्रकृति है। यह एकदम मुद्दे की बात है।

अनंत नय हैं, नय है, वह ज्ञान का एक अंश है। नय है, वह प्रमाण ज्ञान के एक अंश का नाम नय है। **एक एक पदार्थ**, अब, एक एक (अर्थात्) छहों द्रव्य ले लेना, सभी। **एक एक पदार्थ अनंत गुण से और अनंत धर्म से** (**युक्त**) सहित **है।** जीव में अनंत गुण हैं और अनंत धर्म हैं।

अब गुण और धर्म की व्याख्या में फर्क है। अंतर यह है (कि) लक्षण भेद से भेद है। गुण होता है उसकी पर्याय होती है और धर्म होता है उसकी पर्याय नहीं होती। गुण निरपेक्ष है और धर्म सापेक्ष है। धर्म परस्पर सापेक्ष हैं। ज्ञान गुण तो निरपेक्ष है। और नित्य और अनित्य (धर्म हैं), द्रव्य अपेक्षित नित्य धर्म, पर्याय अपेक्षा से अनित्य धर्म। पर्याय का धर्म है अनित्य, नित्यपना द्रव्य का धर्म है। अब द्रव्य का धर्म नित्य है वह अनादि-अनंत है। पर्याय का धर्म अनित्य (है) वह अनादि-अनंत (है)। परंतु नित्य और अनित्य वे धर्म हैं, कोई द्रव्य अपेक्षित, कोई पर्याय अपेक्षित। एक-अनेक नित्य-अनित्य आदि, परंतु उसकी पर्याय नहीं होती। धर्म की पर्याय नहीं होती, गुण की पर्याय होती है, इसप्रकार। ऐसे गुण अनंत और धर्म भी अनंत, उनसे सहित है एक-एक पदार्थ। आगे।

एक-एक गुण और एक-एक धर्म प्रति एक-एक गुण को जाननेवाला एक-एक नय और एक-एक धर्म को जाननेवाला भी एक-एक नय, अलग-अलग। गुण अनंत, तो एक-एक गुण को जाननेवाला एक-एक नय, तो अनंत नय हो गये। धर्म अनंत, तो एक-एक धर्म को जाननेवाला एक-एक नय, तो अनंत नय हो गये। सामने विषय अनंत तो उसे विषय करनेवाले नय भी अनंत हैं, इसप्रकार। आहाहा!

एक-एक गुण और एक-एक धर्म प्रति अनंत नय परिणमते हैं; अर्थात् अनंत नय, अनंत गुण और अनंत धर्म को जानते हैं। इतना ज्ञेय-ज्ञायक (का) उसके साथ व्यवहार है। **इसलिये उस पंथ से पदार्थ का निर्णय करना चाहें** अर्थात् कि अनुभव करना चाहें **तो होता नहीं।** एक-एक नय के द्वारा एक-एक गुण को जानो, एक-एक नय के द्वारा एक-एक धर्म को जानो, तो अनंतकाल चला जाये परंतु आत्मा का अनुभव नहीं होता। **उसका पंथ** मतलब उसका मार्ग **कोई दूसरा होना चाहिये।** उसकी रीति कोई दूसरी होनी चाहिये। अनंत गुण और अनंत पर्याय को

जानने का जो साधन आगम में नय कहा, उससे कोई अलग साधन है। नय के द्वारा एक-एक धर्म को जानने पर उसे विकल्प उत्पन्न होते हैं। एक को जाने (तो) दूसरा जानना रह गया, दूसरे को जाने (तो) तीसरा जानना रह गया, तो उसमें उसे इच्छा होती है, आकुलता उत्पन्न होती है अतः रास्ता तो दूसरा है। **उसका पंथ कोई दूसरा होना चाहिये।** अब दूसरा क्या पंथ है, रास्ता, मार्ग वह बताते हैं, पंथ या मार्ग।

बहुत करके इस बात को ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते। इसे इसका रास्ता क्या है? अनंत गुण और अनंत धर्म उन्हें एक समय में कैसे जाना जा सकता है? कि एक समय में जाने जाते हैं। नय के द्वारा अनंत समय जाये तो भी पूरा नहीं होगा! क्योंकि अनंत गुण और अनंत (धर्म है इसलिए अनंत) नय (है)। काल अनंत चला जाये एक-एक समय करके तो जानने में नहीं आयेगा। उसका पंथ कोई अलग है। इन्द्रियज्ञान से जानने में नहीं आयेगा, नयज्ञान से। नयज्ञान कहो या इन्द्रियज्ञान कहो (या) मानसिक ज्ञान कहो।

बहुत करके इस बात को ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं; और वे नयादिक मार्ग के प्रति, इस नय से ऐसा है और इस नय से ऐसा है आत्मा, इसप्रकार **नयादिक मार्ग के प्रति**। (उसमें) नय-निक्षेप-प्रमाण सब ले लेना, विकल्पात्मक नय, विकल्पात्मक निक्षेप और प्रमाण। **नयादिक मार्ग के प्रति उदासीन वर्तते हैं**; उदासीन वर्तते हैं। वे गुण अनंत हैं, अनंत धर्म हैं, हैं परंतु उनकी उन्हें उपेक्षा वर्तती है, उदासीन हैं उनके प्रति। क्योंकि वे (गुण और धर्म) नय के द्वारा जाने नहीं जा सकते इसलिये नय के प्रति उदास और नय के विषय के प्रति भी उदास हैं, उपेक्षा है उनके प्रति।

और भगवान आत्मा के प्रति अपेक्षा है और अतीन्द्रियज्ञान से एक समय में सब कुछ जानने में आता है। नय के द्वारा जो अनंतकाल जाने पर भी जानने में नहीं आता, वह अंतर्मुख होकर अतीन्द्रियज्ञान से जहाँ आत्मा को जानता है, आत्मा का अनुभव करता है, वहाँ अनंत गुण और अनंत धर्म एक समय में जानने में आ जाते हैं। इसलिये सविकल्प दशा में आने पर नयों के प्रति और नयों के विषय के प्रति उदास हैं वे। उपेक्षा वर्तती है, अपेक्षा नहीं है उसकी। **उदासीन वर्तते हैं; जिससे किसी नय का एकांत खंडन नहीं होता**, नय के प्रति उदासीन हैं न, यह एकांत नय का खंडन भी नहीं और एकांत नय का मंडन भी नहीं। नय हैं, नयों के विषय भी

हैं, परंतु उसकी उपेक्षा वर्तती है और भगवान आत्मा की अपेक्षा वर्तती है। **जितनी जिसकी योग्यता है**, **उतनी उस नय की सत्ता ज्ञानी पुरुषों को सम्मत होती है।**

लो, एक-एक वाक्य स्वर्णिम है। **उन्नीस सौ सेंतालीस में समकित शुद्ध प्रकाश्युं रे**। यह सम्यग्दृष्टि होने के पश्चात् वह नयों के प्रति उदास है। उदास अर्थात् नयों का ज्ञाता है परंतु नय का पक्षपात नहीं है। इस नय से ही अनुभव होता है और इस नय से ही उसका स्वरूप समझ में आता है ऐसा पक्षपात नहीं है। ज्ञान से जानने में आता है ऐसा कहते हैं, नय से जानने में नहीं आता। नयज्ञान में विकल्प उत्पन्न होता है, आकुलता उत्पन्न होती है, दुःख होता है। और आत्मज्ञान में अनाकुल आनंद भी आता है और अनंत धर्मों और अनंत गुणों को एक समय में जान लेता है, युगपद अक्रम से।

जैसे केवली भगवान एक समय में केवलज्ञान द्वारा अनंत अपने गुणों और अनंत धर्मों को एक समय में जानते हैं, दो समय नहीं लगते। इसीप्रकार श्रुतज्ञानी भी जब स्वभाव के सन्मुख होकर निर्विकल्प ध्यान में जाता है, अतीन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा को जानता है, तब आत्मा में रहे हुये अनंत गुण और अनंत धर्म एक समय में ज्ञात हो जाते हैं।

एक-एक गुण को जानने जाये और एक-एक धर्म को जानने जाये तो नय उत्पन्न होते हैं। नय उत्पन्न होने पर आत्मा का अनुभव नाश को प्राप्त होता है। इसीलिये (ज्ञानी) नयों के प्रति उदास हैं। आत्मा का अनुभव करने का नय साधन नहीं है।

मुमुक्षु: एक-एक को जानने जाने पर इन्द्रियज्ञान ही उत्पन्न होता है।

पू. लालचंदभाई: उत्पन्न होता है। क्योंकि एक धर्म को जाने तो दूसरे अनंत धर्मों को जानना रह जाता है, इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छा का निरोध नहीं होता। और अंतर में जाने पर, आत्मा को जानने पर एक समय में सब ज्ञात हो जाता है, अतः जानने का कोई विषय बाकी नहीं रहा, इसलिये इच्छा उत्पन्न नहीं होती, इसलिए अनिच्छक और अपरिग्रही कहा। अनुभव में यह स्थिति है। आहाहा!

किसी (नय) का खंडन नहीं करता, किसी नय का मंडन नहीं करता। नयों का ज्ञाता है तथापि उदास है, उसे साधन नहीं मानता। **जितनी जिसकी योग्यता है**, **उतनी उस नय की सत्ता ज्ञानी पुरुषों को सम्मत होती है।** नयों का ज्ञाता है और

नयों का जो विषय है उसका भी ज्ञाता हो गया। नय का ज्ञाता है, नय का ज्ञाता है अर्थात्? जो मानसिक ज्ञान है न, वह नय है, उसका ज्ञाता है। उसके प्रति भी उपेक्षा है, उसे वह ज्ञान नहीं मानता। और उसके द्वारा जो धर्म जानने में आते हैं उनके प्रति भी उदास है। है सबकुछ, नय भी हैं और उनके विषय हैं, अनंत गुण हैं, अनंत धर्म हैं परंतु उदास है उनके प्रति। ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति प्रगट हो गई हैं। ज्ञानशक्ति अर्थात् आत्मा को अनुभवता है ज्ञानी, वह ज्ञान शक्ति। और जितने धर्म (और) गुण हैं उन्हें जानता है तटस्थपने, तटस्थता, वीतरागता, उसका नाम उदासीनता, कोई पक्षपात नहीं। आहाहा!

मार्ग जिन्हें प्राप्त नहीं हुआ ऐसे मनुष्य 'नय' का आग्रह करते हैं, वे आग्रही हैं। आहाहा! वह नयों के प्रति उदास है, अनुभवी। **और इसीलिये विषमफल की प्राप्ति होती है**, अज्ञानी जीव को। विकल्प अर्थात् दुःख होता है।

कोई नय जहाँ आहत नहीं होता, कहाँ से आहत हो? एक समय में अनंत गुण और अनंत धर्म, उन्हें विषय करनेवाला एक-एक नय, उन्हें एक समय में जान लिया। आहाहा! नयज्ञान की उत्पत्ति ही नहीं हुई, अतीन्द्रियज्ञान की उत्पत्ति हुई, उसमें नयों के स्वरूप को और उसके धर्मों को जान लिया उसने अंदर जाकर। आहाहा! एक गुण के प्रति (भी) उपयोग जाता नहीं है उसीप्रकार एक धर्म के प्रति (भी) उपयोग जाता नहीं है, धर्मी के प्रति उपयोग लगा हुआ है, उसमें धर्म जानने में आ जाते हैं। आहाहा! एक-एक धर्म के प्रति उपयोग नहीं जाता, एक-एक गुण भेद के प्रति उपयोग नहीं जाता। आहाहा! सामान्य के ऊपर जहाँ उपयोग लगा, वहाँ सामान्य-विशेष समस्त पूरा ज्ञेय, अनंत गुणात्मक और अनंत धर्मात्मक पूरा ज्ञेय, ध्येय पूर्वक ज्ञेय हो जाता है, जानने में आ जाता है। आहाहा! ध्येय का ध्यान और ज्ञेय का ज्ञान, समय एक। ज्ञेय अर्थात् अंदर का यह आत्मा ज्ञेय, ये छह द्रव्य ज्ञेय नहीं हैं, छह द्रव्य ज्ञेय नहीं हैं। छह द्रव्य ध्येय भी नहीं हैं और छह द्रव्य ज्ञेय भी नहीं हैं। आहाहा!

यह तो निर्विकल्प ध्यान में जाता है आत्मा, तब सामान्य आत्मा ध्येय होता है। सामान्य-विशेष पूरा आत्मा अनंत गुण का पिंड और अनंत धर्मों का पिंड (जानने में आ जाता है)। धर्म भी जिस प्रकार, जिस समय, जिस पर्याय के, जहाँ जैसे हैं वैसे जान लेता है। अधूरी पर्याय का धर्म है तो अधूरी पर्यायपने जानता है वह, परंतु

उसके प्रति लक्ष नहीं है। यह बात कोई अपूर्व है, अपूर्व है। समझ गये? आहाहा! निर्विकल्प ध्यान की बात, सविकल्प में आकर ये धर्मात्मा कहते हैं। एकावतरी पुरुष हो गये। १९४७ के वर्ष का है यह। उस वर्ष में उन्हें अनुभव हुआ। अनुभव पश्चात् की यह बात है, कि नयों का ज्ञाता, दो नयों का ज्ञाता है। (यह) आ गया है अपनी (चर्चा में) कल दो नयों में, फिर अनंत नय आ गये। आहाहा!

कोई नय जहाँ आहत नहीं होता अर्थात् खंडन-मंडन नहीं है। नयों का ज्ञाता हो गया। **ऐसे ज्ञानी के वचन को हम नमस्कार करते हैं।** आहाहा! नयों का ज्ञाता हुआ है, नय का पक्षपात नहीं है। पक्षपात नहीं है, नय का ज्ञाता है। आहाहा! नय का ज्ञाता है परंतु नय सन्मुख होकर नहीं, यह खूबी है। एक-एक नय तो खंडज्ञान है, उसके सन्मुख नहीं है। **जिसने ज्ञानी के मार्ग की इच्छा की हो**, **ऐसे प्राणी को** अर्थात् जिसे ज्ञानी होना हो **ऐसे प्राणी को नयादिक में उदासीन रहने का अभ्यास करना**। नय का पक्षपात छोड़ देना। नय हैं, एक-एक नय एक-एक धर्म को विषय करता है। ठीक है, बस! आहाहा! परंतु एक-एक गुण और एक-एक धर्म के प्रति मुड़कर उसे मैं जानूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा!

ऐसे प्राणी को नयादिक में उदासीन (अर्थात्) नय, निक्षेप और प्रमाण, उसमें उदासीन होना चाहिये, रहना चाहिये। उसे साधन नहीं मानना। **रहने का अभ्यास करना**; **किसी नय में आग्रह करना नहीं और किसी प्राणी को उसके द्वारा आहत करना नहीं**। उस नय से जो स्वरूप कहा हो वह स्वरूप समझकर उसके प्रति उदास होकर और उस धर्म का लक्ष छोड़कर धर्मी को जानो, बस! धर्म का लक्ष छोड़कर (धर्मी को जानो)। आहाहा! अर्थात् धर्म रखा, धर्म का लक्ष छुड़ाया और धर्मी का लक्ष कराया, और धर्मी का लक्ष होने पर धर्मों का ज्ञान हो गया। धर्मों के सन्मुख हुये बिना, धर्मों के सन्मुख हुये बिना धर्मों का ज्ञान धर्मी के आश्रय से होता है। आहाहा!

जैसे, आता है दृष्टांत, ठंडाई होती है न, ठंडाई कहते हैं न? ठंडाई में तो बहुत सी वस्तुएँ होती हैं, इलायची, केसर, बादाम आदि। तो वह पीयें तो १०० चीज डाली हों, तो १०० (चीज) का उसमें ज्ञान हो जाता है। स्वाद सभी का आता है, परंतु वह यदि स्वाद के समय विचार करने जाये, कि (यह) इलायची का स्वाद और (यह) केसर का स्वाद, तो उसमें अनुभव नहीं आयेगा। परंतु अनुभव में सब आ जाता है।

आहाहा! १०० हैं, उनके प्रति, एक-एक धर्म के प्रति ज्ञान नहीं मुड़ता।

मुमुक्षु: नहीं-नहीं, उसका लक्ष नहीं है।

पू. लालचंदभाई: लक्ष नहीं है तो स्वाद लेता होगा? (नहीं, अभेद का) स्वाद लेता है वह तो बस! अतीन्द्रियज्ञान और आनंद के स्वाद में पड़ा है, सब कुछ जानने में आ जाता है। सब कुछ जानने में आ जाता है, जानता नहीं है परंतु जानने में आ जाता है।

ऐसे प्राणी को नयादिक में उदासीन रहने का अभ्यास करना; **किसी नय में आग्रह करना नहीं और किसी प्राणी को उसके द्वारा आहत करना नहीं**, **और यह आग्रह जिसे मिटा है**, आहाहा! आग्रह मिटा (अर्थात्) नय का पक्षपात (मिटा)। आग्रह अर्थात् पक्षपात। **मिटा है**, **वह किसी प्रकार भी प्राणी को आहत करने की इच्छा करता नहीं।** चलो आगे।

मुमुक्षु: **आगम का मर्म ज्ञानी के हृदय में होता है। श्री पंचाध्यायीकार ने भी कहा है कि**, **निश्चयनयावलंबी भी मिथ्यादृष्टि है**, **इस बात का रहस्य महनीय गुरु ही समझा सकते हैं**, **इस बात का धन्य पल में हुई पूज्य भाईश्री के श्रीमुख से हुई चर्चा द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव होता है। जो अति निकट भव्य जीव इन परम वीतरागतामयी उत्तम वचनों को शिरोधार्य करेगा और हृदय में धारण करेगा वह अवश्यमेव पक्षातिक्रांत होकर साक्षात् ज्ञाता होकर परमानंद का अनुभव करेगा और अल्पकाल में पूर्णानंदमयी मुक्ति का महापात्र होगा। भरतकुमार खीमचंद सेठ**, **राजकोट।**

पू. लालचंदभाई: अब आगे।

मुमुक्षु: '**द्रव्यस्वभाव**'।

पू. लालचंदभाई: यहाँ तक तो प्रस्तावना हो गई। क्या आनेवाला है इसमें, उसकी भूमिका- क्षेत्र-विशुद्धि। अर्थात् वह यदि ख्याल में आयेगा तो आगे (का) ख्याल में आयेगा। नहीं तो वह ख्याल में (नहीं आयेगा), उसे प्रवेशद्वार कहा न? इसमें प्रवेश करने का एक द्वार कहा, क्षेत्र-विशुद्धि। आहाहा! उसमें श्रीमद् का वाक्य बहुत सुंदर! आहाहा! ज्ञानी नयों के प्रति उदास है, नय का आग्रह नहीं है अर्थात् इन्द्रियज्ञान का आग्रह नहीं है, मानसिक ज्ञान का आग्रह नहीं है, खंडज्ञान का आग्रह नहीं है। नय है वह खंडज्ञान है। नयज्ञान है न, वह खंडज्ञान है। (वह) एक-एक धर्म

को विषय करता है। एक नय एक धर्म को विषय करता है, एक नय सभी धर्मों को विषय नहीं कर सकता, आवृत नहीं कर सकता सभी धर्मों को। आहाहा! और अतीन्द्रियज्ञान? एक समय में आवृत कर लेता है, कुछ जानना बाकी नहीं रहता। खंडज्ञान और अखंडज्ञान में बड़ा अंतर है। नयज्ञान में और अतीन्द्रियज्ञान में बड़ा अंतर है। नय का विषय एक-एक है, ज्ञान का विषय अनंत है। एक समय में कवलित कर जाता है ज्ञान।

ध्येय पूर्वक ज्ञेय होता है न, कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। और स्वयं की जिस प्रकार से योग्यता वर्तमान में धर्मों की चल रही है, उन धर्मों को भी जान लेता है। अबद्ध को भी जानता है और बद्ध को भी जानता है, अकर्ता को जानता है और कर्ता को (भी) जानता है, सबको जानता है। धर्म हैं न? कर्ता-भोक्ता धर्म हैं। यह ऐसे योग्यता अनुसार जैसी जिसकी योग्यता हो धर्मों की...

मुमुक्षु: वे सभी सम्मत होती हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ, सम्मत।

मुमुक्षु: जिस प्रकार से हो उस प्रकार से।

पू. लालचंदभाई: उस प्रकार से ज्ञान में स्वीकार है उसे। आहाहा! अपूर्णता है, वह अपूर्णता धर्म को जानता है और द्रव्य का पूर्ण धर्म है, उसे भी जानता है, एक समय में। द्रव्यदृष्टि से पूर्ण हूँ और पर्याय धर्म से देखने पर मैं अपूर्ण हूँ। आहाहा! द्रव्य से देखने पर आनंद का कंद हूँ और पर्याय धर्म से देखने पर थोड़ा आनंद है और थोड़ा दुःख भी है। उसकी तरफ लक्ष नहीं है, जानने में आ जाता है। कोई अचिंत्य, निर्विकल्पध्यान के काल में इसप्रकार ज्ञेय होता है वह अचिंत्य बात है। अर्थात् ज्ञान सच्चा रहता है, पर्याय में सिद्ध हो गया ऐसा नहीं जानता साधक। आहाहा! पर्याय में अपूर्णता है, तो अपूर्ण है वह धर्म है, वह पर्याय का धर्म है, वह पर्याय ने धर्म धारण करके रखा है, अपूर्णता। थोड़ी वीतरागता और थोड़ा राग, वे पर्याय के धर्म हैं। पर्याय के जैसे धर्म हैं उन्हें ज्ञान जानता है।

धर्म अलग चीज और गुण अलग चीज। गुण में राग नहीं होता। पर्याय में वीतरागभाव और पर्याय में राग होता है। समयवर्ती पर्याय है, गुण त्रिकालवर्ती है। सबकुछ आ गया, अनंत गुण और अनंत पर्याय, आ गया सब। सबकुछ ले लिया। आहाहा! नयों के प्रति उदास है। किसी नय का एकांत खंडन या किसी (नय का)

एकांत मंडन, ज्ञानी करता नहीं है। आहाहा! क्योंकि नय में कथंचित् है। कथंचित् का ज्ञाता है। आहाहा! नयों का ज्ञाता है। दो नयों का ज्ञाता है परंतु किसी (नय का) पक्षपात ग्रहण नहीं करता। आग्रह नहीं है उसे, मध्यस्थ है, उदासीन है अर्थात् मध्यस्थ है। राग रहित का ज्ञान है वह। अतीन्द्रियज्ञान है न? वह राग रहित का ज्ञान है।

यह तो स्वयं जरा स्थिर मन से विचार करे न तो बैठे ऐसा है। वरना है अच्छा, श्रीमद्जी का बहुत अच्छा। १९४७ का है, बोलो! जिस वर्ष में सम्यग्दर्शन हुआ उस वर्ष में उन्होंने लिखा, नयातिक्रांत होकर लिखा।

मुमुक्षु: वह ही लिख सकता है न?

पू. लालचंदभाई: ढूंढ-ढूंढकर सब इसमें (रखा है)। आहाहा!

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट १-४
राजकोट और जामनगर
तारीख: ऑक्टोबर १९९० और १७/१८-१-१९९१
प्रवचन LA ४०८

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव।

पू. लालचंदभाई: इस पुस्तक का नाम **द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव**। दो विभाग हैं इसमें। उसमें से पहले विभाग का वांचन अभी चल रहा है। पहला विभाग, दूसरा विभाग बाद में आयेगा।

मुमुक्षु: **एक द्रव्य स्वभाव और एक पर्याय स्वभाव। दोनों स्वभाव से ही जैसे हैं वैसे हैं। द्रव्य स्वभाव खुद के अपने स्वभाव से ही अनादि-अनंत जैसा है वैसा है। और ज्ञान की पर्याय का स्वभाव अनादि-अनंत जैसा है वैसा है।**

पू. लालचंदभाई: एक द्रव्य स्वभाव लिया क्योंकि आत्मा ज्ञानमय है। अर्थात् ज्ञानमय आत्मा वह द्रव्य का अपना स्वभाव है और उसकी पर्याय में ज्ञान होता है। उस ज्ञान की पर्याय का भी अनादि-अनंत जैसा है वैसा अपना स्वभाव है, ऐसे।

मुमुक्षु: **शास्त्र में अनेक प्रकार के कथन आयेंगे। जैसे कि आत्मा अशुद्ध निश्चयनय से राग का कर्ता है और निश्चयनय से वीतरागभाव का कर्ता है। भाई! ये सभी व्यवहारनय के कथन हैं, उनको उल्लंघ जा - आत्मा राग को नहीं करता और वीतरागभाव को भी नहीं करता। आत्मा तो स्वभाव से ही अनादि-अनंत अकारक-अवेदक है।**

पू. लालचंदभाई: जिसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर है उसे यह वाक्य ख्याल में नहीं आयेगा। यह त्रिकाली द्रव्य स्वभाव की बात चलती है। Agenda (ऐजंडा, कार्यसूची) के ऊपर अभी क्या विषय है वह उसे लक्ष में लेना चाहिए।

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव।

पू. लालचंदभाई: द्रव्य स्वभाव अनादि-अनंत टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक जो भाव

है, एक ज्ञायक भाव अनादि-अनंत, नित्य, निरावरण-अखंड-एक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय (समयसार गाथा ३२०, जेसेनाचार्य की टीका), भगवान जो आत्मा - द्रव्य स्वभाव। सभी आत्माओं का ऐसा स्वभाव है, इसप्रकार! वह ख्याल में रखे तो द्रव्य स्वभाव ख्याल में आये। आहाहा! द्रव्य का स्वभाव, स्वभाव से ही अकारक-अवेदक है। राग को भी नहीं करता और वीतरागभाव को भी नहीं करता। दुःख को भी नहीं भोगता और आनंद को भी नहीं भोगता। कर्ता और भोक्तापना पर्याय का धर्म है। अकारक और अवेदक द्रव्य का धर्म है, द्रव्य का स्वभाव है। दो विभाग अलग-अलग हैं। अभी बात चलती है द्रव्य स्वभाव की।

पर्याय दृष्टि को गौण करना। पर्याय है, उसे सिद्ध करनेवाला जो ज्ञान है, उसे बंद कर देना अभी। और पर्याय से भिन्न जो भगवान आत्मा अनादि-अनंत कैसा है, यह उसकी बात चलती है, द्रव्य का स्वभाव। आत्मा राग को करता है और वीतरागभाव को करता है वह द्रव्य का विभाव हो गया। क्या कहा? 'करता है' ऐसा आया न? अकर्ता को कर्ता कहना, वह विभाव हो गया न?

मुमुक्षु: सही है।

पू. लालचंदभाई: नीलम, हुआ कि नहीं?

मुमुक्षु: सही है, विभाव हुआ न। अकर्ता को कर्ता कहना, विभाव हुआ।

मुमुक्षु: सही है हों। अकारक, अवेदक।

पू. लालचंदभाई: उसे कर्ता-भोक्ता कहना वह विभाव और कर्ता-भोक्ता मानना वह मिथ्यात्व। है अकर्ता और अभोक्ता, और मानता है कि मैं इस परिणाम को करता हूं और भोगता हूं, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! यह तो त्रिकाली स्वभाव, जीवतत्त्व का क्या स्वरूप है मूल? वह बताते हैं। इसके ऊपर नजर जाये तो काम हो! अकर्ता को कर्ता मानता है ...

चर्चा-२

निगोद में दुःख को नहीं भोगता आत्मा, अभी भी हों! अभी की बात है। और भगवान महावीर सुख को नहीं भोगते हैं! सुख को नहीं भोगते तो क्या दुःख को भोगते हैं? अब रहने दे भाई! तू टेढ़ापन की बात मत कर, बापू! यह तो कोई ऊँचे प्रकार की बात है। शांति से। आहाहा! यह किस अपेक्षा से कथन चलता है? यह स्वभाव की अपेक्षा से कथन चलता है। नय की विवक्षा अभी गौण है, गौण है और

अनुभव के काल में उसका अभाव है। क्या कहा? समझने के काल में, द्रव्य स्वभाव जब समझाने में आता है तब नय के कथन गौण हो जाते हैं। परंतु साक्षात् अनुभव करता है तब कोई नय नहीं रहता। आयेगी यह बात। नयों की लक्ष्मी उदय को प्राप्त नहीं होती। सब आयेगा, इसमें है।

मुमुक्षु: पच्चीस वर्ष तक अकर्ता समझाया है आपने।

पू. लालचंदभाई: हाँ, मैंने समझाया।

मुमुक्षु: आपने समझाया।

पू. लालचंदभाई: सही है।

मुमुक्षु: उसके पश्चात् बहुत गहरे मंथन में से यह बात आयी है।

पू. लालचंदभाई: आती है, बिल्कुल सही है।

मुमुक्षु: उसके बाद का स्टेप, अब आया है।

पू. लालचंदभाई: आ तो गया था पहले ही, परंतु भाई ऐसा है न काल पकता है तब बाहर आता है। और यह भी आगे बढ़ता नहीं था। बहन को मैंने कहा, मैंने कहा कि भाई! यह बात सूक्ष्म है और यह बात इतनी प्रचलित बाहर आयी नहीं है और हमें यह बात बाहर रखनी। आहाहा! बहन ने कहा, यह बात तो रखने जैसी है। और यह शास्त्रों में है। यह बात बीस कलश में ली है। शास्त्र का आधार भी अभी आयेगा। आहाहा!

'नयातिक्रांत बताया वह समय का सार है', नय से आत्मा का अनुभव नहीं होता। अनुभव के काल में नय नहीं रहते। आहाहा! 'नयों की लक्ष्मी उदय को प्राप्त नहीं होती'। निश्चयनय और व्यवहारनय, दो प्रकार के जो विकल्प थे नय के, वे उदय को प्राप्त (नहीं) होते (समयसार कलश ९)। प्रमाण अस्त हो जाता है, प्रमाण का विकल्प और निक्षेप कहाँ चले जाते हैं, हम नहीं जानते। आहाहा! यह तो किनारे तक आया है और रह न जाये, और अनुभव हो जाये (ऐसी बात है)। आहाहा! दूध तो कढ़ा हुआ है, अब सिर्फ जामन डाले तो दही जम जाये और फिर उसमें मक्खन हो, छाछ निकल जाये। मक्खन में से कचरा-मैल निकल जाये, और घी बन जाये। आहाहा! छाछ निकल जाती है, फिर माखन में से मैल निकल जाता है, गाध (मैल) निकल जाती है। और अकेला शुद्ध घी (रह जाता है)। आहाहा! सौ टंच का शुद्ध, कोई वेजीटेबल (घी) इसमें मिक्स नहीं है। ऐसी बात है।

न्याय:- यदि निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है ऐसा तुम लक्ष में लोगे, तो आत्मा व्यवहारनय से कर्ता है, वह शल्य आये बिना रहेगा ही नहीं। इसलिये नय से विचार ही मत करो, अब, अब वस्तु नयातीत है। वस्तु जो है, द्रव्य का स्वभाव वह नयातीत है। आहाहा! उसमें नय नहीं हैं और उसे प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान, उसमें भी नय नहीं हैं। नय तो मानसिक ज्ञान का धर्म है। वह इन्द्रियज्ञान का धर्म है, नय। विकल्पवाले नय हैं ये।

द्रव्य स्वभाव नय से ख्याल में नहीं आता। अनुभव में नहीं आता। क्योंकि किसी नय से अकर्ता है-ऐसा नहीं है, स्वभाव से ही अकर्ता है। अनादि-अनंत। आहाहा! किसी को नय का ज्ञान न हो तो भी अनुभव हो जाता है। निश्चयनय से अकर्ता है, यह सुना भी ना हो और अनुभव हो जाता है। और 'निश्चयनय से अकर्ता है', वह सुनने के बाद अनुभव अटकता है। नहीं होता ऐसा नहीं कहा, अटकता है। वह नय छूट जाये तो अनुभव हो जाता है। एक-एक वाक्य रहस्यमय है।

यह तो जो बिल्कुल अनजान शिष्य है, जिसे आत्मा त्रिकाल अकर्ता होने पर भी कर्ताबुद्धि हो गई है, उसे व्यवहारनय और निश्चयनय के द्वारा निश्चयनय से समझाते हैं। परंतु अब इस समय ऐसा काल आया है कि आत्मा निश्चयनय से अकर्ता है - ऐसा छोड़ दो। नय के विकल्प अब छोड़ो। आहाहा! निश्चयनय से अकर्ता- निश्चयनय से अकर्ता है, परंतु उससे क्या? निश्चयनय से अकर्ता हूँ- वह तेरा विकल्प सच्चा है, विकल्प झूठा नहीं है, परंतु उससे क्या? आहाहा! उसमें आत्मा का आनंद नहीं आता, इसीलिए नय को छोड़ दे, स्वभाव के समीप जा।

क्योंकि - यदि निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है ऐसा तुम लोगे तो दूसरा प्रतिपक्ष नय तुम्हारे ज्ञान में खड़ा होगा। क्योंकि नय सापेक्ष है। **निरपेक्षा नया मिथ्या** (श्री देवगाम-स्तोत्र, गाथा १०८) और सापेक्ष नय सम्यक् कहलाता है, परस्पर सापेक्ष, निश्चयनय से इसप्रकार और व्यवहारनय से इसप्रकार। आहाहा! कहते हैं **प्रतिपक्ष नय तुम्हारे ज्ञान में खड़ा होगा और मिथ्यात्व रहेगा। परंतु स्वभाव से देखो तो किसी नय की अपेक्षा ही नहीं है।** आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म तो है। आशीष कहता है कि इसमें हमें कुछ दिमाग में उतरता नहीं है। यह नय का स्वरूप ही ख्याल में नहीं आता कि निश्चयनय क्या और व्यवहारनय क्या? फिर कल लिया था थोड़ा उसके लिए। आहाहा!

जैसे कि, अब दृष्टांत देने में आता है। दृष्टांत से ज्यादा समझ में आता है। **जैसे कि अग्नि उष्ण है. किस नय से?** आहाहा! कोई कहे अग्नि उष्ण है। ज्ञानी ने कहा अग्नि उष्ण है, तो शिष्य कहता है, साहेब किस नय से उष्ण है? आहाहा! श्रीगुरु ने कहा अग्नि उष्ण है। कि साहेब, किस नय से उष्ण है?

ऐसी एक घटना बन गई। ऐसी घटना हुई कि थोड़े शिष्य अभ्यास करने के लिये आते थे। एक बार गुरु ने कहा कि पहले 'अग्नि लकड़ी को जलाती है उसे अग्नि कहा जाता है'। दूसरे दिन दूसरा पाठ दिया, 'अग्नि उष्ण है'। वह, पहले दिन का वह पाठ तो निकल गया। 'अग्नि उष्ण है।' फिर तीसरे दिन ऐसा कहा- 'अग्नि तो अग्नि है।' इसप्रकार तीन पाठ दिये। चौथे दिन उनका परीक्षा करने का मन हुआ। एक शिष्य को भेजा। बराबर के कमरे में, अंगीठी एकदम लाल, कोयले की, लकड़ी की, एकदम अंगारे लाल एकदम, हों! धुंआ नहीं था उसमें, लकड़ी भी नहीं थी। उसे भेजा अंदर, देख कि अंदर अग्नि है या नहीं? लकड़ी को जलाती है वह अग्नि, लकड़ी को जलाती है वह अग्नि, लकड़ी को जलाती है वह अग्नि, लकड़ी को जलाती है वह अग्नि, समझे? वह ऐसा याद करते-करते गया।

सिद्धांत में, ज्ञेय को जाने वह ज्ञान, ज्ञेय को जाने वह ज्ञान, ज्ञेय को जाने वह ज्ञान, सिद्धांत में ऐसा आयेगा। ऐसा शल्य (घुस) गया था, शल्य घुस गया था, आया बाहर, गुरुजी वहाँ अग्नि नहीं है। क्यों अग्नि नहीं है? कारण पूछा। कि लकड़ी को नहीं जला रही थी, आपने ही समझाया था। ठीक है बैठ जाओ, सिट डाउन।

दूसरे शिष्य को खड़ा किया, कि जा, देख जाकर बराबर के कमरे में कि अग्नि है या नहीं? उष्ण वह अग्नि, उष्ण वह अग्नि, उष्ण वह अग्नि, उष्ण वह अग्नि, उष्ण वह अग्नि। वह पराश्रित व्यवहार, यह भेदरूप व्यवहार। अभ्यासी हों तो समझ जाते हैं। उष्ण वह अग्नि। कि साहेब, वहाँ अग्नि नहीं है। क्यों नहीं है? उष्ण वह अग्नि, उष्ण वह अग्नि, उष्ण वह अग्नि। आहाहा! देखो, धारणा में रटा हुआ। रटनपट्टी थी।

तीसरा गया, भेजा। तू देख उसमें है कुछ? उसने अग्नि के अंगारे के ऊपर जरा सी इसप्रकार से उँगली रखी। पूरा हाथ नहीं रखा, हों! पूरा हाथ रखने की जरूरत भी नहीं है। ऐसे उँगली का पोरवा रखा और आया। गुरुजी! अग्नि है। कि किसप्रकार तुम जान सके? कि अनुभव से जाना। 'लकड़ी को जलाये वह अग्नि', लकड़ी (शल्य) - भूत निकल गया। 'उष्ण वह अग्नि' (वह) भेद भी गया। धीरज!

पराश्रित व्यवहार गया, भेदाश्रित व्यवहार गया और अभेद वस्तु अनुभव में आई। आहाहा! साहेब! किसप्रकार? क्या है? अग्नि तो अग्नि ही है, अग्नि तो अग्नि ही है। 'ही' इसप्रकार! कथंचित् लकड़ी को जलाती है वह अग्नि और कथंचित् उष्ण वह अग्नि ये दोनों व्यवहारनय के शल्य (निकल गए), व्यवहार के शल्य निकल गए। उँगली रख दी।

इसप्रकार! यहाँ कहते हैं। उसीप्रकार कौन सा शल्य घुस गया है अब? कि पर को जाने उसे ज्ञायक कहने में (आता है), लोकालोक को जाने उसे ज्ञान कहने में आता है, देव-गुरु-शास्त्र को जाने उसे ज्ञान कहने में आता है, छह द्रव्य को जाने उसे ज्ञान कहने में आता है, असद्भूत व्यवहार के शल्य ऐसे घुस गए, जल्दी से निकलते नहीं। फिर ज्ञान वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा, ऐसे भेद का शल्य घुस गया। आहाहा! फिर ज्ञायक तो ज्ञायक है। दोनों शल्य निकल जाएं और अनुभव हो जाए, ऐसा है यह। ये व्यवहार के शल्य अनादि के हैं, आज के नहीं हैं। आहाहा! शल्य बाधा करते हैं उसे बहुत, इसलिए यह वस्तु जल्दी से समझ में भी नहीं आती।

जैसे कि, अग्नि उष्ण ही है। किस नय से? अरे! स्वभाव से ही उष्ण है। पानी शीतल है। किस नय से? अरे! स्वभाव से ही शीतल है। आहाहा! **यदि निश्चयनय से शीतल है** पानी **ऐसा तुम लोगे तो व्यवहारनय से उष्ण है ऐसा आ जायेगा।** पानी को पानी के स्वभाव से देखो न! नय का क्या काम है? आहाहा! निश्चयनय सापेक्ष है न? अतः प्रतिपक्ष- अपेक्षा आती है। इसप्रकार पानी को निश्चयनय से शीतल देखो तो प्रतिपक्ष व्यवहारनय तो खड़ा होता ही है। क्योंकि नय सापेक्ष होता है और स्वभाव निरपेक्ष होता है। क्या कहा? सेठीजी? नय है वह सापेक्ष है, पानी निश्चयनय से शीतल है तो व्यवहारनय से उष्ण आ जायेगा। फिर सापेक्ष नय को छोड़कर, पानी के मूल स्वभाव से देखो, तो वह तो निरपेक्ष शीतल, शीतल और शीतल। उसे नय की अपेक्षा लागू नहीं पड़ती, इसप्रकार। **स्वभाव से शीतल है। यदि निश्चयनय से शीतल है ऐसा तुम लोगे तो व्यवहारनय से उष्ण आ जायेगा।**

निश्चयनय तो मात्र स्वभाव का इशारा करता है। निश्चयनय तो मात्र स्वभाव का इशारा करता है। व्यवहारनय में तो स्वभाव का इशारा करने की शक्ति भी नहीं है। आहाहा! व्यवहारनय तो अभूतार्थ और असत्यार्थ है, उल्टा कथन करता

है। **निश्चयनय तो मात्र स्वभाव का इशारा करता है। निश्चयनय को चिपक जाओगे तो स्वभाव दृष्टि में नहीं आयेगा। निश्चयनय से देखो तो ऐसा तेरा स्वभाव है, इसप्रकार नय मात्र स्वभाव का इशारा करता है। परंतु निश्चयनय की पहुँच स्वभाव तक नहीं है क्योंकि वस्तु नयातीत है।** नय से अनुभव नहीं होता। **अकारक, अवेदक वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव नय से सिद्ध नहीं होता, स्वभाव स्वभाव से ही सिद्ध होता है।**

अब यह एक पैराग्राफ है, टाइम हो गया है परंतु ले लेता हूँ यह। **आत्मा पर्याय मात्र से भिन्न है, इसलिए उसे अनादि-अनंत कर्तापना लागू ही नहीं पड़ता,** द्रव्य को। द्रव्य पर्याय को नहीं करता क्योंकि पर्याय भिन्न है। भिन्न, भिन्न को कैसे करे? एक में दूसरे की नास्ति है, तो पर्याय को कैसे करे? कि व्यवहारनय से करता है, ऐसा। नीरज! व्यवहारनय से तो रखने दो। आहाहा! **इसीलिए उसे अनादि-अनंत कर्तापना लागू नहीं पड़ता। आत्मा बंध का भी कर्ता नहीं है, और मोक्ष का भी कर्ता नहीं है। किस नय से?** बंध का कर्ता नहीं और मोक्ष का भी कर्ता नहीं, तो किस नय से कर्ता नहीं है? **अरे! स्वभाव से ही वह तो अकर्ता है। कोई नय लागू नहीं पड़ती। यह द्रव्य स्वभाव की बात हुई।** अब यह पर्याय स्वभाव की बात कल आयेगी। समय हो गया। दो बज गये हैं।

मुमुक्षु: आज थोड़ी देर से शुरू हुआ था।

पू. लालचंदभाई: देर से?

मुमुक्षु: आज देर से शुरू हुआ था, ऐसा कहते हैं।

पू. लालचंदभाई: तो पाँच मिनिट ज्यादा ले लेते हैं। पाँच मिनिट, ले लेते हैं चलो।

मुमुक्षु: पहले पैराग्राफ में जरा।

मुमुक्षु: फिर से लेते हैं।

पू. लालचंदभाई: फिर से, अंतिम पैराग्राफ। आत्मा, यह त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति, चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है न? उसकी दृष्टि कैसे हो? और अनुभव कैसे हो? और इस संसार का अभाव, पर्याय में से कैसे निकल जाये? और पर्याय में उसका अनुभव, आनंद कैसे आये? उसकी विवक्षा की बात चलती है।

आत्मा पर्याय मात्र से भिन्न है, आहाहा! पर्याय मात्र से भिन्न है तो सर्वथा

भिन्न है या कथंचित् भिन्न-अभिन्न है, पर्याय? कि सर्वथा भिन्न है। **इसलिये उसे अनादि-अनंत कर्तापना लागू नहीं पड़ता।** पर्याय यदि भिन्न है... यह पुस्तक भिन्न है आत्मा से, तो आत्मा इसका 'कर्ता है' वह लागू नहीं पड़ता। इसप्रकार पर्याय द्रव्य को अड़ती नहीं, द्रव्य पर्याय को नहीं अड़ता। सत्ता एक है और सत् दो हैं। सत्ता एक है और सत्, उसमें दो हैं। इस प्रकार, **उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्** (मोक्षशास्त्र, अध्याय ५, सूत्र ३०), सत्ता एक, परंतु सत् उसमें तीन हैं - उत्पाद सत्, व्यय सत् और ध्रुव सत् है। उस सामान्य-विशेष में दो सत् हैं, ये तो तीन। आहाहा!

आत्मा पर्याय मात्र से भिन्न है। पर्याय में पर्याय मात्र अर्थात् कुछ बाकी नहीं रहा, बंध-मोक्ष की पर्याय आ गई, नौतत्त्व उसमें आ गये। नौतत्त्व से अत्यंत भिन्न है, ऐसा शास्त्र में वर्णन है। **अनादि-अनंत कर्तापना लागू ही नहीं पड़ता। आत्मा बंध का कर्ता नहीं है**। आत्मा पहले बंधन करे और फिर बंध को छोड़े और फिर मोक्ष को करे? ऐसे बाद में या पहले कुछ है नहीं। वह तो प्रथम से ही अकारक है। आहाहा! पहले बंध को करे - मिथ्यात्व को, और फिर उस मिथ्यात्व को छोड़े, छोड़ने के बाद क्या करे? सम्यग्दर्शन को करे, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

यह तो द्रव्य स्वभाव की, अकारक, अवेदक, निष्क्रिय परमात्मा की, दृष्टि के विषय की बात चलती है। दृष्टि के विषय में कर्तापना नहीं है। **आत्मा बंध का कर्ता नहीं है।** बंध अर्थात् मिथ्यात्व (अर्थात्) भावबंध का कर्ता नहीं है। तो द्रव्यकर्म का बंध तो, बंध कहाँ से करे उसे, द्रव्यकर्म को तो? भावबंध का भी कर्ता नहीं है। **और मोक्ष का,** केवलज्ञान का **भी कर्ता नहीं है।** आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय होती है वह बात सच है, परंतु उसके षट्कारक से होती है, आत्मा करता है इसलिये होती है ऐसा है नहीं। आहाहा!

कौनसे नय से? अरे! स्वभाव से ही वह तो अकर्ता है। अरे! अकर्ता ऐसे ज्ञायक को दृष्टि में ले, तेरा काम हो जायेगा। स्वभाव ही अकारक, अवेदक है। करे और भोगे ऐसा त्रिकाली स्वभाव में (नहीं है), क्योंकि निष्क्रिय है परमात्मा, क्रिया के कारक उसमें नहीं हैं। आहाहा!

चर्चा ३

यह **द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** की पुस्तिका है। अनादिकाल से आत्मा

अनंतबार जैन हुआ, श्रावक नाम से, नाम से जैन। और द्रव्यलिंगी मुनि भी हुआ अनंतबार, नवमें ग्रैवेयक में भी गया। तब उसने नय के द्वारा 'पर्याय का स्वभाव क्या? द्रव्य का स्वभाव क्या?' अर्थात् नय के द्वारा विचार में लिया। नय हैं, वे मन के धर्म हैं। नय हैं, वे ज्ञान के धर्म नहीं हैं। अतीन्द्रियज्ञान जो है न? उसमें नय के विकल्प नहीं होते। परंतु नय के विकल्प उठते हैं, वे मन के संग से उठते हैं। अतः नयज्ञान है वह स्वयं खंडज्ञान है, विकल्परूप है। और नय हैं वे बंध के कारण हैं।

व्यवहारनय का विकल्प भी बंध का कारण। निश्चयनय का विकल्प है वह भी (बंध का कारण)। विकल्प मात्र बंध का कारण है। फिर विकल्प में कोई दो भेद मत करना, कि यह अशुभ का विकल्प और शुभ विकल्प। विकल्प मात्र बंध का कारण है। इसप्रकार, जेसे शुभाशुभ भाव बंध के कारण हैं, उसीप्रकार नयों के विकल्प भी (बंध के कारण हैं)। व्यवहारनय से ऐसा है और निश्चयनय से जीव ऐसा है ऐसे जो विकल्प उठते हैं वे भी बंध के कारण हैं। बंध का कारण होने पर भी आत्मा के द्रव्य और पर्याय का निर्णय करने के लिये, प्राथमिक भूमिका में, उसे व्यवहारनय से साधन भी कहने में आता है कि जिससे उल्टा-सीधा निर्णय ना करे। जैसा वस्तु का स्वभाव है, द्रव्य का और पर्याय का, उस प्रकार निर्णय करने का उसका काल हो तब उसे विकल्प उसी प्रकार के उठते हैं, नयों के विकल्प।

अर्थात् नयों के विकल्प द्वारा वह गृहीत मिथ्यात्व का त्याग करता है, क्योंकि अन्यमत में कोई नय विवक्षा नहीं है, जैनधर्म में नय विवक्षा है। इसलिये गृहीत मिथ्यात्व गया और अगृहीत मिथ्यात्व रहा। और अगृहीत में भी, अब अगृहीत था परंतु, अगृहीत में भी वह नय के द्वारा स्वभाव का विचार करता है।

व्यवहारनय को गौण करके निश्चयनय के विकल्प द्वारा वह जब स्वभाव का निर्णय करता है तब अगृहीत मिथ्यात्व भी गलने लगता है। टलता नहीं है, परंतु गलता है। जैसे कि मैं कर्म के संबंधवाला और बंधवाला हूँ, कर्म को करता और भोगता हूँ, ऐसा जो व्यवहारनय का पक्ष उसमें तो मिथ्यात्व दृढ़ होता था। परंतु अब वह व्यवहारनय को दूर करके निश्चयनय के विकल्प में आता है, कि मेरा आत्मा तो त्रिकाल अबद्ध है। कर्म का संबंध मुझे हुआ नहीं और कर्म के बंध में मेरा आत्मा पूर्व में निमित्त कारण भी हुआ नहीं, कर्म के बंध में निमित्त होना, वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। इसप्रकार निश्चयनय के विकल्प द्वारा अबद्ध स्वभाव को निर्णय में लेता है।

मैं तो त्रिकाल मुक्त हूँ, इसप्रकार त्रिकाल अकारक-अवेदक हूँ। इसप्रकार स्वयं का जो आत्मा जैसा है उस आत्मा को विकल्प द्वारा, मन के संग द्वारा, राग के संबंधवाले ज्ञान द्वारा, जिस ज्ञान का लक्ष राग के ऊपर है अभी, ऐसे ज्ञान द्वारा, वह विचार करता है वस्तु का, तो उसका मिथ्यात्व तो गलता है परंतु मिथ्यात्व टलकर सम्यग्दर्शन नहीं होता। कि यहाँ तक आने के बाद उसे नयों के विकल्प कैसे छूटें और साक्षात् अनुभव कैसे हो? इस हेतु से इस पुस्तिका में सारा विस्तार आया है। उसमें द्रव्य स्वभाव की बात हो गई। अब पर्याय स्वभाव की बात आती है।

तीसरा पेज है। **ज्ञान की पर्याय का स्वभाव**।

आत्मा ज्ञाता है। किस नय से ज्ञाता है? ऐसा एक प्रश्न उठता है कि 'ज्ञाता तो है आत्मा, परंतु किस नय से ज्ञाता है?', ऐसे! **अरे! स्वभाव से ही ज्ञाता है।** ज्ञाता होता है या ज्ञाता है? ज्ञाता है। किस नय से ज्ञाता है? कि स्वभाव से ही ज्ञाता है। **व्यवहारनय से ज्ञान पर को जानता है और निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है-,** क्योंकि भगवान ने दो नय कहे हैं और कोई एक नय छोड़ा जाये, छोड़ा भी नहीं जाता। दो नय हैं, व्यवहारनय से पर को जानता है, निश्चयनय से स्व को जानता है, **ऐसा नहीं है।** व्यवहारनय से पर को जानता है ऐसा नहीं और निश्चयनय से स्व को जानता है ऐसा भी नहीं है।

मुश्किल से निश्चयनय तक आया, व्यवहार का निषेध करते-करते, कि निश्चयनय से ज्ञान मेरी आत्मा को जानता है। तो कहते हैं उसमें अनुभव नहीं होता। आहाहा! अब, तो फिर क्या है? **अनादि-अनंत**, देखो! आहाहा! सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है तब आत्मा को जानता है, उससे पहले आत्मा को नहीं जानता, ऐसा नहीं है। अनादि-अनंत शब्द प्रयोग किया है।

अनादि-अनंत ज्ञान की पर्याय आत्मा को जाननेरूप ही परिणमती है। अनादि-अनंत आत्मा जैसे द्रव्यरूप है, ऐसी उसकी एक स्वभावरूप पर्याय जिसे उपयोग लक्षण कहा जाता है, जिसे चैतन्य अनुविधायी परिणाम कहा जाता है, ऐसी ज्ञान की पर्याय, दशा, हालत, परिणाम अनादि-अनंत प्रगट होती है। और वह पर्याय प्रगट होती है वह **आत्मा को जाननेरूप ही परिणमती है।** पर को जाननेरूप परिणमती नहीं है। **वह ज्ञान आत्मा को ही प्रसिद्ध करता है।** 'ही' लगाया है। वह जो ज्ञान उत्पादरूप होता है वह उत्पादरूप पर्याय ध्रुव को ही प्रसिद्ध करती है, पर

को नहीं। और वह पर्याय, उत्पाद-व्यय को भी प्रसिद्ध नहीं करती। वह पर्याय ध्रुव को ही प्रसिद्ध करती है, ज्ञायक को ही प्रसिद्ध करती है।

जाननहार त्रिकाली भगवान आत्मा उसे ही जानती हुई उदय होती है और उसे जानते जानते अस्त होती है। जानती हुई उदय होती है और जानती ही अस्त होती है। जहाँ एक पर्याय अस्त हुई वहाँ दूसरी पर्याय का उत्पाद होता है। आहाहा! उसे और सिर्फ उसे ही जानती है -उसे और सिर्फ उसे ही जानती है। पहली पर्याय ने जिसे जाना, फिर दूसरी पर्याय, पहली पर्याय तो व्यय हो गई, फिर दूसरी पर्याय ने दूसरे को जाना, तीसरी पर्याय अपने को जाने, इसप्रकार पलटते हुये कुछ होगा न पर्याय में? पर्याय, उसका विषय बदलता होगा या नहीं? ज्ञान की पर्याय, उसका विषय बदलता नहीं है। आहाहा! यह ज्ञान की पर्याय के स्वभाव की बात चल रही है। यह सम्यग्ज्ञान-मिथ्याज्ञान की बात नहीं है। ज्ञान की पर्याय का अनादि-अनंत ऐसा स्वभाव है, कि वह ज्ञान जो उत्पन्न होता है वह अपने आत्मा को ही जानता प्रगट होता है, क्योंकि उपयोग से आत्मा अनन्य है। और उस उपयोग में उपयोग ही है और उपयोग में कोई क्रोधादि नहीं है (समयसार गाथा १८१)। आहाहा! इसीलिए क्रोध को तो प्रसिद्ध करती ही नहीं क्योंकि उपयोग में क्रोधादि नहीं है। तो छह द्रव्य (उपयोग में) नहीं हैं, तो छह द्रव्यों को कहाँ से प्रसिद्ध करे? लेकिन उस उपयोग में तादात्म्यपने, अनन्यपने आत्मा विराजमान है, उसे प्रसिद्ध करती हुई प्रगट होती है। दूसरे समय दूसरी पर्याय, तीसरे समय तीसरी पर्याय, परंतु प्रगट तो वह सामान्य को ही करती है। जिसका विशेष हो, जो सामान्य का विशेष हो, वह विशेष उसके ही सामान्य को प्रसिद्ध करता है, दूसरे को (नहीं करता)। आहाहा! सिद्धांत।

मुमुक्षु: सभी गुणों की पर्याय?

पू. लालचंदभाई: क्या?

मुमुक्षु: सभी गुणों की पर्याय?

पू. लालचंदभाई: ज्ञान की पर्याय आत्मा को प्रसिद्ध करती है, ऐसा ख्याल में आता है तो सभी पर्यायें अंतर्मुख हो जाती हैं। ज्ञान की पर्याय पर को जानती है तो सभी पर्यायें अंतर्मुख नहीं होती। ज्ञान पर्याय सरदार है, सरदार।

एक सेना का नियम है, सेना का। सेना का ऐसा नियम है कि सेना ऐसे जाती हो पूर्व दिशा में, और उसका जोजो commander (कमांडर, सेनापति) होता है,

chief (चीफ, सेनापति), पूर्व दिशा की तरफ ही उसका मुख होता है, पूर्व दिशा तरफ। फिर उसे, उत्तर दिशा की तरफ जाने का विचार हो उसकी योजना के अनुसार, तो सेना को कुछ कहता नहीं। अपना मुख मोड़ता है और जैसे ही वह (सेनापति) अपना मुख मोड़ता है, वहाँ तो सभी अपना मुख मोड़ लेते हैं। मुख मोड़ते हैं परंतु वे चलते नहीं हैं, तब तक चलते नहीं हैं। जैसे ही वह चीफ चलने लगता है, तो पूछे बिना (सभी) चलने लगते हैं, समझे?

ऐसे ही ज्ञान है न? वह कमांडर है, चीफ कमांडर है। क्योंकि जीता जागता देव, अथवा जो प्रगट लक्षण है, वह ज्ञान की पर्याय का प्रगट लक्षण है। श्रद्धा की पर्याय प्रगट नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं है। चारित्र की वीतराग पर्याय प्रगट नहीं है। सुख-दु:ख की, अतीन्द्रिय सुख की पर्याय प्रगट नहीं है। आहाहा! परंतु यह ज्ञान की पर्याय तो स्वभाव का अंश है, मोक्षमार्गप्रकाशक में (अधिकार २, नवीन बंध विचार) लिया है। क्योंकि जिसप्रकार सूर्य का प्रकाश है, वह बादलों के विघटन से जितना प्रकाश उदय होता है वह स्वभाव का अंश है और वह सूर्य को ही प्रसिद्ध करता है। ऐसे ही आत्मा, उसका ज्ञान जो है, स्वभाव का अंश प्रगट होता है, वह आत्मा को प्रसिद्ध करता है। वह बंध का कारण नहीं है, राग-द्वेष-मोह बंध के कारण हैं। नवीन बंध का कारण क्या? ऐसा (२६) पेज के ऊपर (२६-२७) पेज पर लिया है। (२६) पेज पर शीर्षक है और (२७) में उसका जवाब है।

इसप्रकार यह भगवान आत्मा है, वह समय नाम का पदार्थ है। वह समय नाम का पदार्थ पूरा कब कहा जाता है? कि द्रव्य-गुण से तो समानता है परंतु उसकी पर्याय में जानने की दशा प्रगट होती है। समय का वर्णन करते हुये समयसार की दूसरी गाथा में कहा, कि युगपत् एक साथ जानता भी है और जाननेरूप परिणमता भी है। ऐसा पदार्थ का स्वरूप ही है, स्वयं सिद्ध। आहाहा! वह किसी नय से आत्मा को जानता है और किसी नय से ज्ञान प्रगट होता है, ऐसा है नहीं। कोई कर्म मार्ग दे तो प्रगट हो ऐसा नहीं (है)।

स्वभाव निरपेक्ष होता है, भाई! स्वभाव को किसी की अपेक्षा नहीं होती। आहाहा! ऐसे, ज्ञान सत् अहेतुक है, उसका कोई हेतु नहीं है। (ज्ञान) स्वयं, स्वयं प्रगट होता है और वह स्वयं प्रगट होता हुआ, कि जिसका वह विशेष है उसे ही वह प्रगट करता है। सामान्य आत्मा है और उसका विशेष उपयोग है, राग उसका विशेष नहीं

है। आहाहा! तो वह उपयोग जो है, उस उपयोग से आत्मा अनन्य है। उपयोग और आत्मा भिन्न नहीं हैं। इसलिये वह उपयोग आत्मा को प्रसिद्ध करता है, वह पर्याय का अपना स्वभाव है, इसप्रकार! ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है कि वह आत्मा को प्रसिद्ध करे। आहाहा! **अनादि-अनंत** कहा न? **अनादि-अनंत ज्ञान की पर्याय आत्मा को जाननेरूप ही परिणमती है।** यहाँ अतीन्द्रियज्ञान या इन्द्रियज्ञान या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान कुछ नहीं लेना। सामान्य उपयोग है यह, स्वभाव का अंश है।

यह हरीशचंद्रभाई आने लगे हैं वह अच्छा हुआ। और मुझे विचार आया था, आपने कहा कि मैं तो आ नहीं सकूँगा, दो दिन बाद आऊँगा, लेकिन एक टिकिट केन्सल नहीं कराते। मैंने कहा अच्छी बात है, इतना भी अच्छा है। आहाहा! तुम जहाँ-तहाँ जाते हो न? उस बात मे कुछ माल नहीं है। कुंदकुंद भगवान के पास जाओ। वहाँ सारा माल मिलेगा, बाकी कहीं है नहीं। कुंदकुंद भगवान को जिन्होंने जाना ऐसे गुरुदेव के पास जाओ। बाकी तो भटकना ही है, जिंदगी पूरी हो जायेगी।

मुमुक्षु: गुरुदेव के पास से आपके पास आये हैं।

पू. लालचंदभाई: हम तो डाकिया हैं। उनकी जो डाक है वह लाकर सबको देते हैं, गुरुदेव ने ऐसा कहा है। गुरुदेव ने ऐसा कहा है, हमें समझ में आया है इसलिये हम कहते हैं।

मुमुक्षु: गुरुदेव के प्रतिनिधि आप ही होता है।

उत्तर: ठीक है। देखो, यह आता है तत्त्वार्थसूत्र में **उपयोगो लक्षणम्** (अध्याय २, सूत्र ८) जो दिगंबर का मूल शास्त्र। आहाहा! अब उन्हें भी पता नहीं कि यह उपयोग क्या है? किसे जानता है और क्या करता है उपयोग? उपयोग की क्रिया क्या? और उसका विषय क्या? वह भी जानकारी नहीं है। उपयोग में जानने की क्रिया होती है, और वह आत्मा को जानती है, पर को नहीं जानती। लक्ष्य को प्रसिद्ध करती है और अलक्ष्य को प्रसिद्ध नहीं करती, उसे लक्षण कहने में आता है। यह परिभाषा है लक्षण की, लक्ष्य को प्रसिद्ध करे और अलक्ष्य को प्रसिद्ध न करे। वह तो ठीक है न? आहाहा! उसका नाम लक्षण कहा जाता है। वह राग को प्रसिद्ध नहीं करता। आहाहा! वह न करे तो कुछ नहीं, परंतु व्यवहार से तो राग को जानता है न? आहाहा! बहुत बड़ी भूल हो गई, प्रभु!

अनादि-अनंत ज्ञान की पर्याय आत्मा को जाननेरूप ही परिणमती है।

वह ज्ञान आत्मा को ही सम्यक्एकांत, आत्मा को **ही प्रसिद्ध करता है** और पर को प्रसिद्ध नहीं करता। तो स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव कहाँ गया? कि उसमें रह गया। ज्ञान की पर्याय में रह गया, उड़ा नहीं है। तुमने तो कहा, मात्र आत्मा को जानता है और पर को नहीं जानता, तो-तो स्वपरप्रकाशक में, पर को तुमने उड़ा दिया? कि हमने उड़ाया नहीं है, तुझे ऐसा लगता है कि ज्ञान की पर्याय ऐसे-ऐसे (पर लक्ष से) जानती है तब उसे परप्रकाशक कहते हैं। ऐसा है नहीं। तेरी मान्यता उल्टी है। ज्ञान की पर्याय को इसप्रकार (पर का लक्ष) नहीं करना पड़ता। ज्ञान की पर्याय आत्मा को जानते-जानते, उसमें लोकालोक का प्रतिभास होता है। इस प्रतिभास को परप्रकाशक कहा जाता है। पर का लक्ष करे तो उपयोग रहता नहीं।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!

पू. लालचंदभाई: बहुत अच्छा! सत्य है न? वह appeal (अपील, आकर्षण) करता है अंदर। सत्य है न? आत्मा बैठा है न अंदर? वह आकर्षण करता है, अंदर से हकार आता है, हकार आता है। आहाहा! **ज्ञान आत्मा को ही प्रसिद्ध करता है**, पर को नहीं, इसप्रकार। वह अस्ति-नास्ति अनेकांत है।

किस नय से ज्ञान में आत्मा जानने में आये! लो! दूसरा पैराग्राफ आया। **किस नय से ज्ञान में आत्मा जानने में आये और किस नय से जानने में न आये?** किस नय से जानने में आये और किस नय से आत्मा उसमें न जानने में आये, इसप्रकार। **व्यवहारनय से जानने में नहीं आता और निश्चयनय से जानने में आता है-ऐसा नहीं है।** यह तो ज्ञान की पर्याय के स्वभाव की बात है। कि नय से तो ऐसा ही सुना है? अब नय से आगे की बात चलती है। तेरी धारणा को अंदर अभी deposit (डिपोजिट, जमा) करके रख दे। आहाहा! और अनुभव होता है तब ऐसा लगता है कि इस नय का ज्ञान भी झूठा, अनुभव से प्रमाण करना। **व्यवहारनय से जानने में नहीं आता,** ज्ञान में आत्मा **व्यवहारनय से नहीं जाना जाता और निश्चयनय से जानने में आता है,** सर्वज्ञ भगवान ने दो नय कहे हैं, स्पष्ट बात है! - ऐसा नहीं है। निश्चयनय से जानने में आता है और व्यवहारनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता, निश्चयनय से जानता है, **ऐसा नहीं है।** तू नय लगायेगा तो वह ज्ञान ही प्रगट नहीं होगा, जानने की बात तो दूर रही। आहाहा! जानने की बात तो दूर रही। वह तो विकल्प उत्पन्न हुआ।

-ऐसा नहीं है। ज्ञान आत्मा को, देखो, उसका जवाब आया ऊपर की दो लाइनों का। **ज्ञान आत्मा को स्वभाव से ही अनादि-अनंत प्रसिद्ध करता है।** आहाहा! अनादि-अनंत, माने तो भी ठीक और न माने तो भी ठीक। सूर्य का प्रकाश मकान को प्रसिद्ध करता है, सूर्य को प्रसिद्ध नहीं करता -ऐसा कोई कहे पागल तो? तो सूर्य को प्रसिद्ध नहीं करेगा उसका प्रकाश? अंधेरा हो जायेगा प्रकाश में? नहीं होगा। वह ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध किया करता है, समय-समय। यह अनुभव का आसान उपाय है। अनुभव का आसान में आसान उपाय है। सबसे सरल यह है। कितनी यात्रा करनी? कितने उपवास करने? कितने व्रत करने? और कितने मंदिर बनवाने? आहाहा! कितने शास्त्र पढ़ने? कितने नय-निक्षेप-प्रमाण? कितनी डिग्रियाँ प्राप्त करनी? आहाहा!

ज्ञान आत्मा को जानता हुआ ही प्रगट होता है, प्रसिद्ध करता हुआ ही प्रगट होता है। आहाहा! **अनादि-अनंत प्रसिद्ध करता है। उसे नय की अपेक्षा ही नहीं है।** आहाहा! नय बीच में डालेगा तो? तो ज्ञान आत्मा को जानता है वह तुझे ख्याल में नहीं आयेगा। नय को बीच में मत रख भाई! आहाहा! नय तो बाधक है, अनुभव के लिये बाधक है। वह आया था, जो-जो साधन वह-वह बाधक। **उसे नय की अपेक्षा ही नहीं है,** स्वभाव को। **स्वभाव में नय नहीं होते**। ज्ञान की पर्याय आत्मा को जानती है। किस नय से? प्रश्न ही नहीं है, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही है। वह सामान्य का विशेष है तो वह विशेष सामान्य को प्रसिद्ध करे, करे और करे। आहाहा! सामान्य-विशेष तो ख्याल में आया न?

उसे नय की अपेक्षा ही नहीं है। स्वभाव में नय नहीं होते और स्वभाव की सिद्धि के लिये, 'नय' मात्र अंगुली निर्देश करते हैं। अनुमान करके कहते हैं, जो व्यवहारनय में फंसा हुआ था उसे ऐसा कहते हैं, कि निश्चयनय से तो ज्ञान आत्मा को ही जानता है, पर को नहीं जानता। इतने व्यवहार का निषेध करने के लिये निश्चयनय से उसे इशारा किया। **अनुमान तक ले जाते हैं, बस-** बस, उनकी मर्यादा इतनी। अनुमान ज्ञान में ऐसा आया कि मेरा ज्ञान तो मेरी आत्मा को ही जानता है, पर को नहीं जानता। ऐसा अपने ख्याल में पहले लेता है, नय के द्वारा।

तू निश्चयनय से अकर्ता है या स्वभाव से ही अकर्ता है? कि साहेब! निश्चयनय से अकर्ता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से देखा जाए तो अकारक और अवेदक

है ऐसा शास्त्र में लिखा है। उससे आगे की बात है यह। लिखा है वह सत्य है परंतु वह विकल्प है, उसमें अनुभव नहीं होता।

मैं तो स्वभाव से ही अकर्ता हूँ, प्रभु। आहाहा! अब, तेरे कहे हुये इंद्रजाल, नय को मैं उल्लंघता हूँ और मैं अपने स्वभाव के समीप जाकर देखता हूँ तो मुझे नय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! **बस, तो नयों के विकल्प छूट जायेंगे और तुझे अनुभव हो जायेगा। अनुभव की यह विधि है।** जिसे अनुभव करना हो न? उसे यह विधि बताई जाती है।

ज्ञान की पर्याय निश्चयनय से आत्मा को जानती है या स्वभाव से जानती है? निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है या स्वभाव से जानता है?

मुमुक्षु: स्वभाव से जानता है।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव से जानता है। तो निश्चयनय से तो झूठा हो जायेगा? झूठा ही है। आहाहा! हो जायेगा क्या? वह तो झूठालाल है।

विकल्प है न वह तो? निश्चयनय का विकल्प भी वस्तु का स्वभाव नहीं है। वह तो प्राथमिक शिष्यों को समझाने के लिये होता है। यह तो एकदम अंदर जाने की बात है। समझे? आहाहा! आठ वर्ष का बालक भी अनुभव कर सकता है। तू तो दस-बारह वर्ष का हो गया होगा, या नहीं? धीरज नाम है, धीरज उसका, एक नीरज और एक धीरज। अकलंक और निकलंक दो भाई थे न? हाँ, ऐसे ये। Powerful (पावररफुल, शक्तिशाली) है, हों! हाँ! उस दिन बोलता था, ओहोहो! गजब है!

मुमुक्षु: बड़े पंडितों को शर्म आये ऐसा है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! ऐसा है।

मुमुक्षु: आत्मा में से आये ऐसा।

पू. लालचंदभाई: Spirit (स्पीरीट, जोश)से बोलता है हों, आत्मा है न? आहाहा! अनंत गुण से भरपूर आत्मा, भगवान आत्मा है। कौन बालक, कौन युवा और कौन वृद्ध? उसमें कुछ है नहीं। **बस, तो नय के विकल्प छूट जायेंगे और तुझे अनुभव (हो जायेगा)**, ऐसा कहते हैं। यदि तू नय को छोड़ देगा तो तुझे अनुभव हो जायेगा। नय को पकड़ेगा तब तक अनुभव नहीं होगा। आहाहा!

सोगानीजी ने एक दृष्टांत दिया, सोगानीजी ने। एक तोता था, उड़ते-उड़ते एक नली को पकड़ लिया, घूमती हुई नली। ऐसे-ऐसे घूमती थी, नली घूमी तो सिर

उल्टा हो गया उसका। नली को पकड़ा और उसका सिर उल्टा हो गया। तो दूसरे तोते, उसको उसकी भाषा में समझाते हैं, छोड़ दे। इस नली को तू छोड़ दे तो तू उड़ जायेगा। तो तोता कहता है कि मैं मर जाऊँगा। कि तू मरेगा नहीं बल्कि उड़ जायेगा। उसकी जाति के कहने लगे न? इसीलिये उसे समझ में आया, यदि कौए ने कहा होता तो न छोड़ता। समझ में आया? या किसी बिल्ली ने आकर कहा होता तो?

मुमुक्षु: तो न छोड़ता।

पू. लालचंदभाई: परंतु उसकी जाति के, उसकी जाति वालों ने कहा कि छोड़ दे, तू उड़ जायेगा। एक तोता, दो तोते, तीन तोतो ने, एक के बाद एक (कहा)। ये सब मेरी ही जाति के हैं, इसलिये अपने को सच्ची सलाह देते हैं। समझ गये? तो उसने इसप्रकार छोड़ दिया, छोड़ते ही उड़ गया। इसप्रकार नय को पकड़कर रखा है, छोड़ दे! अनुभव हो जायेगा तुझे, ऐसा कहते हैं। यह नली है, नली (को पकड़कर) तेरा सिर उल्टा हो गया है। यह सोगानीजी ने दृष्टांत दिया था।

बस, तो नय के विकल्प छूट जायेंगे और तुझे अनुभव हो जायेगा। यह अनुभव की विधि है। ज्ञान की पर्याय निश्चयनय से आत्मा को जानती है या स्वभाव से जानती है? -स्वभाव से ही जानती है, प्रभु। आहाहा! उसे नय की जरूरत नहीं है।

अनादि-अनंत ज्ञान स्वभाव से ही आत्मा को जानता हुआ प्रगट होता है। आहाहा! सूर्य का प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करते हुये ही उदय होता है। **स्वभाव से ही जानता हो, उसमें नय की अपेक्षा नहीं होती। नय तो मात्र स्वभाव का उँगली निर्देश करता है।** नहीं जानता - समझता उसे इशारे से समझाते हैं। **पहले व्यवहारनय का पक्ष था उसे निश्चयनय द्वारा समझाते हैं**। व्यवहारनय का पक्ष छुड़ाने के लिये उसे निश्चयनय का अवलंबन दिया, कि निश्चयनय से तू विचार कर, व्यवहारनय से विचार करना छोड़ दे अब। कि व्यवहारनय अन्यथा कथन करता है और निश्चयनय तो वस्तु का जैसा स्वभाव है वैसा प्रतिपादन करता है। इसलिये निश्चयनय सत्यार्थ है, ऐसे। व्यवहारनय असत्यार्थ है। अर्थात् व्यवहार का पक्ष छुड़ाने के लिये उसे निश्चयनय का अवलंबन दिया।

तो व्यवहार का पक्ष छूट जाता है और निश्चय के पक्ष में आता है। निश्चय के पक्ष में आता है अब। व्यवहार का पक्ष छूटता है और निश्चय के पक्ष में आता है।

अब कोई तो स्वभाव तक पहुँचकर कोई, **पहुँचकर पक्षातिक्रांत होकर अनुभव कर लेता है और कोई निश्चयनय के पक्ष में** अर्थात् विकल्प में **अटक जाता है, अनुभव नहीं कर सकता**।

अब जो निश्चयनय के द्वारा स्वभाव का अनुमान करके, जो कि निश्चयनय तक जो आया है वह **निश्चयनय द्वारा स्वभाव का अनुमान करके, अनुभव में चला जाता है।** अनुमान में आ कर, अनुमान में अटकता नहीं है अब। आहाहा! निश्चयनय द्वारा, मन द्वारा वस्तु का निर्णय होता है, अनुमान, अनुमान होता है। आहाहा! मैं तो जाननहार हूँ, अभेद टंकोत्कीर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। इसप्रकार व्यवहार का पक्ष छोड़कर, और निश्चयनय जैसा स्वरूप कहता है ऐसे स्वरूप को पहले मन के द्वारा वह ख्याल में लेता है। उसे ख्याल में आता है, आ सकने योग्य है, ऐसे। परंतु मन के द्वारा अनुभव नहीं हो सकता।

मुमुक्षुः अनुमान द्वारा नहीं होता? अनुमान द्वारा भी नहीं होता?

पू. लालचंदभाईः नहीं, अनुभव नहीं होता।

मुमुक्षुः अनुमान द्वारा तो वह उस तक पहुँचता है।

पू. लालचंदभाईः कहाँ तक पहुँचता है?

मुमुक्षुः स्वभाव तक। दृष्टि में लेता है, अनुमान द्वारा।

पू. लालचंदभाईः नहीं-नहीं। अनुमान द्वारा, मन के विकल्प द्वारा, परोक्ष ज्ञान द्वारा, आत्मा ऐसा है, ऐसा ख्याल में लेता है, तब तक दुःखी है। तब तक?

मुमुक्षुः दुःखी है, सही है! सही है!

पू. लालचंदभाईः बाद मे अनुमान छूट जाता है और प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। अनुमान में कुछ हाथ में नहीं आया।

मुमुक्षुः अनुमान के द्वारा निश्चय का निर्णय कर लेता है।

पू. लालचंदभाईः निर्णय कर लेता है, मगर जो निर्णय है न, वह दुःखदायक दशा है।

मुमुक्षुः वह विकल्पात्मक है।

पू. लालचंदभाईः हा, वह विकल्पात्मक है। वह अनंतानुबंधी की कषाय है, अभी। नहीं तो उसे ऐसा लगता है कि मैं अब निर्णय में आ गया। निर्णय में आ गया ऐसा जो मानता है, वह तो निर्णय में भी नहीं है। निर्णय को आगे करता है उसे निर्णय

नहीं होता। निर्णय में ज्ञायक तत्त्व आगे होता है, उसे निर्णय होता है। निर्णय पीछे रह जाता है और ज्ञायक आगे आ जाता है। निर्णय की बात कोई अपूर्व है, साधारण बात नहीं है। शांतिसागर कहते हैं 'अपूर्व बात है'। आहाहा! निर्णयवाला निर्णय को आगे (नहीं) करता। उसे ख्याल आ जाता है कि अब सम्यग्दर्शन जरूर होगा। वह व्यवहारनय से निशंक हो गया है, निश्चयनय से अभी निशंक नहीं हुआ। क्या कहते हैं शोभनाबेन?

मुमुक्षु: व्यवहारनय से निशंक अर्थात्?

पू. लालचंदभाई: क्या कहा?

मुमुक्षु: व्यवहारनय से निशंक अर्थात् - आपने कहा न?

उत्तर- व्यवहारनय से निशंक हुआ है अर्थात् कि निशंक नहीं हुआ है, ऐसे। व्यवहारनय लगाया न!

मुमुक्षु: निश्चयनय से तो निशंक हो गया।

पू. लालचंदभाई: निशंक का फल नहीं आया न? तो क्या निशंक हुआ? निशंक का फल तो...

मुमुक्षु: निशंक होकर आगे बढ़ गया।

पू. लालचंदभाई: आगे बढ़े तब न? वहाँ रुक जाये तो? निर्णय हो गया-निर्णय हो गया, ऐसे अटक जाता है वह तो। आहाहा! निर्णयवाले, मैंने कहा कि निर्णयवाले निर्णय को आगे नहीं करते। निर्णय का विषय उसे आगे हो गया है, मुख्य हो गया है, निर्णय गौण हो गया है। ओहो! मगर रात-दिन उसे एक ज्ञायक ही स्मरण में आता रहता है। आहाहा! यह बात ऐसी है, कोई वचनातीत है, वचन से कही जा सके ऐसी नहीं है। पंचाध्यायी कर्ता ने तीन प्रकार इसमें किये हैं- (१) वचनातीत है, (२) निर्विकल्पवत् है, (३) केवल अनुभवगम्य है। वह कही नहीं जा सकती। सम्यग्दर्शन कहा जा सकता है परंतु निर्णय नहीं कहा जा सकता। आहाहा! क्योंकि सम्यग्दर्शन का लक्षण तो आनंद आया, वह तो प्रगट हो गया। कहा जा सकता है उसके द्वारा, कहना चाहे तो। किसी को कहना हो तो, न कहना हो तो कोई पूछे तो भी जवाब न दे। तुम्हारा विषय है, हमारा विषय नहीं। आहाहा! यह तुम नक्की करो बस!

परंतु यह जो निर्णय आता है वह तो कहा भी नहीं जा सकता। परंतु एक अपेक्षा से उसे नैगमनय लागु पड़ गया। 'चिरम अचिरम' थोड़े या ज्यादा समय में,

उसे प्रत्यक्ष अनुभव होगा, होगा और होगा। वह स्वयं निशंक हो गया है, परंतु अभी व्यवहार से निशंक है, निश्चय से निशंक नहीं हुआ है, क्योंकि आनंद नहीं आया। शोभनाबहन!

अनुभव से निशंक (हुआ वह) अलग बात है और निर्णय में आया और निशंक वह बात अलग प्रकार की है। आहाहा! वह तो एक, एक ज्ञायक की कोई अंदर में धारा उठती है अंदर में। समझ गये? उसकी मुख्यता की। जैसे सम्यग्दृष्टि को परिणति प्रगट होती है न? परिणति, अनुभव के बाद चालू रहती है परिणति, वैसे इस निर्णयवाले को, प्रकाश(भाई), एक परिणति अंदर में प्रगट होती है। आहाहा! वह परिणति धरावाही रहती है नींद में भी। उसका व्यय कब हो कि जब प्रत्यक्ष होता है तब, फिर उसका व्यय हो जाता है। यह तो कोई गुप्त रखने की बात तो है नहीं। खुल्ले रूप में कहने में आती है।

मुमुक्षु: स्वयं को ही अंदर पता चलता है कि ऐसा हो सकता है।

पू. लालचंदभाई: दूसरे किसी को नहीं। दूसरे का विषय ही नहीं है। दूसरा कोई जान सकता नहीं और जिसे हुआ वह कह सकता नहीं। दूसरा जान नहीं सकता और जिसे हुआ हो वह वाणी द्वारा कह सकता नहीं। वह वचनातीत, निर्विकल्पवत्, केवल स्वानुभवगम्य। वह स्वयं जानता है। बस! दूसरा कोई जान नहीं सकता। और लगभग उसका काल दिखाई देता है, लगभग। बाकी तो कितनी ही बातें तो केवली गम्य हैं। परंतु छह महीने से ज्यादा लंबा समय नहीं होता, छह महीने के अंदर उसे अनुभव हो जाता है। या घंटों, या दिनों, या थोड़े महीनों में बस, उसमें अनुभव उसे आता है।

वह भी होने योग्य होता है, उसे आत्मा करता नहीं है। आहाहा! वह तो जाननहार को ही जानता है बस! उसे तो धुन लगती है 'मैं तो ज्ञायक हूँ, चिदानंद आत्मा हूँ'। आहाहा! निर्णय का मेरे में अभाव है। क्या कहा? निर्णयवाला ऐसा जानता है, त्रंबकभाई! इस अपूर्व निर्णय का मेरे में अभाव है क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा!

मुमुक्षु: उसे छह महीने भी नहीं लगते।

पू. लालचंदभाई: नहीं लगते। वह तो अंतर्मुहूर्त में हो जाता है, किसी-किसी को तो। आहाहा! सोगानीजी को एक रात में हो गया था। एक रात में 'ज्ञान भिन्न और राग भिन्न' धुन चढ़ गई। रात को बैठ गये समीति के कमरे में। सवेरे रत्नत्रय जेब में

लेकर उठे। तीन रत्न, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। आहाहा! एक रात में।

अनुभव नहीं कर सकता। अब जो निश्चयनय के द्वारा स्वभाव का अनुमान करके, अनुभव में चला जाता है, पक्षातिक्रांत होता है, उसने निश्चयनय का पक्ष भी छोड़ा तब अनुभव हुआ। पक्ष छोड़े तब अनुभव होता है। **'नय से ऐसा हूँ' ऐसा विकल्प छूट जाता है। अनुभव के लिये नय साधन ही नहीं है।** निर्णय के लिये होता है, अनुभव के लिये नहीं होता। **नय मात्र अनुमान तक** ले **जाता है, वह अनुभव नहीं करा सकता।** नय के विकल्प हैं वे अनुभव नहीं करा सकते, क्योंकि परोक्ष हैं, नय हैं वे परोक्ष हैं और ज्ञान है वह प्रत्यक्ष है। बड़ा अंतर है। लो, यह चौथे पेज का पहला पैराग्राफ हुआ।

ज्ञान की पर्याय निश्चयनय से आत्मा को जानती है ऐसा विचारने पर व्यवहारनय से वह पर को जानता है, ऐसा आ गया। वह प्रमाण में आ गया। नय में कहाँ आया है वह? नय में आया कब कहलाता है, कि व्यवहारनय का निषेध करे तो निश्चयनय में आया। निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है और व्यवहारनय से पर को जानता है, वह तो प्रमाण के पक्ष में खड़ा है। वह निश्चयनय के पक्ष में नहीं आया। निश्चयनय के पक्ष में तो व्यवहार का निषेध करे, तब वह निश्चयनय के पक्ष में आया कहलाता है अभी, कि 'जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता'।

निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है और व्यवहारनय से पर को जानता है, वह तो प्रमाण का विकल्प है, नय का विकल्प भी नहीं है। वह तो बहुत दूर दिखता है। आहाहा! परंतु एक जीव उसमें से निकालता है कि निश्चयनय से आत्मा जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता, व्यवहार का निषेध करे उसका ही नाम निश्चयनय कहलाता है। निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है और व्यवहारनय से पर को जानता है, वह निश्चयनय के पक्ष में नहीं आया, वह प्रमाण के पक्ष में खड़ा है। आहाहा! वह विधि-निषेध में भी नहीं आया है अभी। वह निश्चयनय के पक्ष में भी नहीं आ सकता। उसे निश्चय के पक्ष में आया ऐसा नहीं कह सकते।

यह एक भूल का प्रकार है 'हम दो नयों से विचारते हैं, निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है और व्यवहारनय से पर को जानता है'। आहाहा! वह प्रमाण में अटका है। प्रमाण के दो अंश हैं, निश्चयनय और व्यवहारनय। उसमें से प्रमाण में से

निश्चयनय के पक्ष में आता है कि 'जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता' ऐसे विधि-निषेध में आता है। फिर (निषेध) के विकल्प भी छूटने लगते हैं, निषेध के विकल्प छूटने लगते हैं, और विधि के विकल्प का बल आता है। आहाहा! निषेध का पक्ष छूटता जाता है तब उसे द्वेष घटता जाता है, और 'जाननहार जानने में आता है' ऐसे निश्चय के पक्ष में आये तब यहाँ शुभराग, राग के पक्ष में आया, द्वेष का पक्ष छूटा। फिर अनुभव करे तो राग-द्वेष दोनों छूटकर अनुभव होता है। आहाहा! 'दो नय भगवान ने कहे हैं' - वह प्रमाण के पक्ष में खड़ा है। आहाहा! दो नय कहे हैं परंतु एक में, निश्चयनय के द्वारा व्यवहार का निषेध करने को कहा है। स्वआश्रित निश्चयनय के द्वारा तू व्यवहार का निषेध करना, दया मत रखना, 'अदयम' पाठ है।

ज्ञान की पर्याय निश्चयनय से आत्मा को जानती है ऐसा विचारने पर व्यवहारनय से वह पर को जानती है, ऐसा आ गया। अरे! निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता। बोलो! आहाहा! पर को नहीं जानता उसमें व्यवहार का निषेध हुआ। निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता उसमें निश्चयनय का निषेध आया। हाय-हाय! निश्चयनय का निषेध यह क्या? यह बात तो सुनी नहीं है कभी। व्यवहारनय का निषेध तो ठीक है, परंतु निश्चयनय का निषेध? कि निश्चयनय के विकल्प का निषेध है, उसके विषय का निषेध नहीं है।

जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना तेह; वहाँ वहाँ वही वही आचरे आत्मार्थी जन वह (श्री आत्मसिद्धिशास्त्र, गाथा ८)। किस अपेक्षा से कहने में आता है? यहाँ क्या प्रयोजन सिद्ध करना है? वह समझना चाहिये। यहाँ नयातिक्रांत का विषय चलता है।

व्यवहारनय से पर को जानता है, ऐसा आ गया। अरे! निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता। अरे! निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता? तो क्या व्यवहारनय से जानता है ऐसा आप कहना चाहते हो? अरे भाई! यह तो ऊँचे-ऊँचे चढ़ने की बात है। कहाँ नीचे उतर गया वापस? वह व्यवहार के पक्ष की गंध है न! नरेनभाई, यह तो भाग्यशाली हो उसके कान में बात आती है। पक्षातिक्रांत की बात है।

ज्ञान आत्मा को नहीं जानता। स्वभाव से ही जानता है। नय की क्या

जरूरत है? **तो कोई नय ही नहीं रहा, स्वभाव हाथ में आ गया।** कोई विकल्प नहीं रहा और स्वभाव (की) दृष्टि, अनुभव हो गया निर्विकल्प। **यह बात कोई अपूर्व है।** यह बात 'निश्चयनय से आत्मा को नहीं जानता? कि हाँ! नहीं जानता।' वह बात अपूर्व है। 'निश्चयनय से आत्मा को जानता है' ज्ञान वह बात सुनी है, परंतु 'निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता' वह बात तूने सुनी नहीं। आहाहा! शांतिसागर ऐसी बात है।

तो कोई नय ही नहीं रही स्वभाव हाथ में आ गया। यह बात कोई अपूर्व है। नयातीत होने के लिये यह बात है। विकल्पातीत होकर अनुभव कैसे हो, उसकी मुख्यता से बात चलती है। **स्वभाव से ही स्वभाव जानने में आता है।** नय से जानने में नहीं आता। **-नय से स्वभाव की प्रसिद्धि ही नहीं हुई।** अनंतबार नय तक आ गया, नवमें ग्रैवेयक में गया परंतु अनुभव नहीं हुआ। **नय साधन ही नहीं है।** लो!

व्यवहारनय तो साधन नहीं परंतु निश्चयनय भी (साधन नहीं)। साधन नहीं किंतु बाधक है। **यदि नय साधन हो तो तो पक्षातिक्रांत होने के काल में नय रहनी चाहिये,** साधन हो तो! **परंतु तब तो कोई नय रहता नहीं। इसलिये नय स्वभाव की सिद्धि के लिये साधन ही नहीं है।** विकल्पात्मक ज्ञान स्वभाव को अनुभव करने का साधन (ही नहीं है)।

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट ४-७
पर्युषण पर्व, जामनगर, गुजरात
तारीख: १९-०९-१९९१
प्रवचन LA ४०९

द्रव्य स्वभाव - पर्याय स्वभाव, पृष्ठ नंबर-४। दृष्टांत देते हैं।

जैसे कि सूर्य प्रकाश का पुंज है। सूर्य है वह प्रकाशमय है, प्रकाश का पुंज है। **किस नय से** प्रकाश का पुंज है**? अरे! स्वभाव से ही सूर्य प्रकाश का पुंज है**। उसमें नय की जरूरत नहीं पड़ती, ऐसा कहा। **और प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करता है, किस नय से प्रसिद्ध करता है? अरे! स्वभाव से ही प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करता है। अब जो स्वभाव से ही है, वहाँ नय लागू नहीं पड़ते**। व्यवहारनय या निश्चयनय, उसकी कोई जरूरत नहीं पड़ती। स्वभाव से विचार करे तो जरूरत नहीं पड़ती। **नय तो मात्र शिष्य को समझाने के लिये हैं। नयों के प्रयोग में ज्यादा जाने जैसा नहीं है-** रुकने जैसा नहीं है। नय है वह विकल्प है। अर्थात् अनुभव न हुआ हो तब तक उसे नय के द्वारा समझाते हैं। (किंतु) नय से अनुभव नहीं होता।

यदि ज्ञान नयों के प्रयोग में अटकेगा, ऐसे। **यदि ज्ञान नयों के प्रयोग में अटकेगा तो दूसरा प्रतिपक्षी नय ज्ञान में खड़ा होगा। आत्मा 'निश्चयनय से' अकर्ता है**, एक नय का प्रयोग किया। **आत्मा 'निश्चयनय से' अकर्ता है, उसमें विकल्प खड़ा हुआ।** निश्चयनय से अकर्ता है, तो विकल्प है। **ज्ञान की पर्याय 'निश्चयनय से' आत्मा को जानती है,** यह दूसरा प्रकार। पहले द्रव्य में निश्चयनय घटाया, अब ज्ञान की पर्याय में निश्चयनय घटाकर समझाते हैं।

ज्ञान की पर्याय 'निश्चयनय से' आत्मा को जानती है उसमें भी विकल्प खड़ा हुआ। निश्चयनय से आत्मा अकर्ता नहीं है... निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता... अरे! यह क्या बात करते हो? निश्चयनय से आत्मा अकर्ता नहीं है?

कि नहीं है। निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता? कि नहीं । यह क्या बात करते हो? हमने तो आज तक ऐसा जाना था। हसमुखभाई आ जाओ न अंदर, जगह है बहुत, आओ! इस सोफासेट पर चार-पाँच जने बैठ जाओ, चार-पाँच जने, पाँच-छह जने समा जायेंगे इसमें। मैं मंजूरी देता हूँ, बैठो-बैठो ऊपर। ऊपर आ जाओ न जरा, जगह कम पड़ती है न!

मुमुक्षु: ....बुजुर्ग व्यक्ति आयेंगे तो ऊपर बैठ जायेंगे...

पू. लालचंदभाई: भले-भले, आयें तो बिठाना, आओ कहकर और आओ-आओ ऐसा कहकर (बिठाओ)। यहाँ तिरस्कार नहीं करना, सत्कार देना, आओ-आओ।

क्या कहा? आत्मा निश्चयनय से अकर्ता है, ऐसा नहीं है। ज्ञान आत्मा को निश्चयनय से जानता है, ऐसा भी नहीं है। **निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को नहीं जानता... अरे! यह क्या बात करते हो? हाँ, सुन।** सुन भाई! **-निश्चयनय से आत्मा अकारक, अवेदक नहीं है, स्वभाव से ही अकारक, अवेदक है।** अर्थात् अकर्ता और अभोक्ता है। अकर्ता और अभोक्तापना आत्मा का मूल स्वभाव है। परंतु उसे समझाने के लिये नय का प्रयोग किया जाता है। और नय के प्रयोग से प्रमाण में आ जाता है। नय हैं न, सापेक्ष हैं। निश्चयनय से अकर्ता है ऐसा कहें, तो निश्चयनय से अकर्ता है, तो व्यवहारनय से कर्ता है, ऐसा उन्हें कहना ही पड़े। क्योंकि अज्ञान दशा में राग का कर्ता, भेदज्ञान होने पर ज्ञान का कर्ता, इसप्रकार पूरे प्रमाण की सिद्धि करने के लिये दो नयों के प्रयोग से समझाते हैं।

बाकी तो बहुत प्रकार ऐसे भी आते हैं कि मतार्थी को समझाने के लिये भी, उसका खंडन करने के लिये भी, नय के प्रयोग से खंडन कर देते हैं। जैसे कि सांख्यमत कहता है कि आत्मा परिणाम का कर्ता नहीं है, सर्वथा अपरिणामी अकारक, अवेदक है, सांख्यमत। तो वह तो मिथ्यात्व की अवस्था हुई क्योंकि तो-तो बंध-मोक्ष की सिद्धि ही नहीं होती, नौ तत्त्व की सिद्धि नहीं होती, ज्ञान ही झूठा पड़ गया। इसलिये मतार्थी के लिये ऐसा कहा जाता है कि आत्मा निश्चयनय से अकर्ता है परंतु व्यवहारनय से कर्ता है। व्यवहारनय से, भेदज्ञान का अभाव हो, अज्ञान दशा हो, तब तक वह राग का कर्ता है, ऐसा स्वीकार करना (समयसार ३३२-३४४ टीका का अंतिम पैराग्राफ)। लेकिन राग का कर्ता आत्मा है ऐसा नहीं कहना है। परंतु पर्याय में

राग होता है इसलिये पर्याय राग को करती है, ऐसा स्वीकार करना। परंतु संक्षेप में ऐसा कहते हैं कि आत्मा व्यवहारनय से कर्ता है, क्योंकि वे तो सर्वथा अकर्ता में चले गये, सर्वथा अपरिणामी में चले जाते हैं। और या उन्हें कर्ता सिद्ध करना हो तो कहते हैं कर्म से राग होता है, कर्म कराता है, आत्मा नहीं करता। बहुत प्रकार की गड़बड़ होती है तो मतार्थी का खंडन करने के लिये नय के प्रयोग से खंडन कर देते हैं।

यह तो जिनमत में आ गया। जैनमत में आने के बाद दो नयों से जैसा है वैसा विचारता है। इसलिये अजैन नहीं हुआ, अजैनपना नहीं आया, जैन में आ गया। जैन में ही दो नय हैं, अजैन में किसी में नय हैं नहीं। अब नय के, नय के प्रयोग से समझाया, तो नय को ही चिपक गया। वह भी गलत है अब। नय को प्रथम से ही छोड़ दे तो भी गलत और अभ्यास क्रम में नय को पकड़कर रखे तो भी अनुभव नहीं होता! आहाहा!

पाँच प्रकार से शास्त्र के अर्थ करने की पद्धति है। आत्मा, उसका स्वभाव, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, शब्दार्थ, भावार्थ ऐसे पाँच प्रकार से शब्द का अर्थ करना, ऐसे! नयार्थ से समझना निश्चयनय और व्यवहारनय। और मतार्थ, मतार्थी के लिए है ऐसा समझना चाहिये। अब किसी की दवा कोई और पी जाये तो? मर जाये। आहाहा! दवा तो सांख्यमत के लिये दी थी।

वह इस बार गुरुप्रसाद में आया है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि 'आत्मा राग का कर्ता नहीं है, देख लो यह कलश', ऐसा करके आधार दिया है। भाई! वह कलश तो सांख्यमत के सामने है। सांख्यमत सर्वथा अकर्ता में चला गया है। अज्ञानी विशेष अपेक्षा से राग को करते हुए भी उसे उड़ाता है, कि कोई जीव राग का कर्ता नहीं है। कोई जीव अब्रह्मचारी नहीं है, सभी ब्रह्मचारी हैं। आहाहा! वेद कषाय के उदय से अब्रह्म होता है, आत्मा उस दोष का कर्ता नहीं है, ऐसा नहीं है! विशेष अपेक्षा से, स्वभाव को भूलकर, अज्ञानी जीव उस पर्याय का व्यवहारनय से कर्ता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये! यूँ ही अद्धर से नहीं चलता भाई, अकेले दृष्टि के पक्ष में। आहाहा! तो तो एकांत हो जायेगा, सांख्यमत जैसा हो जायेगा।

अतः नयों का प्रयोग भी इसप्रकार से करना चाहिये कि अपनी गर्दन कटे नहीं। नहीं तो गर्दन कट जाती है, चक्र है न? आहाहा! यह तो स्वयं समझे तो समझ में आये ऐसा है। समझाने से समझे ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यह तो दो नयों का

स्वीकार कर लिया है, और दो नयों के स्वीकार के विकल्प में अटका है। वह विकल्प छोड़कर अनुभव कैसे हो, प्रत्यक्ष? उसकी यह एक विशेष बात है। नयों को स्थापकर और फिर नयों के विकल्प को उत्थापने की बात है। नयों को स्थापकर फिर नयों के विकल्प को तोड़ने की बात चलती है। आहाहा!

पहले से नयों को उड़ा दे, तो-तो अजैन है वह। और नयों में अटके तो भी वास्तव में तो अजैन है, नयों के विकल्प उसका कर्म हो गया और आत्मा उसका कर्ता हो गया। अर्थात् यह कच्चा पारा है, उसका समझकर प्रयोग करे तो अमृत है। आहाहा! ऐसा आता है शास्त्र में, वैद्यजन है न, वह विष को खाता है तो भी मरता नहीं। अब वह तो उसका मारक करके खाता है, प्रयोग से, और दूसरे विष खाने लगें तो मर जायेंगे। कि ये वैद्य नहीं मरते तो मैं भी विष खा जाऊँ। मर जायेगा! आहाहा! धार तलवार की दोह्यली जिनवर तणी, ऐसा है यह। संभल संभलकर काम करने जैसा है। वह लाल बत्ती अभी की, इसीलिये। आहाहा!

सुन। -निश्चयनय से आत्मा अकारक, अवेदक नहीं है, स्वभाव से ही अकारक, अवेदक है। उसका त्रिकाल स्वभाव ही है, अकर्तापना और अभोक्तापना। बंध का भी कर्ता नहीं है और मोक्ष का भी कर्ता नहीं है। दुःख का भी भोक्ता नहीं है और आनंद का भी भोक्ता नहीं है, अतीन्द्रिय आनंद हों! उसका भोक्ता नहीं है। तब, तब आत्मा? ना, भोक्ता नहीं है! (श्रोता ने आश्चर्य से) ऐसे देखा। आनंद का भोक्ता नहीं है? क्योंकि आनंद के लिये तो हम यह प्रयत्न करते हैं। यदि आनंद का आत्मा भोक्ता न हो तो फिर यह माथापच्ची करनी ही क्यों? दुःख का भोक्ता नहीं है वहाँ तक तो ठीक है क्योंकि दुःख हमें नहीं चाहिये, उसका तो स्वीकार करते हैं। परंतु दुःख के अभावपूर्वक आनंद आता है, अतीन्द्रिय आनंद हों! आहाहा! उसका आत्मा भोक्ता नहीं है? कि ना!

'तब कौन करता है और कौन भोगता है?' वह प्रश्न आता है। पर्याय करती है और पर्याय भोगती है। अज्ञान दशा में पर्याय राग को करती है, आत्मा नहीं। पर्याय राग को करती है और दुःख को भोगती है। कौन भोगता है? आत्मा। (ना।) जो करे वह भोगे, पर्याय करती है और दुःख को पर्याय भोगती है। भगवान आत्मा राग को करता भी नहीं और दुःख को भोगता भी नहीं। वहाँ तक तो ठीक! हरीशचंद्रजी! वहाँ तक तो ठीक, वह तो बराबर है। क्योंकि राग को करे तो दुःख को भोगे। करे तो

भोगे, वह तो उपयुक्त है। परंतु अतीन्द्रिय आनंद को आत्मा नहीं भोगता। यह क्या? आहाहा! कि भाई! अतीन्द्रिय आनंद को कौन उत्पन्न करता है? पर्याय उसका उत्पादक है, द्रव्य की रचना नहीं है। जो करे वह भोगे, इसलिये पर्याय वीतरागभाव को करती है और उसका फल आनंद, वह पर्याय भोगती है। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य सामान्य निष्क्रिय परमात्मा (जो) दृष्टि का विषय है वह आनंद को नहीं भोगता। आहाहा! 'आनंद लहेंगे मगर ज्ञाता रहेंगे' (भेदज्ञान-भजनवली, जिनेन्द्र भक्ति २३), भोक्ता नहीं होऊँगा, ऐसा।

(श्रोता को आश्चर्य हुआ)। होता है, होता है, होता है, ऐसा है। उसका कारण है कि द्रव्य, पर्याय एक वस्तु ही मानी है, अनंतकाल से। नगीनभाई, वह भूल हो गई। उसका स्पष्टीकरण गुरुदेव ने किया, वरना इतना स्पष्टीकरण (नहीं था)। आहाहा! भूतकाल में भी साधक बहुत हुये, गृहस्थ साधकों की बात करता हूँ हों! मुनिराज की बात तो कहाँ? आहाहा! परंतु इतनी स्पष्टता (गुरुदेव ने ही की)।

क्योंकि क्रिया के कारक पर्याय में हैं। भूले तो राग को करे, भूल तोड़े तो वीतरागभाव को करे। राग को करे तो दुःख को भोगे और वीतरागभाव को करे तो (आनंद को भोगे)। आहाहा! कर्तापने और भोक्तापने का धर्म पर्याय में है, द्रव्य में क्रिया के कारक नहीं हैं। इसलिये करे और भोगे (ऐसा) त्रिकाली द्रव्य परमात्मा का स्वभाव नहीं है। यदि आनंद को भोगे, कदाचित् मान लें हम अपने लोभ से, कि आनंद को तो भोगता है, समझ गये? तो उसके पीछे logic (लॉजिक, न्याय) है। कि जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब तो आनंद को भोगता है आत्मा। तो सम्यग्दर्शन के पहले तो दुःख था, तो आत्मा (दुःख को) भोगता है ऐसा आ जायेगा। ख्याल आया अब? कि वर्तमान पर्याय में आनंद को भोगता है तो पूर्व पर्याय में दुःख को भोगता है ऐसा आ गया कहे बिना। क्योंकि व्ययपूर्वक उत्पाद होता है, दुःख का हुआ व्यय और अतीन्द्रिय सुख का हुआ उत्पाद।

वह सुख को नहीं भोगता वह रहने दो, इतना रहने दो। दुःख को नहीं भोगता वह ठीक है, पर आनंद को न भोगे? आनंद के लिये तो यह करते हैं। आहाहा! वह नहीं भोगता आनंद को तब ही आनंद प्रगट होगा और पर्याय आनंद को भोगेगी, भोगेगी और भोगेगी! ज्ञान ऐसा जानेगा कि पर्याय भोगती है, मैं नहीं भोगता। आहाहा! आत्मज्ञान ऐसा जानता है। दृष्टि द्रव्य के ऊपर, अकारक-अभोगता के

ऊपर पड़ी है। मैं अकारक और अवेदक हूँ, मैं परिणाम का करनेवाला और परिणाम का वेदनेवाला नहीं हूं। धीरज, ऐसी बात है। वह तो संस्कृत में नहीं आयेगा। वह कैसा रूप-रूप-रूप, आता है, रूप आता है, रूपाणी-रूपाणी, क्या कहते हैं? आता है न रूप, वह नहीं लेकिन यह अलग है। वह जानकर भी यह जानना पड़ेगा तुझे। उपाध्याय बनेगा, शास्त्री बनेगा और आचार्य बनेगा न? शास्त्र का आचार्य हों! इन आचार्य की बात नहीं है। यह तो डिग्री है एक आचार्य की।

ओहोहो! इसलिए कहा है, कि द्रव्यानुयोग अपनी योग्यता और गुरुगम से समझ में आये ऐसा है। नहीं तो उसे यदि उल्टा जान ले तो उसका दोष है। श्रीगुरु क्या करें? गुरु तो चारों तरफ से समझाते हैं, विवक्षा से समझाते हैं, लालबत्ती भी धरते हैं जिससे कोई स्वच्छंदी भी न हो और सभी स्वतंत्र होकर परमात्मा हो जायें, ऐसी गुरुदेव की शैली है। परंतु मैं ऐसा समझता हूँ कि सभी दो नयों को समझकर आये हैं इसीलिए मैं दो नयों में, उस व्यवहारनय की बात नहीं करता। समझ गये? उन सभी नयों का ज्ञान तो सभी को हो गया है। अब तो नयातिक्रांत कैसे हुआ जाये, उसकी बात मैं करता हूँ, समझ गये? परंतु जब कहा कि आनंद का भोक्ता नहीं है। भाईसाहब कहते हैं, आनंद का भोक्ता नहीं है? कि ना, नहीं है।

मुमुक्षु: स्वयं पूर्ण आनंदस्वरूप है उसे भोक्ता होने की क्या जरूरत?

पू. लालचंदभाई: क्या जरूरत? आहाहा!

मुमुक्षु: मैं स्वयं परमात्मा हूँ।

पू. लालचंदभाई: परमात्मा, पूर्ण परमात्मा, आनंदमय, आनंदमय है। एक अन्यमति में बात आती है, अन्यमति की हों। बहुत तो याद नहीं है, फिर भी थोड़ी बहुत कहता हूँ। वह कोई ऐसा शिष्य था तो किसी गुरु के पास गया। कि भाई, मुझे तो ज्ञान की पिपासु है, मुझे तो ज्ञान पीना है। देख भाई, तू मेरे पास आया है, परंतु फलाने ऋषि हैं उनके पास जा, वे तुझे ज्ञान पिला देंगे। इसलिए उनके पास गया। तो उन्होंने ऐसा कहा कि तू ऐसा कर, समुद्र के पास जा। वह तुझे ज्ञान पिलायेगा। तो समुद्र के पास गया। मीठा महासागर हों! खारा नहीं। आहाहा! एला (ए भाई), तू ज्ञानमय है, यहाँ मेरे पास ज्ञान पीने कहाँ आया? हें? आहाहा! ऐसी वस्तु है, स्वयं ज्ञानमय और आनंदमय है। बाह्य से ज्ञान और आनंद आने का कुछ है ही नहीं। आहाहा! अंदर भरा है सब। अंदर देख, लक्ष अंदर कर और उसमें (ठहर)। पहले

लक्ष और फिर लीन।

लक्ष गृहस्थ अवस्था में होता है, आंशिक लीनता होती है परंतु विशेष लीनता तो मुनि अवस्था में होती है। आहाहा! बाहर में नग्नता, अठ्ठाईस मूलगुण, निरतिचारपने पालन होता है, जंगल में रहते हैं, गाँव में रहते नहीं। आहाहा! और दो चार दिन में जब उनकी इच्छा हो तब आहार लेने आते हैं, रोज आहार लेना ऐसा नियम नहीं होता। आनंद का भोजन करते-करते कभी इच्छा हो तो गाँव में पधारते हैं। आहाहा! आहार लेकर वापस चले जाते हैं। वे तो ध्यान में मग्न, मस्त हैं, मस्त। मुनि, मुनि हुआ तो सिद्ध हो गया, ऐसा आता है। आता है न बहन?

मुमुक्षु: साधु हुआ तो सिद्ध हुआ।

पू. लालचंदभाई: हाँ, साधु हुआ तो सिद्ध हो गया। साधु अर्थात् क्या? आहाहा! कितने तो कहते हैं ये सोनगढ़वाले साधु को नहीं मानते। अरे! भाई हम तो णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं कहते हैं। भूतकाल के साधु, वर्तमान के साधु और भविष्य में साधु होंगे, उन्हें वर्तमान में नमस्कार करते हैं। गुरुदेव कहते हैं अरे, हम तो साधु के चरण की रज हैं, कहाँ भावलिंगी संत, हें? आहाहा! लोग तो यूँ ही विवाद उठाते हैं, दूसरा क्या हो?

मात्र **निश्चयनय से ज्ञान ज्ञायक को नहीं जानता।** निश्चयनय से ज्ञान ज्ञायक को, अपने आत्मा को नहीं जानता? आहाहा! 'आत्मा का ज्ञान आत्मा को जानता है' उसमें भी अनुभव नहीं होता, क्योंकि इतना भेद पड़ा। **निश्चयनय से ज्ञान ज्ञायक को नहीं जानता। स्वभाव से ही ज्ञान ज्ञायक को जानता** ही **है।** उसमें नय की जरूरत नहीं है। इसप्रकार स्वभाव के समीप जाने पर नयों के विकल्प शांत होते हैं और आत्मा को आत्मा का अनुभव हो जाता है।

इसप्रकार स्वभाव के सन्मुख होने पर नयों के विकल्प अस्त हो जाते हैं, नयों के कोई विकल्प रहते नहीं। **शांत हो जाते हैं** विकल्प**। और अभेदरूप से आत्मा का अनुभव होता है। यह तो स्वभाव का जिसे भान नहीं था और जो व्यवहारनय के पक्ष में पड़ा था उसे निश्चयनय द्वारा समझाते हैं।** जिससे व्यवहार का पक्ष छूटे और निश्चय के पक्ष में आ जाए।

तो वह 'निश्चयनय' को ही चिपक गया। इसलिये उसे अब कहते हैं, व्यवहार से खिसककर निश्चयनय के विकल्प में आया, परंतु अनुभव नहीं हुआ। ऐसे

जीव को **अब कहते हैं -ज्ञान निश्चयनय से आत्मा को नहीं जानता।** तो क्या व्यवहारनय से जानता है? अब कहाँ भाई? तू सुन तो सही। आहाहा! यह विषय ऐसा है, शास्त्र में आता है, कि स्वमत या परमत के साथ तू वादविवाद मत करना, यह वादविवाद का विषय नहीं है। गुरुदेव के सामने बहुत लोगों ने challenge (चेलेंज, चुनौती) किया, कि चर्चा करो हमारे साथ, हमें चर्चा करने आना है, हमें टाइम दो। गुरुदेव ने कभी भी किसी को टाइम नहीं दिया और न ही ऐसा कहा कि हमें चर्चा करनी है। हम तो जो कहते हैं वह सुनने के लिये जिसे आना हो तो आओ। हम किसी के साथ चर्चा नहीं करते। यह चर्चा का विषय नहीं है, भाई! आहाहा! चर्चा से पार आये ऐसा नहीं है।

ज्ञान निश्चयनय से आत्मा को नहीं जानता। अरे! यह क्या कहते हो? बोलो! कुंभार से घड़ा नहीं होता? कि नहीं होता। कि ज्ञान आत्मा को निश्चयनय से जानता नहीं? कि नहीं, नहीं जानता। यह क्या बात करते हो? **क्या निश्चयनय से नहीं जानता, तो क्या व्यवहारनय से जानता है? अरे! तू सुन, मैं तीसरी बात करता हूँ।** व्यवहारनय से भी ज्ञान आत्मा को नहीं जानता और निश्चयनय से भी ज्ञान आत्मा को (नहीं) जानता। मैं इन दो के उपरांत एक तीसरी बात करता हूँ। आहाहा!

प्रतिक्रमण और अप्रतिक्रमण से (अलग) एक तीसरी भूमिका है (समयसार गाथा ३०६-३०७)। आहाहा! उसमें अनुभव होता है। अप्रतिक्रमण तो जहर है परंतु प्रतिक्रमण का विकल्प भी जहर है। शुभराग है न? आहाहा! वह वहाँ लिया है कि यह तो दो प्रकार के प्रतिक्रमण से (भिन्न) तीसरे प्रकार के प्रतिक्रमण की बात चलती है। अरे! यह समयसार अर्थात् क्या? आहाहा! अप्रतिक्रमण तो निषेध करने योग्य है, पाप के परिणाम, वह तो कोई सवाल नहीं है। परंतु प्रतिक्रमण का जो शुभराग आता है उसमें भी आकुलता होती है। भाई! वह वास्तव में प्रतिक्रमण नहीं है। व्यवहार प्रतिक्रमण भी प्रतिक्रमण नहीं है। उससे तीसरी भूमिका है वहाँ प्रतिक्रमण का विकल्प भी उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! पूर्व में लगे हुए दोष, उन्हें याद करके उन्हें टालना, ऐसा जो विकल्प वह भी है नहीं। स्वरूप में लीन हो गया, लीन हो गया तो प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-आलोचना सब एक समय में हो गया। एक वीतरागभाव में दस लक्षण आये हैं न, धर्म? उस वीतरागी पर्याय में दस समा जाते हैं, ऐसा! **तू सुन, मैं तीसरी बात करता हूँ।** आहाहा! प्रतिक्रमण में आता है वह, तीसरी भूमिका में

आता है न? शास्त्र में है।

ज्ञान देखो, ज्ञान, ज्ञान अर्थात् क्या? इस समयसार में ऐसा लिखा है, ऐसा जो ज्ञान, वह ज्ञान है?

मुमुक्षुः नहीं।

पू. लालचंदभाईः तेरा ज्ञान समयसार में है?

मुमुक्षुः नहीं।

पू. लालचंदभाईः ज्ञान समयसार में (शास्त्र में) नहीं होता परंतु समयसार में (आत्मा में) होता है। एक निमित्तरूप समयसार (शास्त्र) और एक उपादानरूप (समयसार - आत्मा)।

- ज्ञान, स्वभाव से ही आत्मा को जानता है। कब? चौथे काल में? आहाहा! निरंतर ज्ञान आत्मा को (जानता है)। आहाहा! **उसे नय लागु नहीं पड़ते।** स्वभाव से ही है फिर कहाँ प्रश्न रहा? नय की जरूरत (नहीं है)। **एक द्रव्य स्वभाव और एक पर्याय स्वभाव। दोनों के स्वभाव को लक्ष में ले**, स्वभाव को लक्ष में ले **तो एक अनुभव होता है।** द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव, उसे स्वभाव से देखो तो एक अनुभव हो जायेगा। द्रव्य को द्रव्य के स्वभाव से देख और पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देख तो तो तुझे अनुभव हो जायेगा। **एक अनुभव होता है। नयातीत होने की यह विधि है।** नयों के विकल्प छूटकर निर्विकल्प आत्मा का अनुभव होने की यह विधि के प्रकार बताते हैं।

जाननहार जानने में आता है। आहाहा! कोलाहल बंद करो अब। नयों के विकल्प के कोलाहल बंद करो, यदि आनंद का स्वाद लेना हो तो। आहाहा! जाननहार **जानने में आता है अर्थात् जानने में आया ही करता है।** दो बात की, जाननहार जानने में आता है वर्तमान में, और जानने में आया ही करता है, किसी भी काल में ज्ञान जानना छोड़ता ही नहीं। तो फिर अनुभव क्यों नहीं होता? कि तुझे कहाँ ऐसा विश्वास है कि जाननहार जानने में आता है? मैं तो इसे (पर को) जानता हूँ। आहाहा! तेरी दृष्टि विपरीत है, निमित्ताधीन दृष्टि है। निमित्त के लक्ष से जाननहार जानने में नहीं आता। त्रिकाली उपादान के लक्ष से जाननहार जानने में आता है, जानने में आता है और जानने में आता है। लक्ष पलट दे न! यह (पर) ज्ञात होता है, यह (पर) ज्ञात होता है, रहने दे।

जाननहार जानने में आता है। जानने में आता है अर्थात् जानने में आया ही करता है। जानता है और जानने में आता है, जानता है और जानने में आता है, यह function (फंक्शन, कार्य) चालू ही है, अनादि से। **आबालगोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आया ही करता है।** बोलो! यह शास्त्र का आधार। **जानने में आया ही करता है।** 'जानता है ' वह ज्ञान प्रधान कथन हुआ और 'आत्मा जानने में आया करता है' वह ज्ञेय प्रधान कथन हुआ। 'जानता है' वह ज्ञान और 'जानने में आता है' वह ज्ञेय। जानता भी आत्मा है और जानने में आता भी आत्मा है।

जाने ज्ञान और जानने में आये दुकान? क्यों, वह भी ज्ञेय तो है न? नहीं? कहाँ गया रजनी? जाने ज्ञान और जानने में आये मीठालाल पेलेस दुकान, कपड़े की दुकान। आहाहा! ऐसा नहीं है। बड़ी भूल खायी है, ज्ञेय की भूल खायी है उसने। यहाँ से ज्ञेय निकाल दिया, उत्थाप दिया और बाहर में ज्ञेय को स्थापित किया। तो जहाँ ज्ञेय तुम्हारे श्रद्धा-ज्ञान में रहेगा, वहाँ ही तुम्हारा उपयोग जायेगा। इस जगत के पदार्थ कोई ज्ञान के ज्ञेय नहीं हैं, ज्ञान का ज्ञेय हो तो निज परमात्मा। आहाहा! अपना आत्मा ही ज्ञेय है। ज्ञान भी स्वयं, ज्ञेय भी स्वयं और ज्ञाता भी (स्वयं) (समयसार कलश २७१)। ऐसे तीन भेद करो तो हैं, और भेद न करो तो अभेद एक वस्तु है। आहाहा!

आबालगोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आया ही करता है, बिना प्रयत्न के हों! कुछ पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता और जानने में आया ही करता है। जानता है और जानने में आता है। जानता है और जानने में आता है, ऐसे स्वभाव का स्वीकार करना उसका नाम पुरुषार्थ है। आहाहा! कुछ नया नहीं करना है। वह ज्ञान भी उत्पन्न नहीं करना है, ज्ञान तो उत्पन्न हो रहा है। और आत्मा को जानना भी नहीं है जानने में आया ही करता है। स्वीकार कर इतनी ही देर है। आहाहा! स्वभाव का स्वीकार उसका नाम अनंता पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ तो है परंतु अनंता पुरुषार्थ है वह।

कौन सी नय से जानने में आया करता है? किसी नय से जानने में आता है न आत्मा? बिना नय के किसप्रकार जानने में आये आत्मा? **अरे! वह तो 'स्वभाव' से ही जानने में आया करता है,** सुन तो सही! यह (समयसार) १७ वीं १८ वीं गाथा है न? बहुत उच्च कोटि की है, बहुत उच्च कोटि की। **ऐसा आता है कि- जब स्वभाव के सन्मुख होकर अनुभव करता है तब नयों की लक्ष्मी उदित नहीं**

होती, प्रमाण अस्त हो जाता है। नयों की लक्ष्मी अर्थात् स्वभाव को जाननेवाली सविकल्पात्मक ज्ञान की पर्याय उदित नहीं होती। राग मिश्रित ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, राग के संबंधवाला ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। राग के संबंध को छोड़कर वह ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! **नय अस्त होते हैं तब स्वाभाविक ज्ञान उदय होता है। जब आत्मा को स्वभाव से देखता है तब नयों के विकल्प छूट जाते हैं।**

(समयसार) कलश - ९ में आता है कि-, बहन, कलश ९ बोलो।

मुमुक्षु: **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं**
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम् ।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वङ्कषेऽस्मि-
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ।।९।।

देखो, यह पुस्तिका लिखी गई, इसे वे कहते हैं कि घर का लिखा गया है। भाई! घर का कुछ नहीं है। संतों ने जो कहा है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! हमारे घर की बात (नहीं है)। है तो स्वभाव की बात, घर की, आत्मा की। समझ गये? परंतु आचार्य भगवान कहते हैं, वह सुन तो सही । आहाहा! सभी आत्माओं का स्वभाव ही ऐसा है, नय से जानने में आये ऐसा नहीं है, शास्त्र ज्ञान से जानने में आये ऐसा नहीं है, आत्मज्ञान से आत्मा जाना जाता है। आहाहा!

श्लोकार्थ:- आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि, शुद्धनय का अर्थात् शुद्धात्मा का अनुभव करके कहते हैं अथवा श्रुतज्ञान का अनुभव करके कहते हैं, श्रुतज्ञान कहो या आत्मा कहो एक ही है। **इन समस्त भेदों को गौण करनेवाला जो शुद्धनय के विषयभूत चैतन्य-चमत्कारमात्र तेजःपुंज आत्मा है,** सामान्य, सामान्य, अनादि-अनंत ज्ञायक टंकोत्कीर्ण एक आत्मा अंदर विराजमान है। **उसका अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती,** अर्थात् नयों के विकल्प उत्पन्न नहीं होते, विकल्प शांत हो जाते हैं सभी। **प्रमाण अस्त हो जाता है**, प्रमाण के विकल्प, द्रव्य-पर्याय को एकसाथ जाननेवाला जो ज्ञान, उसे प्रमाण कहते हैं और वह विकल्पात्मक प्रमाण कहलाता है। प्रकार दो हैं, नय और प्रमाण के:

(१) 'विकल्पात्मक नय' भी होता है और (२) 'निर्विकल्पात्मक नय' भी कहने में आता है।

(१) 'विकल्पात्मक प्रमाण' होता है और (२) 'निर्विकल्प प्रमाण' भी होता है।

परंतु यहाँ नय और प्रमाण, दोनों विकल्पात्मक साधक की भूमिका बतायी है। साधक अर्थात् जिसे सम्यग्दर्शन साध्य है उसे भी साधक कहते हैं, और साधक होने के बाद जिसका साध्य मोक्ष है उसे भी साधक कहते हैं। यहाँ तो जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ है ऐसा जीव नय के द्वारा विचारता है, परंतु अनुभव के काल में नयों के कोई विकल्प रहते नहीं हैं। **और निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है**, नाम निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भाव निक्षेप (स्थापना निक्षेप), चार निक्षेप हैं न? वे।

सो हम नहीं जानते। अमृतचंद्राचार्य भगवान कहते हैं कि हम अपने स्वरूप में लीन होते हैं, तब इसे व्यवहारनय कहा जाता है, और इसे निश्चयनय कहा जाता है, इसे प्रमाण कहा जाता है, और इसे निक्षेप कहा जाता है, कि वहाँ है ही नहीं! हो तो ज्ञान का ज्ञेय कहलाये परंतु वह तो है ही नहीं। हो तो ज्ञान का ज्ञेय व्यवहार से कहलाये, परंतु वो है ही नहीं, अनुभव के काल में कोई विकल्प नहीं है।

निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है सो हम नहीं जानते। इससे अधिक क्या कहें? द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता। यह अनुभूति और यह अनुभूति का विषय, यह आनंद की पर्याय और (यह) आनंद मूर्ति, ऐसा द्वैतपना आत्मा में भासित होता (नहीं)। आहाहा! अभेद ज्ञेय में द्वैतपना नहीं है। अभेद ध्येय में भी द्वैतपना नहीं है। अभेद ध्येय में द्वैतपना नहीं है और अभेद ज्ञेय होता है उसमें भी द्वैतपना (नहीं है)। यह क्या? यह क्या भला? कि अभेद ध्येय है उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र के गुणभेद (ऐसा) तीनपना उसमें नहीं है। दृष्टि के विषय में, ध्येय में गुणभेद नहीं है। पर्याय का तो उसमें अभाव है परंतु गुणों का तो उसमें सद्भाव है, तथापि गुणभेद का अभाव है। ध्येय है, जिसका अवलंबन लेने पर निर्विकल्प शांति आती है, ध्येय, वह अभेद है। आहाहा! उस अभेद में गुणभेद नहीं दिखते और अभेद के ऊपर दृष्टि पड़ने पर उस निर्विकल्प ध्यान में निश्चय रत्नत्रय के परिणाम प्रगट होते हैं, वीतरागी परिणाम। वे भी अभेद होकर ज्ञेय होते हैं, उस ज्ञेय में द्वैत भासित नहीं होता, द्वैतपना भासित नहीं होता। ध्येय में गुणभेद दिखता नहीं और स्वज्ञेय हुआ उसमें पर्याय का भेद दिखता (नहीं)। फिर भी गुण हैं और पर्यायें भी (हैं)।

क्या कहा? कि गुणों को उड़ा दिया? कि ना। पर्याय को उड़ा दिया? कि ना। यह क्या बात करते हो? हमारे दिमाग में कुछ आता (नहीं)! क्योंकि दिमाग में कचरा

भरा है, कहाँ से आये तुझे? आहाहा! यह कुटुंब मेरा, लक्ष्मी मेरी, मोटर मेरी। आहाहा! बैंक बेलेन्स मेरा, कारखाना मेरा, मेरा-मेरा और मरता है। समझे विमल? आहाहा! अब मरने जैसा नहीं है। कारखाने का मालिक कौन है? पुद्गल है। आहाहा! विमल भी नहीं है और धीरूभाई भी नहीं हैं। अनुपभाई आये हैं या नहीं आये? नहीं आये। अरे! इन दस दिन व्यापार भी छोड़ता नहीं कोई, बोलो। देखो तो सही!

बहुत वर्ष पहले की बात करता हूँ, बहुत वर्ष पहले हों! बहुत वर्ष हो गये, सत्तर वर्ष पहले की बात करता हूँ। स्थानकवासी और श्वेतांबर, वहाँ तो हम जहाँ रहते थे वहाँ तो कोई दिगंबर तो था ही नहीं। आठ दिन दुकान बंद कर देते भाई। अजमेरा भाई, दुकान को ताला। कि बनियों का यह पर्व चल रहा है, अब आठ दिन वे मिलेंगे नहीं, ऐसी तो छाप थी। आहाहा! भले ही बिना समझे, कुछ समझे तो नहीं, तो भी, इसप्रकार, धर्म का पर्व तो है न? उस अपेक्षा से बात करता हूँ, हों! वह सच था ऐसा मुझे नहीं कहना- लेना है, दृष्टांत तो एकदेश होता है।

ऐसे यहाँ कहने का आशय यह है कि अरे! दस दिन भी जो निवृत्ति न मिले। आहाहा! अरे! चौबीस घंटे निवृत्ति न मिले तो दो तीन घंटे तो निवृत्ति निकालनी चाहिये या नहीं? आहाहा! यहाँ भी बहुत लोग प्रवृत्तिवाले हैं, जामनगर के, फिर भी आते हैं, हें! उसमें क्या? आत्मा की बात है न यह तो। बारह महीने में (एक बार) दस दिन आते हैं ! महीने-महीने दस दिन आयें तो तो? ये तो हर महीने आते हैं, इस महीने नहीं जायेंगे तो अगले महीने जायेंगे धर्म करने। हर महीने नहीं आते दस दिन। मधुरता से कह देना चाहिये सब। हें? यह तो हित के लिये है न? आहाहा!

जाननहार जानने में आता है। फिर से आया हों! है वह आता है, वह ही आनेवाला है, दूसरा कुछ आनेवाला (नहीं है)। आहाहा! दूसरा सब गया अब। **जाननहार जानने में आता है।** आहाहा! उसमें अनुभव होता है, भाई! यह साधारण वाक्य नहीं है। बस, **जाननहार जानने में आता है** इतने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो जाता है? इतना आसान है? भाई! स्वभाव आसान होता है, विभाव मुश्किल होता है। पानी को ऊपर चढ़ाना हो तो मशीन चाहिये और पानी ऐसे डालो तो नीचे ढालवाले मार्ग में मशीन चाहिये कोई? वह ढल जाता है अपनेआप। आहाहा! स्वभाव आसान होता है, विभाव मुश्किल है। जाननहार जानने में आता है। आहाहा! आगम पुकार करते हैं, संत कहते हैं। गुरुदेव कह गये हैं कि तुझे प्रति समय जाननहार जानने में

आता है। (समयसार की) १७-१८ वीं गाथा ऐसा कहती है कि सभी को आबालगोपाल सभी को जाननहार जानने में आता है, अनुभव में आता है अर्थात् जाननहार जानने में आता है। यह तो समयसार का कथन है। आहाहा! जाननहार 'जानने में आयेगा' ऐसा नहीं है। त्रम्बकभाई! जानने में आ रहा है? आहाहा! तो फिर बिपिनभाई जानने में नहीं आयेंगे, अशोकभाई जानने में नहीं आयेंगे। क्या होगा?

मुमुक्षु: इन्द्रियज्ञान (उसे जानेगा)।

पू. लालचंदभाई: वाह! बहुत अच्छा! वाह रे वाह! देखो यह चमत्कार। देखो ये दस (समयसार ३७३-३८२) गाथा का चमत्कार आया हों! आहाहा! सही जवाब दिया। मेरा काम उसे जानना नहीं है, इन्द्रियज्ञान उसे जानेगा। मैं तो मुझे, जाननहार को जानता हूँ। बस! आहाहा! कुंदकुंद की वाणी बांझ नहीं जाती। दो हजार वर्ष पहले लिखा है न? वह वाणी छूटे कुंदकुंद की और कोई ना समझे, ऐसा होता नहीं। कम-ज्यादा सभी समझते हैं, समझते हैं और समझते हैं। आहाहा! ये विपिनभाई और ये रमणीकभाई के भाई और ये अशोकभाई के पुत्र, उनके पुत्र खीमचंदभाई के, उनके पुत्र कहलाते हैं न? आहाहा! वह तो इन्द्रियज्ञान जानेगा। आहाहा! मैं उसे नहीं जानता क्योंकि इन्द्रियज्ञान मेरा नहीं है। ये खीमचंदभाई बैठे हैं वह मुझे ख्याल नहीं है। बैठे हैं वहाँ खीमचंदभाई? आहाहा! यह अशोक तुम्हें जानने में आता है या नहीं?

मुमुक्षु: (ना, जानने में नहीं आता)।

पू. लालचंदभाई: तो उसे कौन जानेगा?

मुमुक्षु: इन्द्रियज्ञान।

पू. लालचंदभाई: इन्द्रियज्ञान! तो फिर इन्द्रियज्ञान उसे जानेगा, तो मैं उसे नहीं जानता, मुझे जाननहार जानने में आता है, तो यह पुत्र मेरा है ऐसी ममता छूट जायेगी! आहाहा! ममता का अभाव हो जायेगा, अशोकभाई अशोकभाई में रहेगा, मेरा आत्मा मेरा आत्मा में रहेगा और मेरा काम हो जायेगा। आहाहा! हिल जाते हैं। अब हिलते हैं जरा-जरा। हें?

मुमुक्षु: ममता गई तो समता आ जाती है?

पू. लालचंदभाई: हाँ, ममता गई तो समता ही आयेगी न? दूसरा क्या आयेगा? वीतरागी समता हों! आहाहा! **जाननहार जानने में आता है।** फिर से आया। यह ही आनेवाला है। अब पर जानने में आता है, वह आयेगा?

मुमुक्षु: नहीं आयेगा।

पू. लालचंदभाई: नहीं आयेगा। लेकिन पर तो रहेगा। तो पर को जाननेवाला कौन रहेगा?

मुमुक्षु: इन्द्रियज्ञान।

पू. लालचंदभाई: इन्द्रियज्ञान। उसके खाते में डाल दो न? वह उसका काम है।

मुमुक्षु: बहुत drilling (ड्रीलिंग, अभ्यास) कराते हैं। ड्रीलिंग बहुत कराते हैं ये।

पू. लालचंदभाई: ड्रीलिंग।

मुमुक्षु: बारंबार- बारंबार, बारंबार- बारंबार, वृद्धिकरण।

पू. लालचंदभाई: बारंबार-बारंबार। Hammering (हेमरिंग)। हेमरिंग - सिर में हथोड़ा मारा करते हैं, हथोड़ा मारते हैं, सही से हथोड़ा मारते हैं न, तब जाकर तो थोड़ा नरम पड़ता है। हाँ! यह कहीं कम (नहीं है)। इसकी तिरछाई, गलत होशियारी कहीं कम (नहीं है)। वह बहादुर का पुत्र है, मैं पर को जानता हूँ, (क्या) मैं नहीं जानता? उसके सामने जब बहुत हथोड़े मारते हैं न, तब जरा, जरा नरम पड़ता है। कोई समझो या कोई ना समझो! क्योंकि उन्हें यह पता है कि यहाँ पाठ को पक्का नहीं करेगा तो बाहर निकलकर दूसरे गलत रास्ते पर चढ़ जायेगा।

जाननहार जानने में आता है। और जब मुझे जाननहार जानने में आता है ऐसा आता है तब, 'निश्चयनय' से जाननहार जानने में आता है ऐसा विचार भी नहीं आता। ऐसा विकल्प अब नहीं आता। जाननहार ज्ञात होता है ऐसा विचार करता है, तब निश्चयनय से जाननहार ज्ञात होता है, ऐसा निश्चयनय का विचार छूट जायेगा, आयेगा ही नहीं। आहाहा! यह प्रयोग की बात चलती है। आहाहा! यह बात 'जाननहार जानने में आता है' यह धारणा की बात नहीं है। हरकिशनभाई, यह कपड़ा जानने में नहीं आता वरन् जाननहार जानने में आता है, तो फिर कपड़े को कौन जानेगा हरकिशनभाई?

मुमुक्षु: इन्द्रियज्ञान।

पू. लालचंदभाई: इन्द्रियज्ञान। अच्छा! दर्शना को कौन जानेगा? इन्द्रियज्ञान। तुम्हारी पुत्री तो है न? है या नहीं?

मुमुक्षु: नहीं है।

पू. लालचंदभाई: नहीं! कहाँ गई दर्शना? बैठी है न? यह रही। तुम्हारी पुत्री नहीं है? यह क्या लगाकर रखा है?

मुमुक्षु: आपने यह क्या लगाकर रखा है?

(पूज्य लालचंदभाई और सभी हँसे)।

पू. लालचंदभाई: यह तो परमात्मा होने का पाठ चलता है, भाई! आहाहा! किसकी पुत्री और किसका पिता? अरे! देह का धनी भी आत्मा नहीं है तो कुटुंब कबीले की कहाँ बात करनी? मेरापना तो गया परंतु जानना भी गया। करना गया और जानना गया और जाननहार रह गया। और जाननहार जानने में आ गया पश्चात, पश्चात हों! वे दो जाते हैं उसके बाद जाननहार हूँ उसमें आता है, तो जाननहार ही ज्ञात होता है। मैं जाननहार हूँ और जाननहार ज्ञात होता है दूसरा कुछ ज्ञात नहीं होता। यह क्या लगाकर रखा है?

मुमुक्षु: सब कचरा निकल गया। Brain wash (ब्रैन वॉश, डिमाग साफ़) हो गया।

पू. लालचंदभाई: ब्रैन वॉश हो गया, कचरा निकल गया, बस!

ऐसा विचार भी नहीं आता, नय का विचार। जाननहार ज्ञात होता है, वह तो स्वभाव से जाननहार ज्ञात हुआ ही करता है ऐसा ही मेरा स्वरूप है। बस!

स्वभाव से ही जाननहार जानने में आ रहा है। स्वभाव से ही जाननहार अर्थात् ज्ञायक, **जानने में** अर्थात् ज्ञान में **आ रहा है तो स्वभाव ही लक्ष में आता है**। आहाहा! विभाव कोई लक्ष में आता (नहीं)। **और जब स्वभाव लक्ष में आता है तब नय के विकल्प छूट जाते हैं**, अर्थात् विकल्प उत्पन्न नहीं होते। **और स्वभाव स्वभावपने अभेद अनुभव में आता है।** आहाहा! दो प्रकार के अभेद एक अभेद होकर जानने में आते हैं। दो प्रकार के अभेद?

मुमुक्षु: एक अभेद।

पू. लालचंदभाई: एक अभेद जाननहार। गिरनार के ऊपर आकाशवाणी हुई थी न? इसने टेप रखा हुआ था जेब में। गिरनार के ऊपर जाते थे, वे लोग चलकर आ रहे थे और मैं डोली में, साथ-साथ सब जा रहे थे। उसमें एक बहन के भजन की टेप चलायी भाई ने, किशोरभाई ने। आहाहा! प्रभु मैं एक... क्या?

मुमुक्षु: जाननहारा।

पू. लालचंदभाई: वह आता है न, प्रभु। ऐसा है न आगे?

मुमुक्षु: प्रभु! मैं ज्ञायकरूप केवल जाननहारा रे।

पू. लालचंदभाई: प्रभु! मैं ज्ञायक हूँ?

मुमुक्षु: ज्ञायकरूप।

पू. लालचंदभाई: ज्ञायकरूप, प्रभु मैं ज्ञायकरूप, केवल एक जाननहारा रे! मैंने तो कहा यह तो आकाशवाणी हुई! ऐसा कहा हों! प्रमोद आ गया।

मुमुक्षु: सहसावन में से आपकी डोली जा रही थी।

पू. लालचंदभाई: हाँ सहसावन में से, ठीक! ये भाई भी साथ थे।

मुमुक्षु: आपका परम प्रताप था।

मुमुक्षु: भाई, टेप भी छोटा था इसलिए जेब में दिखता नहीं।

पू. लालचंदभाई: दिखता नहीं, हाँ। इसलिए कहा यह तो आकाशवाणी आयी है यह तो। हें! आहाहा! आकाशवाणी है भाई, आकाशवाणी अर्थात् दिव्यध्वनि का सार है 'जाननहार जानने में आता है'। यह साधारण बात नहीं है, इसकी कीमत करना सभी। यहाँ से लौटकर जाओगे न गाँव में, तो भूलना नहीं, 'जाननहार जानने में आता है' दस बार तो याद करना।

वह कहाँ गया आशीष? नहीं आया? वह फैक्टरी में पड़ा है। यह आया-आया, आया है, आया है। उसका जन्म दिन था, परसों या कल? परसों? परसों, जन्मदिन था। फिर आया सुबह को। आये न पैर छूने? दस बार यह बोल, मैंने कहा, दस बार बुलवाया और रोज बोलना है फिर, ऐसा। आज ही बोलने के लिए नहीं है, रोज। कि भाई, रोज बोलूँगा हों! आहाहा! यहाँ आ, तू यहाँ आ। तुझे क्या lesson (लेसन, शिक्षण) दिया मुझे तो कह। मैं तो परीक्षा कभी लेता नहीं हूं, तो भी आज ले लूँ। बोलो सबके बीच में बोलो।

मुमुक्षु: होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है।

पू. लालचंदभाई: जानने में आता है।

मुमुक्षु: जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

पू. लालचंदभाई: यह एक मंत्र दिया। एक-एक वाक्य दस बार बोलना, रोज हों! रोज बोलता है?

मुमुक्षु: हाँ भाई!

पू. लालचंदभाई: सब होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है। कोई किसी का कर्ता नहीं है, सब होने योग्य होता है। जड़-चेतन के परिणाम, अंदर के और बाहर के, सब होने योग्य होते हैं। कोई किसी का कर्ता - हर्ता नहीं है, उसके समय में उसके काल में परिणाम होने योग्य हुआ ही करते हैं। आहाहा! आत्मा उसका कर्ता नहीं है। आत्मा उसका व्यवहार से ज्ञाता है या नहीं? व्यवहार से ज्ञाता अर्थात् क्या? कि मन उसे जानता है और कहा जाता है कि आत्मा उसे जानता है, उसका नाम 'व्यवहार से' कहा जाता है। आहाहा! निर्मल पर्याय का आत्मा व्यवहार से कर्ता है, व्यवहार से कर्ता अर्थात् क्या? कर्ता नहीं है, कर्ता पर्याय की पर्याय है और उपचार आया आत्मा पर, कि निर्मल पर्याय को, सम्यग्दर्शन को आत्मा करता है। उपचार के कथन हैं सभी।

जब गोदिकाजी ने सोलह लाख (रूपया) खर्च किये, मंदिर की प्रतिष्ठा के समय। सोलह लाख उस समय के। कितने वर्ष हुये होंगे? बहुत वर्ष हो गये। तीसेक वर्ष हुये होंगे। तीसेक हो गये होंगे। उस समय गुरुदेव वहाँ पधारे थे। वहाँ मुमुक्षु भी बहुत गये थे। मैं भी गया था। उसमें गुरुदेव ने प्रवचन में एकबार बात की, कि निर्मल पर्याय, शुद्ध पर्याय, सम्यग्दर्शन की पर्याय का आत्मा उपचार से भी कर्ता नहीं है, व्यवहार से भी कर्ता नहीं है। आहाहा! धड़ाका किया। उपचार से कर्ता है, वह सविकल्प दशा है। पश्चात् निर्विकल्प ध्यान में जाने के लिये उपचार से भी निर्मल पर्याय का कर्ता नहीं है, उसमें शुद्धोपयोग की दशा आ जाती है। आहाहा!

जब धुन चढ़ती है न, वह पाँच प्रतिक्रमण की गाथा में है (नियमसार गाथा ७७-८१)। निर्मल पर्याय का भी आत्मा उपचार से कर्ता नहीं है। आहाहा! कोई अपूर्व बातें बाहर आ गई हैं। तीस वर्ष पहले की बात है। बहुत प्रमोद आ गया। निवास स्थान पर गया जहाँ गुरुदेव ठहरे थे, प्रमोद जाहिर करने। आहाहा! आज गुरुदेव आपने यह क्या गजब वाक्य कह दिया, 'अमृततुल्य' वाक्य। सब बैठे थे और सभी बातें ऐसी व्यवहार की चल रही थी इसलिए फिर उठकर चला गया। आहाहा! जयपुर की बात है, तीसेक वर्ष पहले।

निर्मल पर्याय का व्यवहारनय से (भी) कर्ता नहीं है। कर्तापना ही नहीं है फिर व्यवहार या निश्चय का प्रश्न (नहीं है)। स्वयं होता है उसे व्यवहार-निश्चय की क्या

जरूरत? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम निर्विकारी वीतरागी, अकषायी परिणाम होने योग्य होते हैं। अरे! होने योग्य होते हैं उन्हें जानता नहीं। होने योग्य होते हैं, ऐसा जानकर 'जाननहार को जानता हूँ'। कर्ताबुद्धि गई और होने योग्य होता है उसकी ज्ञाताबुद्धि भी गई और साक्षात् ज्ञायक का ज्ञाता हो गया। ऐसी सब बातें बहुत बाहर आयी हैं। 'जाननहार जानने में आता है' उसमें काम होता है।

मुमुक्षु: सम्यग्ज्ञान को भी शांत करके केवलज्ञान हो गया।

पू. लालचंदभाई: क्या कहा उसने समझ में आया? उपचार से कर्ता है, (ऐसा) ज्ञानी कहते हैं तब उन्हें सविकल्प दशा होती है। 'उपचार से कर्ता नहीं है' वहाँ निर्विकल्प ध्यान में चले जाते हैं और श्रेणी हो तो केवलज्ञान प्रगट (हो जाता है)। केवलज्ञान का कक्का है यह। 'उपचार से कर्ता नहीं है', यह केवलज्ञान का कक्का है। आहाहा! खीमचंदभाई, तुम्हारा पुत्र बोलता है। केवलज्ञान का कक्का है यह। आत्मा है न, उसमें क्या? आहाहा! यह देह कहाँ है आत्मा का।

मुमुक्षु: राजकोट में आपने नये वर्ष के दिन भी कहा था कि यह सीमंधर परमात्मा का ...

पू. लालचंदभाई: वो कुछ नहीं। आहाहा! होने योग्य होता है बस! संतों की वाणी है और जाननहार जानने में आता है बस!

अब आगे, **'समय' की व्याख्या की है कि- जानना और (आत्मा को) जाननेरूप परिणमना... स्वभाव से ही है**, यह समयसार की दूसरी गाथा है। उसमें समय की व्याख्या की है आचार्य भगवान ने, कि युगपद एकसाथ जानना और परिणमना वह आत्मा का मूल स्वभाव है। उसमें कर्म की अपेक्षा नहीं है। जानना और जाननेरूप परिणमना यह समय की व्याख्या की। फिर उसमें स्वसमय और परसमय हो जाता है कोई जीव, वह अलग बात है।

और (आत्मा को) जाननेरूप परिणमना... स्वभाव से ही है, अनादि अनंत, कोई नय लागु उसमें **नहीं पड़ती।** आहाहा! **यदि नय लगायेगा तो स्वभाव से दूर हो जायेगा**, निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है, स्वभाव से दूर हो गया। उसे ऐसा लगता है कि मैं आगे बढ़ा लेकिन कुछ आगे नहीं बढ़ा है, विकल्प की जाल में अटका है वह। **नय लागु नहीं पड़ता। यदि नय लगायेगा तो स्वभाव से दूर हो जायेगा।** विकल्प उठेगा तो निर्विकल्प शांति आयेगी (नहीं)। **और यदि**

स्वभाव से देखेगा तो नय दूर हो जायेगी। बड़े अक्षर हैं, bold type (बोल्ड टाइप, मोटा टाइप), फिर से।

यदि नय लगायेगा तो स्वभाव से दूर हो जायेगा और यदि स्वभाव से देखेगा तो नय दूर हो जायेंगे। यह नय से दूर होने की बात चल रही है। नयातिक्रांत होने की बात चल रही है। **नय से समझने की तुझे आदत पड़ गई है, इसीलिये विकल्प उत्पन्न हुये बिना नहीं रहते।** इस नय से ऐसा और इस नय से ऐसा और इस नय से ऐसा, सद्भूत उपचरित, अनुपचरित, आहाहा! नयों के चक्कर में चढ़कर आयुष्य पूरा हो जाता है और अनुभव होता नहीं। तो क्या? नयों का कुछ फल तो आया नहीं? शास्त्रों के पढ़ने का फल तो वीतरागता होनी चाहिये न? आहाहा! नय तो राग है, नय का राग तो दुःखदायक है, आकुलता उत्पन्न करता है।

ओहो! तीन से चार, हो गया एक घंटा! पता ही नहीं चला। कोई बोला भी नहीं। सातवाँ पृष्ठ है।

मुमुक्षु: हम किसलिए बोलें ?

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट ८-१३
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट
तारीख: ०१-१९९०

प्रवचन LA ०६६

इसका अर्थ आहाहा! परिणाम का कर्ता पर्याय है, मैं कर्ता नहीं हूँ। और होने योग्य होता है उसे जानता नहीं, जाननहार को जानता हूँ। आहाहा! उसमें नियम से सम्यग्दर्शन होता है ऐसा तेरहवीं गाथा में (आया), यह ही भाव आया है यहाँ। copy-to-copy (कॉपी-टु-कॉपी, प्रति-से-प्रति) है, true copy (ट्रू कॉपी, वास्तविक प्रति). भूतार्थनय से नौ को जान तू! आहाहा! होने योग्य होता है ऐसा जाने, वह उसे जानने नहीं रुकता, ऐसा।

मुमुक्षु: नहीं रुकता। जाननहार को जानने में आ जाता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ), होने योग्य होता है उसे जानने के लिये रुके तो यह जाननहार जानने में नहीं आता। तेरहवीं गाथा सम्यग्दर्शन की, बोलो! एक को माने तो भी सम्यग्दर्शन, नौ को भूतार्थनय से जाने तो भी सम्यग्दर्शन, बोलो! कि नौ को जानने से सम्यग्दर्शन होता है? परंतु आगे भूतार्थ शब्द है, वह ध्यान रखना। नौ के लक्ष से नहीं होता, नौ कर्म होवें तो भी नहीं होता, नौ ज्ञेय होवें तो भी नहीं होता। एक भगवान आत्मा को जान तू। आहाहा! कर्ताबुद्धि गई और ज्ञाताबुद्धि गई और स्वरूप में आ गया।

होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है। आहाहा! दिव्यध्वनि में आया था, बोलो! बहुतों ने प्राप्त किया होगा यह (सुनकर)। आहाहा! जिससे साध्य की सिद्धि हो वह परमार्थ है, उसमें साक्षात् अनुभव होता है। दर्शन होते हैं भगवान के इतनी बात सच्ची है, बाकी सब समझने का बहुत आता है। आहाहा! कौन सा पेज है?

मुमुक्षु: ८ वाँ पेज है, अंतिम पैराग्राफ।

पू. लालचंदभाई: ८ वाँ है। हो गया समय, लो। राह देख रहा था १० की, १० बजने की राह देख रहा था।

(मंगलाचरण)

पू. लालचंदभाई: बोलो बहन।

मुमुक्षु: लास्ट पैराग्राफ था।

पू. लालचंदभाई: अंतिम पैराग्राफ। **ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का।**

मुमुक्षु: **'ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का, ज्ञायक अहो ज्ञायक तथा' बस पर को जानने का पक्ष था वह छूट गया। ज्ञायक पर को नहीं जानता इतना कहा - ज्ञायक ज्ञायक को जानता है ऐसा निश्चयनय है -ऐसा नहीं लिया।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! मूल गाथा में इतना लिया, ऐसा। कुंदकुंद भगवान ने इतना ही लिया कि **'ज्ञायक नहीं अन्य का'** अर्थात् पर को नहीं जानता, ज्ञायक ज्ञायक को जानता है वह निकाल दिया। टीकाकार यह लेंगे, (परंतु) मूल में यह नहीं है। मूल में असद्भूत व्यवहार निकालकर सीधा स्वभाव में ले गये। और टीकाकार ने असद्भूत व्यवहार का निषेध करके सद्भूत में लाये, उससे साध्य की कुछ सिद्धि नहीं है- ऐसा कहकर ज्ञायक ज्ञायक में ले गये। एक stage (स्टेज, कदम)(अधिक जोड़ा), टीका में हमेशा थोड़ा ज्यादा होता है। मूल में तो इतना ही है।

मुमुक्षु: **'ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का, ज्ञायक अहो ज्ञायक** ही **है' बस पर को जानने का पक्ष था वह छूट गया। ज्ञायक पर को नहीं जानता इतना कहा - ज्ञायक ज्ञायक को जानता है ऐसा निश्चयनय है -ऐसा नहीं लिया। निश्चयनय से ज्ञायक ज्ञायक को जानता है ऐसा नहीं, परंतु ज्ञायक तो ज्ञायक** ही **है, बस। ज्ञान की पर्याय स्वभाव से ही आत्मा को जाना करती है। उसमें नय की कोई जरूरत ही नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: जानेगी ऐसा नहीं, जाना करती है, continue (कंटीन्यू, निरंतर जारी) है, ऐसा। जैसे इसमें अनादि-अनंत है, ऐसे राग को जाना करेगी अनादि-अनंत, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह विभाव है और यह तो स्वभाव है। अनादि-अनंत ऐसा कहते हैं, आबालगोपाल सभी को, सदाकाल कहा न? सदाकाल अर्थात् तीनोंकाल, अनुभव में आता है सभी को, निगोद में भी आता है। **बस। ज्ञान की पर्याय स्वभाव से ही आत्मा को जाना करती है।**

ज्ञान की पर्याय स्वभाव से ही आत्मा को जाना करती है। निश्चयनय से यदि आत्मा को जानती है, निश्चयनय से आत्मा को जानती है तो व्यवहारनय से पर को जानती है। स्व-पर दोनों आ जाते हैं न? निश्चयनय से स्व को जानता है तो नय तो सापेक्ष ही होते हैं, निरपेक्ष नय तो मिथ्यानय। निश्चयनय से आत्मा को जानता है तो व्यवहारनय से पर को जानता है (ऐसा) आयेगा। अतः निश्चयनय नहीं, परंतु स्वभाव से ही ज्ञान आत्मा को जाना करता है। प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध किया ही करता है, अनादि-अनंत, ऐसा। **बस। ज्ञान की पर्याय स्वभाव से ही आत्मा को जाना करती है।**

मुमुक्षु:**उसमें नय की कोई जरूरत ही नहीं है। आबालगोपाल सभी को आत्मा सदाकाल अनुभव में आ रहा है। 'सदाकाल' अर्थात् स्वभाव से ही ज्ञान आत्मा को जान रहा है। परंतु व्यवहार से तो पर को जानता है न? अरे! पर का जानना स्वभाव में ही नहीं है। 'ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का' -खत्म हो गई बात।**

पू. लालचंदभाई: खड़िया दीवार को सफेद करती ही नहीं। परंतु व्यवहारनय से करती है या नहीं? परंतु व्यवहारनय से करती है अर्थात् क्या?

मुमुक्षु: कि ऐसा नहीं है।

पू. लालचंदभाई: ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: अर्थात् कि करती ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! संयोग देखकर व्यवहारनय मिथ्या उपदेश देता है। व्यवहारनय मिथ्या उपदेश का देनेवाला है (इसलिये) उसके ऊपर दृष्टि रखनेवाला मिथ्यादृष्टि है। इसलिये मिथ्यात्व है, ऐसा है न? शब्द क्या हैं?

मुमुक्षु: व्यवहारनय नियम से मिथ्या उपदेश का देनेवाला है इसलिये मिथ्या है।

पू. लालचंदभाई: देनेवाला है इसलिये मिथ्या है और उसके ऊपर दृष्टि रखनेवाला मिथ्यादृष्टि है, ऐसा। आहाहा!

मुमुक्षु: **पर का जानना स्वभाव में ही नहीं है। 'ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का' - समाप्त हो गई बात। नयातीत में जैसे अनुभव आता है, वैसे ही नयातीत में ही श्रेणी आती है।**

पू. लालचंदभाई: नय का सहारा नहीं है अनुभव में, वैसे ही श्रेणी में भी नहीं

है। नय के विकल्प कहाँ हैं?

मुमुक्षु: **नय से जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं होता वहाँ नय से चारित्र तो कैसे आये? इसलिये ज्ञानी भी स्थिर हो जाते हैं। किसी को ही समझाने का या लिखने का विकल्प उठता है। समर्थ आचार्यों को भी समझाने के लिये नय का प्रयोग करना पड़ता है। जो उन्हें भी खटकता है। क्योंकि नय से स्वभाव प्रसिद्ध ही नहीं होता। परंतु ज्ञान से स्वभाव प्रसिद्ध होता है। वास्तव में दूसरों को समझाने के लिये नय का प्रयोग करना पड़ता है। इसलिये श्री पूज्यपाद स्वामी ने कहा कि दूसरों को समझाना पागलपन है। समझाना और सुनना दोनों पागलपन हैं।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! एक बार मुंबई में सोगानीजी स्वाध्याय में से निकले और आये, भाई के, क्या नाम? जुगराजजी, जुगराजजी के मकान पर हम सब आये। ऐसी एक तीखी तलवार जैसी बात कही 'शुद्धोपयोग में ही सम्यग्दर्शन, शुद्धोपयोग में ही चारित्र'। परिणति से चारित्र प्रगट नहीं होता, गुणस्थान की वृद्धि नहीं होती। आगे।

मुमुक्षु: **नय के प्रयोग में विकल्प ही उत्पन्न होता है। स्वभाव के समीप जाता है, तो विकल्प उठते ही नहीं।**

पू. लालचंदभाई: मन पावे विश्राम।

मुमुक्षु: **निश्चयनय मात्र तेरे स्वभाव की तरफ इशारा करता है कि ऐसा तेरा स्वरूप है। पश्चात् इस नय को तू छोड़ दे और स्वभाव में चला जा- दृष्टांत:- दूज का चाँद उगता है वह किसी को दिखता है और किसी को नहीं दिखता।** किसी को दिखता है और किसी को दिखता नहीं। **अब जो चाँद को देखनावाला**।

पू. लालचंदभाई: जो उसे देखता है वह अब दूसरों को दिखाता है। किसी को भी दिखता न हो तो दूसरा दिखानेवाला नहीं हो सकता। किसी को दिखाई देता है और किसी को दिखाई नहीं देता इसलिये देखनेवाला दूसरे को दिखाता है, ऐसा है। यह संधि अनादि-अनंत है, गुरु-शिष्य की। कि कोई चाँद को देखता ही नहीं, ऐसा नहीं होता किसी भी काल में।

मुमुक्षु: **दूज का चाँद उगता है वह किसी को दिखता है और किसी को नहीं दिखता। अब जो चाँद को देखनेवाला है वह दूसरों को चाँद दिखाने के**

लिये वृक्ष के माध्यम द्वारा प्रयत्न करता है। यह जो वृक्ष है न, इसकी यह जो वह अंतिम डाली दिखती है न.. ऊपर की अंतिम उसको तू देख और फिर उसकी लाइन में ही सीधा ऊपर देख तो तुझे चाँद दिखेगा। अब वह व्यक्ति तो डाली को ही चिपक गया (और) कहता है कि मुझे चाँद नहीं दिखता।

पू. लालचंदभाई: ये गुरुदेव के शिष्य, यह अपने गुरुदेव के शिष्यों का यह ही प्रश्न है कि हमें अनुभव नहीं होता। क्यों अनुभव नहीं होता? वह यह, नयों के विकल्प में अटक गया है।

मुमुक्षु: **चाँद नहीं दिखता। अरे! तुझे मैंने डाली के द्वारा, डाली को छोड़कर, चाँद को देखने के लिये कहा था। तू तो डाली को ही चिपक गया तो चाँद कैसे दिखेगा? उसे चाँद नहीं ही दिखता। ऐसे नय के द्वारा स्वभाव का अनुमान मात्र कराते हैं,** इसप्रकार नय के द्वारा स्वभाव का अनुमान मात्र कराते हैं, **तो वह तो नय से ही चिपक गया कि-मैं निश्चयनय से अकर्ता हूँ-मैं निश्चयनय से ज्ञाता हूँ -निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है। नय तो डाली है। जो यहाँ-वहाँ देखता था उसे दिशासूचन करने के लिये डाली के द्वारा चाँद को देखने के लिये कहा था-**

पू. लालचंदभाई: यह बात आठवें कलश में भी ली है। 'भेदबुद्धि करते हुए जीववस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है' (कलश टीका, कलश ८)। भेदबुद्धि कर्ता, 'उन्नियमानं' और ('उद्योतमानम्') दो शब्द हैं न?

मुमुक्षु: 'उद्योतमानम्'।

पू. लालचंदभाई: 'उद्योतमानम्' पहला क्या शब्द है?

मुमुक्षु: 'उन्नियमानं'।

पू. लालचंदभाई: 'उन्नियमानं' वह परोक्ष? 'भेदबुद्धि करते हुए जीववस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है'। आहाहा! वह परोक्ष है। प्रत्यक्ष तो सीधा आत्मा को जानता है, फिर नय वहाँ रहते नहीं। नय अनुमान तक, आँगन तक ले जाते हैं, वह बराबर ही है, परंतु निश्चयनय। व्यवहारनय तो आँगन तक नहीं ले जाता क्योंकि अन्यथा कथन करता है। निश्चयनय कथन सच्चा करता है। दोनों नयों में बड़ा अंतर है। यह एक बात समझने जैसी है।

व्यवहारनय दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है, तद्दन झूठ। १०० प्रतिशत

झूठ बोलता है व्यवहारनय। जबकि निश्चयनय प्रामाणिक है, जैसा आत्मा का स्वरूप है वैसा वर्णन करता है। कि आत्मा ज्ञाता है? कि हाँ ज्ञाता है। अकर्ता? कि (हाँ) अकर्ता है। अभोक्ता? कि (हाँ) अभोक्ता है। नित्य-निरावरण है? कि (हाँ) निरावरण है। परिपूर्ण है, मुक्त है? (हाँ) मुक्त है।

निश्चयनय कथन यथार्थ करता है। व्यवहारनय कथन ही विपरीत करता है। इन कथन के अंतर को भी जीव समझ नहीं सकता। अनुभव अलग, पक्ष अलग, वह तो कहीं का कहीं, परंतु अभी कथन की पद्धति के दो प्रकार हैं, एक निश्चयनय और एक व्यवहारनय। व्यवहारनय तो अन्यथा ही कथन करता है। आहाहा! निश्चयनय कथन सत्य करता है। इसलिये पञ्चाध्यायी में कहा कि निश्चयनय पर दृष्टि रखनेवाला ही सम्यग्दृष्टि है (श्री पञ्चाध्यायी, पूर्वार्ध गाथा ६२९-६३०)। जाओ, कह दिया! समझ गये? क्योंकि उसका कथन यथार्थ है, सम्यक् है। ये जो दो गाथा ली हैं न व्यवहार और निश्चय की? उसमें निश्चय की बात की कि निश्चय का कथन यथार्थ, सत्य है। ऐसे इन दो कथनों में एक कथन झूठा और एक कथन सच्चा, तब तो अभी नय में आया कहलाता है। मीठाभाई! यह कोई साधारण बात नहीं है यह! यह जो मैं बात करता हूँ वह साधारण नहीं है। व्यवहारनय १०० प्रतिशत मिथ्या कथन करता है। दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है। आहाहा!

टोडरमल साहेब ने लिखा, कि व्यवहारनय का जितना निरूपण हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना। आहाहा! निश्चयनय द्वारा जो निरूपण करने में आया हो वह सत्यार्थ है ऐसा मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना (मोक्ष मगर प्रकाशक, अधिकार ७, पेज २६२)। आहाहा! स्वपर का श्रद्धान वह सम्यक् है, मोक्षमार्ग प्रकाशक में आता है! स्वपर का श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन है। उसका स्पष्टीकरण है, नियमसार में, पाँचवीं गाथा में। कि स्वपर का श्रद्धान वह व्यवहार है - अंतःतत्त्व और (बहिर) नौ तत्त्व, दोनों का श्रद्धान व्यवहार (है)। व्यवहार है अर्थात् झूठा, वह श्रद्धान करने जैसा नहीं है। आहाहा! व्यवहार झूठा न लगे तब तक तो निश्चय सच्चा नहीं लगता! आगे।

मुमुक्षु: **व्यवहारनय के द्वारा तो अनुमान होता ही नहीं -उसकी तो दिशा ही विपरीत है।**

पू. लालचंदभाई: लो, देखा? वह ही आया, वह ही आया। आहाहा! व्यवहार

द्वारा परमार्थ का प्रतिपादन करने में आता है ऐसा समयसार में आया। देवसेन आचार्य ने कहा कि निश्चयनय से ही परमार्थ का प्रतिपादन होता है। हें? आहाहा! परंतु (कुंदकुंदाचार्य ने) लिख दिया है कलम, कि व्यवहार द्वारा प्रतिपादन करने में आता है परंतु व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है, लालबत्ती रख दी। ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा, इतने भेद से कथन करने में आता है। (देवसेन आचार्य) कहते हैं कि निश्चयनय द्वारा ही स्वरूप का कथन होता है, व्यवहारनय द्वारा नहीं होता। क्योंकि व्यवहारनय अन्यथा कथन करता है, गुण को द्रव्य कहता है, या पर्याय को द्रव्य कहता है। देवसेन आचार्य कहते हैं मैं गुण को और पर्याय को द्रव्य नहीं कहूँगा, मैं तो द्रव्य को ही द्रव्य कहूँगा। दोनों भावलिंगी संत, हों! आहाहा! जहाँ जहाँ जो जो योग्य है वहाँ वहाँ समझना वैसा। स्थूल बुद्धिवाले के लिये (व्यवहार से) समझाया, अप्रतिबुद्ध को।

वह जो आगे बढ़ गया है उसे कहते हैं वह बात है देखो। **व्यवहारनय द्वारा तो अनुमान होता ही नहीं -उसकी तो दिशा ही विपरीत है।** आहाहा! विपरीत शब्द है। कच्ची है ऐसा नहीं, ... है ऐसा नहीं। वह व्यवहारनय तो अन्यथा कथन करता है न? यह तो शास्त्र का वचन है न? व्यवहारनय अन्यथा कथन करता है, है उससे अलग। आहाहा! **उसकी तो दिशा ही विपरीत है। इसलिये**...

मुमुक्षु: **इसलिये प्रथम निश्चयनय द्वारा स्वभाव का अनुमान कराते हैं।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! यह देवसेन आचार्य आये इसमें। हम तो किसलिये कहते हैं कि यह लालूभाई का नहीं है, देवसेन आचार्य का है ऐसा मेरे कहने का आशय है यह है यहाँ। हाँ वह हाथ में आया न तभ कितने समय तक उसका गुजराती कराना (था)। कोई सटीक न कर सके, ऐसा माल दिखा था उसमें। जो कोई संस्कृत जानता हो न, (उसे कहा) यह मुझे संस्कृत का (गुजराती) कर दो न? कर देवें बिचारे परंतु कुछ (संतोष हो ऐसा नहीं था), माल-माल था अंदर।

मुमुक्षु: पर आपके हाथ में माल-माल ही आता है।

पू. लालचंदभाई: ये दो style (स्टाइल, शैली) यहाँ पर लिए न? वे आचार्य भगवान की मुख्यता से लिये हैं। नहीं तो यह समयसार से अलग पड़े न यह लेखन? इसलिये खुलासा करना पड़ा।

मुमुक्षु: यह देवसेन आचार्य की पद्धति है।

पू. लालचंदभाई: देवसेन आचार्य की (पद्धति)।

मुमुक्षु: निश्चयनय परमार्थ का प्रतिपादक है। वाह!

पू. लालचंदभाई: नयचक्र में, नयचक्र में है।

मुमुक्षु: देवसेन आचार्य की पद्धति अर्थात् कुंदकुंदाचार्य की पद्धति। क्योंकि कुंदकुंदाचार्य को वे कहते हैं प्रभु! आप विदेह से यह न लाते तो हम कैसे प्राप्त करते?

पू. लालचंदभाई: दूसरों को समझाने के लिये दो प्रकार किये, एक व्यवहार और एक निश्चय। हैं दोनों व्यवहार! परंतु एक भेद द्वारा अभेद को समझाता है और एक सीधा अभेद को बताता है, ऐसा है। एक कहता है कि ज्ञान है सो आत्मा, एक कहता है कि ज्ञायक सो आत्मा। दोनों नय के द्वारा समझाते हैं। सुननेवाला भी सविकल्प में और कहनेवाला भी सविकल्प में है।

मुमुक्षु: एक कहता है कि ज्ञान आत्मा को जानता है, दूसरा कहता है कि आत्मा आत्मा को जानता है।

पू. लालचंदभाई: जानता है, बस। वह पद्धति।

मुमुक्षु: एक भेद द्वारा और एक अभेद से।

पू. लालचंदभाई: अभेद से, बस। इसलिए खुलासा करना पड़ा यहाँ पर जरा। आहाहा! **इसलिये प्रथम निश्चयनय द्वारा स्वभाव का अनुमान कराते हैं।**

मुमुक्षु: **कि तू निश्चयनय से अकर्ता ही है। फिर निश्चयनय को छोड़ दे। 'मैं स्वभाव से ही अकर्ता हूँ-'।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! बस यह! यहाँ अनुभव है, यहाँ अनुभव है। आहाहा!

मुमुक्षु: **'मैं तो स्वभाव से ही अकर्ता हूँ-' तो अकर्ता का विकल्प छूट जाता है और अनुभव होता है।** आहाहा! परम सत्य बात है।

पू. लालचंदभाई: अकर्ता का विकल्प छूटता है। 'मैं अकर्ता हूँ' वह बात सच्ची है, विकल्प सच्चा था। जो विकल्प में आया ऐसा स्वरूप विकल्प के द्वारा लिया उसने - कि 'मैं अकर्ता हूँ'। 'मैं अकर्ता हूँ' ऐसे विकल्प में विकल्प का कर्ता बन गया, ज्ञान कर्म नहीं हुआ। कल दोपहर को यही चर्चा हुई थी। 'मैं अकर्ता हूँ' यह कथन सच्चा है। 'मैं कर्ता हूँ' वह तो कथन ही झूठा है, विपरीत। क्योंकि ऐसा आत्मा का स्वरूप

ही नहीं है। किन्तु 'अकर्ता है' वह तो स्वरूप है उसका। परंतु 'मैं अकर्ता हूँ' ऐसा जो विकल्प उठता है, तब वह विकल्प उसका कर्म बन गया, ज्ञान कर्म नहीं हुआ। अनुभव नहीं हुआ उसमें। आहाहा! वह कल दोपहर हमारी बात तो पाँच ही मिनट हुई थी दोनों की। वैसे दूसरी बहुत सी बात हुई किन्तु इससे संबंधित, इस पोइंट के ऊपर ही। आहाहा!

मुमुक्षु: विकल्प सच्चा, विकल्प की उपस्थिति अनुभव में बाधक।

पू. लालचंदभाई: बाधक बस! कुछ हाथ में नहीं आया। असल में तो वह आगम की भाषा है या वह आत्मा की भाषा है? वह विचारने जैसा है। वह अंदर से उसे आया है या आगम कहता है अकर्ता इसलिए अकर्ता है? वह तो स्वयं को ही पता चलता है, दूसरे को पता नहीं चलता।

मुमुक्षु: **'मैं तो स्वभाव से ही अकर्ता हूँ-' तो अकर्ता का विकल्प छूट जाता है और अनुभव होता है।**

पू. लालचंदभाई: 'निश्चयनय से अकर्ता हूँ' वहाँ तक विकल्प नहीं छूटता, ऐसा कहते हैं। 'स्वभाव से ही अकर्ता हूँ' तो 'निश्चयनय से अकर्ता हूँ' ऐसा जो आता था न, 'निश्चयनय से अकर्ता हूँ' आता था, वह 'स्वभाव से अकर्ता हूँ' इसलिए 'निश्चयनय से अकर्ता हूँ' ऐसा स्थूल विकल्प गया। 'स्वभाव से अकर्ता हूँ' ऐसा सूक्ष्म विकल्प रहा, वह भी छूटकर अनुभव होता है, ऐसा संधिकाल है। आहाहा! व्यवहार की बातें तेरी कहीं की कहीं रह गई? वह तो हरिजनवास में भटकता है, कल कहा था। वह तो चक्रवर्ती के बगीचे में भी अभी आया नहीं। चक्रवर्ती के बगीचे में आए न, उसके area (एरिया, क्षेत्र) में, तो उसके ऐश्वर्य का पता चले, ओहोहो! यह कैसा बड़ा राजमहल, बड़ा राजा लगता है। और हरिजनवास में? कोई ठिकाना नहीं, ये तो दुर्गंध, (नाक पर) रुमाल रखना पड़े। आहाहा! व्यवहारनय का पक्ष हरिजनवास है। निश्चयनय का पक्ष चक्रवर्ती के एरिये में आ गया है।

फिर निश्चयनय आकर कहता है देख यह राजा का बंगला (है), जा तू (अंदर)। तो वह कहता है तू (मेरे) साथ आ। मैं तो चपरासी हूँ, मेरी पहुँच उसमें नहीं है। मैं तुम्हें बात सकता हूँ कि ये महल है राजा का, तुम दरवाजा खोलो, तुम जा सकोगे। आहाहा! ऐसी बात है। निश्चयनय आँगन तक ले आता है। परंतु उससे क्या?

मुमुक्षु: चपरासी का काम है, यहाँ तक उसका काम है, बस।

पू. लालचंदभाई: बस! विकल्प है न वह तो, नय के विकल्प से क्या साध्य की सिद्धि? आहाहा! **'मैं तो स्वभाव से ही अकर्ता हूँ-' तो अकर्ता का विकल्प छूट जाता है और अनुभव होता है।** आहाहा! बड़े अक्षरों में है, bold type (बोल्ड टाइप, मोटा टाइप)। आगे पढ़ो।

मुमुक्षु: **निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जानता है।**

पू. लालचंदभाई: दूसरा बोल आया। निश्चयनय से (१)अकर्ता, अब निश्चयनय से (२)ज्ञान आत्मा को जानता है।

मुमुक्षु: **अर्थात् ज्ञान पर को नहीं जानता। इसप्रकार निश्चयनय व्यवहार का निषेध करता है। यह विधि-निषेध नय में है। परंतु स्वभाव से ही ज्ञान आत्मा को जान रहा है। उसमें विधि-निषेध के विकल्प दोनों एक साथ जाते हैं।**

पू. लालचंदभाई: पर को नहीं जानता और जाननहार जानने में आता है - ऐसे दो विकल्प उठते थे विधि-निषेध के, जब स्वभाव में आया, दोनों विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु: **अनंतानुबंधी के राग द्वेष- विधि का राग और निषेध का द्वेष दोनों गलते-गलते टल जाते हैं और स्वभाव में आ जाता है।** वाह प्रभु!

पू. लालचंदभाई: **आ जाता है।** मध्यस्थ हो जाता है, मध्यस्थ ज्ञान। उस समय, अनुभव काल आता है न तब वह ज्ञान मध्यस्थ होता है। मध्यस्थ होता है न, तब राग-द्वेष जो अनंतानुबंधी के हैं, विधि-निषेध के, वे गलते जाते हैं, टलते हैं।

मुमुक्षु: **स्वभाव से स्वीकारे उसकी जाति ही अलग प्रकार की है।**

पू. लालचंदभाई: यह है न यह लाइन? वह निश्चयनय से स्वीकारे वह अलग, और स्वभाव से स्वीकारे वह अलग। निश्चयनय से स्वीकारता है वह अपूर्व निर्णय नहीं है। स्वभाव से स्वीकार आता है वह अपूर्व निर्णय है, उसे अनुभव जरूर होता है। दोनों में अंतर है। अनुभव हुआ नहीं है तो भी स्वभाव के पहलू में आ गया। करणलब्धि के परिणाम से पूर्व ऐसा होता है। नय के विकल्प से आगे चला जाता है, स्वभाव की तरफ। अतः नय के विकल्प जो हैं विधि-निषेध के, गलने लगते हैं। ज्ञान मध्यस्थ होता जाता है।

मुमुक्षु: स्वभाव के लक्ष से मध्यस्थ होता है।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव के लक्ष से मध्यस्थ होता है। होते-होते अंदर में चला जाता है। यह विधि की (बात) वहाँ फिरोजाबाद में बहन को कही थी, यह ही विधि। ऐसे निषेध का द्वेष घटता है, ऐसे विधि का राग घटता जाता है, स्वभाव के बल से। अब नय का काम नहीं है, अब स्वभाव पर आया है वह। वहाँ द्वेष घटता है निषेध का, (यहाँ से) राग घटता जाता है। ज्ञान मध्यस्थ होता हुआ, एक समय में राग और द्वेष का व्यय होकर अनुभव होता है। हूबहू, सब कुछ वहाँ आ गया था, हूबहू।

मुमुक्षु: ग्रहण करने वाला पात्र मिल गया न? तो फिर...

पू. लालचंदभाई: आहाहा! यह लाइन है न? **स्वभाव से स्वीकारे उसकी जाति ही अलग प्रकार की है**, अनुभव से पहले। फिर अनुभव उसमें ही होता है, उस ही स्वीकार में ही।

मुमुक्षु: **स्वभाव से स्वीकारे उसकी जाति ही अलग प्रकार की है।**

पू. लालचंदभाई: नय से स्वीकारे उसकी जाति अलग, स्वभाव से स्वीकारे उसकी जाति अलग। दोनों की जाति अलग कही। बोलो!

मुमुक्षु: आपने अभी मार्मिक कहा, आगम-भाषा से है या आत्म-भाषा से? वह अंदर की यह बात। बराबर है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ) अंदर की, अंदर की।

मुमुक्षु: **स्वभाव से स्वीकारे उसकी जाति ही अलग प्रकार की है। स्वभाव से स्वीकारे उसका नाम ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।**

पू. लालचंदभाई: **सम्यग्ज्ञान है।** नय से स्वीकारे वह तो स्वीकारा अनंतबार, यह मेरे और तुम्हारे आत्मा ने नहीं? नय तक नहीं आया? अनंतबार आया। उसमें क्या? उससे क्या? देखो अब मार्मिक दूसरी बात करनी है।

मुमुक्षु: **स्वभाव को स्वीकारने पर तेरी विचार कोटि बदल जायेगी। नय से विचारता था तो वह अब स्वभाव से विचारने लग जायेगा-**। सब कुछ कह दिया है।

पू. लालचंदभाई: हूबहु प्रक्रिया, खुल्लं- खुल्ला, कुछ ढककर नहीं, छुपाकर नहीं। आहाहा! **स्वभाव को स्वीकारने पर तेरी विचार कोटि बदल जायेगी। नय से विचारता था तो वह अब स्वभाव से विचारने लग जायेगा-**। आहाहा! स्वभाव में पहुँच जायेगा। स्वभाव से विचारता है, स्वभाव में पहुँच जाता है।

विचार कोटि बदलती है, विचार कोटि। नय है न (वह) प्रतिपक्ष है, स्वभाव प्रतिपक्ष नहीं है, स्वभाव निरपेक्ष है। इस नय से ऐसा हूँ, तो दूसरे नय से दूसरा हूँ, ऐसा आता है। इस नय से ऐसा हूँ तो दूसरे नय से भी दूसरारूप, मेरा दूसरारूप है, ऐसा आ जाता है। स्वभाव से विचारे आहाहा! विचार कोटि पलट जायेगी तेरी। अपूर्व निर्णय तुझे होगा भाई, स्वभाव से (विचारने पर)। आगे।

मुमुक्षु: **आत्मा शुद्ध है। कौनसे नय से?**

पू. लालचंदभाई: नय से प्रमाण की ही सिद्धि होती है क्योंकि नय सापेक्ष ही होते हैं। यदि नय को सर्वथा में ले जाओ तो-तो मिथ्यानय हो जाता है। इसलिये जैनदर्शन में सापेक्ष नय को नय कहा है। सापेक्ष अर्थात् एक पहलू जहाँ मुख्यरूप से कहा वहाँ दूसरा पहलू (गौणरूप से) तुम्हें उसमें समझ लेना, (उसमें) आ (ही) गया। प्रमाण में न आना हो तो भी आ गया। अतः नयवाला प्रमाण में ही खड़ा है। स्वभाववाला प्रमाण को उल्लंघता है। क्योंकि नय तो सापेक्ष ही है न? व्यवहारनय कहो तो निश्चयनय (गौणरूप से आ जाता है), निश्चयनय कहो तो व्यवहारनय (गौणरूप से आ जाता है)। मुख्य-गौण होता है न नय में? आहाहा!

मुमुक्षु: सापेक्ष दृष्टि वह मिथ्यादृष्टि, एक बार आपने कहा था।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)।

मुमुक्षु: यहाँ निश्चयनय से विचारता है तो वास्तव में दृष्टि विपरीत रह जाती है, उसका कारण यह। आपने बात सही है।

पू. लालचंदभाई: जो प्रथम से ही शुद्ध है उसे मैं कौन से नय से जानूँ कि यह सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है? (नियमसार कलश ७१) क्योंकि उपादेय तत्त्व में दो पहलू नहीं हैं, जिसका लक्ष करना है उसमें दो पहलू नहीं हैं। जिसमें तुम्हें अहम् करना है, उसके दो पहलू नहीं होते। दो पहलू हों तो दोनों में अहम् हो जायेगा! दूसरे पहलू की उसमें नास्ति है, इसलिये एक में अहम् होता है और दूसरे में अहम् नहीं होता, क्योंकि सामान्य में विशेष की नास्ति है।

एकदम महत्त्व की बात है! जरा समझना सभी। नय सापेक्ष ही होता है, समझ गये? 'निरपेक्षा नया मिथ्या' (आप्त-मीमांसा, गाथा १०८)। नय निरपेक्ष नहीं होता, स्वभाव निरपेक्ष होता है। देखो इसलिये श्लोक में कहा कि मैं किस नय से देखूँ कि यह सुदृष्टि है या यह कुदृष्टि है? प्रथम से ही जो शुद्धता है। आहाहा! गुरुदेव

कहते हैं कि यहाँ व्यवहार की खिल्ली उड़ाई है। व्यवहारनय ही नहीं है। अर्थात् कि व्यवहारनय का विषय आत्मा नहीं है। यदि तुम यह सम्यग्दृष्टि और यह मिथ्यादृष्टि ऐसा भेद करोगे तो तुम्हारी शुद्ध के ऊपर दृष्टि नहीं रहेगी, पर्याय के ऊपर ही दृष्टि गई। कि साहेब रुको अभी, पहले हम ज्ञान सच्चा कर रहे हैं, दो प्रकार की पर्यायें तो हैं या नहीं संसार में? कि पहले पर्याय नक्की मत कर, पहले द्रव्य नक्की कर। पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद कर दे, द्रव्यार्थिक चक्षु उघाड़। फिर पर्यायार्थिकनय उघाड़ना (प्रवचनसार गाथा ११४)। आहाहा!

वह तो श्लोक है, गजब का श्लोक है! प्रथम से ही शुद्धता है। किस नय से मैं उसे कहूँ कि यह जीव सम्यग्दृष्टि और यह जीव मिथ्यादृष्टि? जीव मिथ्यादृष्टि और जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होता। जीव तो प्रथम से ही अनादि-अनंत शुद्ध है, वह आत्मा वास्तव में उपादेय है। आहाहा! चौदह गुणस्थान सभी इसमें अब आ गये, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। चौदह गुणस्थान जीवतत्त्व नहीं हैं, अजीवतत्त्व हैं। अजीव को जीव मानना छोड़ दे। उनकी नास्ति है, ऐसी अस्ति है आत्मा में, सामान्य। 'सामान्य शुद्धं विशेष अशुद्धम्।' (पंचाध्यायी, उत्तरार्ध, गाथा २२१)।

सापेक्ष से प्रमाण में आया, सापेक्ष से प्रमाण में आया वह, पर उससे क्या? प्रमाण कोई पूज्य नहीं है। आहाहा! इसलिये अब तू स्वभाव में देख, स्वभाव से देख, विचार कोटि बदल दे। पर्याय को गौण कर और द्रव्य के विकल्प का अभाव कर। पर्याय को गौण कर और द्रव्य का विकल्प उठता है उसमें साध्य की सिद्धि नहीं होती। विचार कोटि बदल जाती है पूरी, ऐसा कहते हैं। स्वभाव से विचार तो स्वभाव की प्राप्ति होगी। आहाहा!

नय है न, वह प्रमाण में ही लायेगा, प्रमाण के बाहर नहीं निकल सकेगा। क्योंकि सापेक्ष है न? सापेक्ष है अर्थात् प्रमाण में ही सापेक्ष होता है न? स्वभाव तो निरपेक्ष है। भूतार्थनय से तू आत्मा को जान मतलब क्या? पर्याय से रहित आत्मा है, नास्ति है ऐसे आत्मा को जान तू! हें! भूतार्थनय से पर्याय को भी जान, कि पर्याय का कोई कर्ता नहीं है, पर्याय सत् अहेतुक है जा। तो ही द्रव्यदृष्टि होगी और कर्ताबुद्धि छूटेगी।

११ वीं गाथा में पर्याय से निरपेक्ष द्रव्य बताया। १३ वीं गाथा में द्रव्य से निरपेक्ष पर्याय है वह बताया। द्रव्य से निरपेक्ष पर्याय होती है? कि हाँ। पर्याय से निरपेक्ष द्रव्य

होता है? कि हाँ। तो एकांत होगा? कि सम्यक् एकांत हो जायेगा। बहन, ११ वीं गाथा में पर्याय से निरपेक्ष द्रव्य बताया, द्रव्यस्वभाव बताया। बराबर? १३ वीं गाथा में द्रव्य से निरपेक्ष पर्यायस्वभाव बताया, स्वभाव है पर्याय का, सत् अहेतुक है पर्याय। आहाहा! दोनों में परस्पर निरपेक्ष। एक में पर्याय से निरपेक्ष (द्रव्य स्वभाव)। दूसरे में द्रव्य स्वभाव से निरपेक्ष पर्याय स्वभाव। ओहो! ११ गाथा और १३ गाथा, नौ के नौ तत्त्व आ गये, नौ तत्त्व आ गये, नौ तत्त्व का ज्ञाता हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु: उसमें दो गाथा आ गई, द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव। दो गाथा, कुंदकुंदाचार्य की हैं उसमें।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। कुंदकुंद भगवान! आहाहा! बहुत वर्ष पहले जब हम अभ्यास करते थे न और वे सरणानाम पंडित थे, भाई! सरणानाम पंडित में, मैं और चंदुभाई सब group (ग्रुप, समूह) में गलत रास्ते चढ़ गये थे, सीखने के लोभ में जरा। फिर निमित्त आधीन दृष्टि तो हो जाती है न? उनकी भी निमित्त आधीन दृष्टि थी। तो एक बार छत पर चाँदनी रात थी, वहाँ मंदिर के ऊपर बैठे थे हम, चंदुभाई, मैं, पंडितजी, दो तीन चार लोग। पंडितजी को पूछा, 'आत्मा सापेक्ष है या निरपेक्ष?' ऐसा प्रश्न पूछा।

मुमुक्षु: आपने?

पू. लालचंदभाई: मैंने। नौ की साल में, आठ की साल में पूछा। आत्मा निरपेक्ष है या सापेक्ष? उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। आत्मा हों, सापेक्ष है या निरपेक्ष? आहाहा! 'कि भैया दोनों है।' ऐसा नहीं है। क्या कहा?

मुमुक्षु: दोनों है, उन्होंने ऐसा कहा। आपने कहा, ऐसा नहीं है।

पू. लालचंदभाई: नहीं, उनसे नहीं कहा था, अब मैं कहता हूँ।

मुमुक्षु: सही बात है।

पू. लालचंदभाई: अभी एक दूसरी बात है न, उसके अनुसंधान में है। भैया! कथंचित् सापेक्ष और कथंचित् निरपेक्ष, स्याद्वाद है न?

मुमुक्षु: उन्होंने नय से जवाब दिया। आप अब स्वभाव से कहते हो।

पू. लालचंदभाई: जहाँ कथंचित् कहा...

मुमुक्षु: तो सापेक्ष हो गया।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। ज्ञान सच्चा करने गया, श्रद्धा झूठी हो गई। पहले ज्ञान

सच्चा होता ही नहीं! श्रद्धा सच्ची होती है तो ज्ञान सच्चा होता है। वह तो सच लगता है सबको कि 'हाँ, कथंचित् सापेक्ष और कथंचित् निरपेक्ष' यदि ये जवाब दिया होता तो भी गलत था वह। आत्मा निरालंबी है, किसी के आधार पर नहीं है। आहाहा! आत्मा शुद्ध है, उसकी उपासना करने में आये तो शुद्ध है या उपासना न करे तो भी शुद्ध है?

मुमुक्षु: स्वयं, स्वभाव से ही शुद्ध है।

पू. लालचंदभाई: गुरुदेव ने जवाब दिया। आहाहा! बहुत खुश हुआ। मुझे बैठा (समझ में आया) था उस ही तरह का किन्तु गुरुदेव कहें, फिर कि सुख-दुःख की कल्पना में न चढ़ जाये इसीलिए हम ऐसा कहते हैं, वरना है तो वह।

मुमुक्षु: आपने साहेब, उस बात को ... बहुत मुझे अंतर से जवाब मिला न और मुझे बहुत खुशी (हुई)। सबको कहता हूँ लेकिन कोई ...! आपने एक दिया, वाह! यह तो अपूर्व बात दे दी आपने।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! अपूर्व, अपूर्व है, अपूर्व। यह ही मर्म है, यह ही मर्म। अनादि-अनंत शुद्ध है, कोई अनुभव करे या कोई अनुभव न करे, वह निरपेक्ष तत्त्व है न? उसे कोई अनुभव करे तो वह आत्मा शुद्ध है और न अनुभव करे तो अशुद्ध हो गया? कोई फूल को सूंघे या कोई न सूंघे, वह तो सुगंधमय है। (द्रव्य-दृष्टि प्रकाश, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व, पृष्ट ३५). ऐसी चीज है। पहले निरपेक्ष और फिर सापेक्ष का ज्ञान होता है। निरपेक्ष का श्रद्धान और सापेक्ष का ज्ञान। निरपेक्ष का श्रद्धान, सापेक्ष का ज्ञान। निरपेक्ष के श्रद्धान में, निरपेक्ष का ज्ञान और सापेक्ष का ज्ञान, तीनों आ जाते हैं। अकेली श्रद्धा निरपेक्ष नहीं, ज्ञान भी निरपेक्ष का होता है। फिर दूसरा पहलू, सापेक्ष में ज्ञान कर लेता है। अतः प्रमाण हो जाता है, नयपूर्वक प्रमाण। चलो आगे।

मुमुक्षु: **आत्मा शुद्ध है किस नय से? आत्मा स्वभाव से ही शुद्ध है। आत्मा मुक्त है। किस नय से? आत्मा स्वभाव से ही मुक्त है। आत्मा परिपूर्ण है। किस नय से? आत्मा स्वभाव से ही परिपूर्ण है। स्वभाव की सिद्धि के लिये नय नहीं है। स्वभाव से ही स्वभाव की सिद्धि होती है। नय से स्वभाव की सिद्धि नहीं होती। नय से तो स्वभाव का मात्र अनुमान होता है, लेकिन अनुभव नहीं होता।**

द्रव्यलिंगी मुनि यहाँ भूला, यहाँ रुका। उसे यह सच लगा कि मैं तो निश्चयनय से शुद्ध हूँ-अकर्ता हूँ। जैसा स्वभाव है, ऐसे ही स्वभाव को मैं निश्चयनय के द्वारा जानता हूँ, मानता हूँ। यह द्रव्यलिंगी की सूक्ष्म भूल है। और अनुभवी भूल को तोड़ देता है। जबकि द्रव्यलिंगी भूल को तोड़ नहीं सकता। क्योंकि वह नय के सहारे स्वभाव का विचार करता है। नय की मदद लेता है। सापेक्ष स्वरूप लक्ष में लेता है परंतु स्वरूप निरपेक्ष है। स्वरूप को किसी के सहारे की जरूरत नहीं है। आत्मा बंध और मोक्ष के भाव से रहित है, -वह यह।

नय से बंध-मोक्ष की सिद्धि होती है। जबकि स्वभाव से बंध-मोक्ष की सिद्धि ही नहीं होती। मैं तो स्वभाव से ही अनादि-अनंत मुक्त हूँ।

पू. लालचंदभाई: पर्याय का लक्ष बिल्कुल छूट जाये और द्रव्य का लक्ष आ जाये, यह हेतु है, स्वभाव का लक्ष हो जाये।

मुमुक्षु: **आत्मा कर्ता है वह एक पक्ष है। आत्मा अकर्ता है वह दूसरा पक्ष है।**

पू. लालचंदभाई: दोनों पक्ष हैं। दोनों पक्ष हैं, दोनों के विकल्प, ऐसा।

मुमुक्षु: **चित्स्वरूप जीव के संबंधमें नयों के ये दो पक्षपात हैं। वास्तव में तो तत्त्ववेदी ऐसा जानता है कि चित्स्वरूप जीव तो चित्स्वरूप ही है। व्यवहारनय का निषेध तो पहले से करते आये हैं। यह तो निश्चयनय के निषेध का काल आया है।**

पू. लालचंदभाई: दोनों विकल्प छूट जाते हैं और दोनों का ज्ञाता होता है। **चित्स्वरूप जीव तो चित्स्वरूप ही है।** यह पंचाध्यायीकर्ता ने लिया है कि 'जीव स्व का या पर का कर्ता-भोक्ता हो या न हो, तात्पर्य तो यह है कि ज्ञानस्वरूप जीव तो ज्ञानस्वरूप है'। (पंचाध्यायी, पूर्वार्ध गाथा ५८४, देवकीनंदजी कृत टीका) बस। स्वभाव का अवलंबन लेने पर द्रव्य-पर्याय दोनों का युगपद् एक समय में ज्ञान होता है। नय के विकल्प से अनुभव नहीं होता, दोनों का ज्ञाता नहीं होता, नय विकल्प का कर्ता बन जाता है। नय के विकल्प का कर्ता बनता है। अंत में नय के विकल्प ही रहते हैं कर्ता-कर्म में। वह लिया है, (समयसार) ९५ श्लोक में। द्रव्यलिंगी मुनि की (भूल) है वह। पुण्य का मैं कर्ता हूँ, ऐसा नहीं होता, ऐसी स्थूल (भूल) नहीं होती।

आगे।

मुमुक्षु: **आत्मा निश्चयनय से शुद्ध है, अकर्ता है, अबद्ध है- ऐसा नहीं है। आत्मा तो स्वभाव से ही शुद्ध है, अकर्ता है, अबद्ध है। यदि निश्चयनय से अबद्ध लोगे, तो व्यवहारनय से बंधा हुआ सिद्ध हो जायेगा। अरे! मैं आत्मा स्वभाव से ही मुक्त हूँ। बंधा ही नहीं न।**

पू. लालचंदभाई: बंधता है वह मुक्त होता है, बंधता है वह ही मुक्त होता है। बंध तो पर्याय में होता है और मुक्त होना भी पर्याय में है, आत्मा तो त्रिकाल मुक्त है। वह परमात्मप्रकाश में (गाथा ६८ में) बहुत अच्छी बात, दृष्टांत देकर सिद्ध की है। सब बाहर तो बहुत आ गया है, गुरुदेव के प्रताप से। परमात्मप्रकाश में लिया है, हमने लिवाई थी यहाँ, वह गाथा।

मुमुक्षु: **व्यवहारनय के पहलू में तो चढ़ने जैसा ही नहीं है क्योंकि वह तो अन्यथा कथन करता है। जबकि निश्चयनय स्वरूप का अनुमान तो कराता है, परंतु उसकी मर्यादा समझ ले। उस निश्चयनय के पक्ष का भी निषेध कर। स्वभाव के सन्मुख जाकर निश्चयनय के विकल्प को तोड़ दे, निषेध कर। वास्तव में तो स्वभाव के समीप जाने पर निश्चयनय के विकल्प उदित ही नहीं होते, वह ही उसका निषेध है।**

पू. लालचंदभाई: विकल्प उत्पन्न ही नहीं होते। निर्विकल्प ध्यान में जाता है, वहाँ कोई विकल्प होता नहीं।

मुमुक्षु: **जिसप्रकार निश्चयनय में आने पर व्यवहारनय के विकल्प छूट जाते हैं, वैसे ही स्वभाव में आने पर निश्चयनय के विकल्प छूटते हैं।**

पू. लालचंदभाई: यह important (इम्पॉर्टन्ट, महत्वपूर्ण) है। बड़े अक्षर हैं। निश्चयनय के पक्ष में आये, वह व्यवहारनय का निषेध करता है इसीलिए वह विकल्प छूटा। ऐसा मैं हूँ- ऐसी मान्यता छूट गई, विकल्प छूट गया, निश्चयनय के पक्ष में आया इसलिये। निश्चयनय का पक्ष व्यवहारनय के पक्ष को छुड़ाता है, और स्वभाव निश्चयनय के पक्ष के विकल्प को छुड़ाता है, तब अनुभव होता है। दोनों विकल्प जाते हैं, कोई विकल्प रहता नहीं। क्रम है सही! वह पहले (व्यवहारनय का) विकल्प जाता है, निषेध द्वारा वह (व्यवहारनय का) विकल्प जाता है। आखरी यह (निश्चयनय का) विकल्प रहता है। स्वभाव में जाता है तो यह (निश्चयनय का) विकल्प 'शुद्ध हूँ, अभेद

हूँ, ज्ञायक हूँ' यह छूट जाता है। बोलो।

मुमुक्षु: **जिसे इस स्वभाव का पक्ष आता है वह अब निश्चयनय के पक्ष का-कथन का निषेध करता है। निश्चयनय से व्यवहारनय का निषेध और स्वभाव से निश्चयनय का निषेध!**

पू. लालचंदभाई: ऐसा आ गया है कुदरती। इस समय मैं पढ़ता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि यह मैंने कहा होगा? वास्तव में ऐसा हों, मुझे लगता है! मैं झूठ नहीं कहता, हों!

मुमुक्षु: ना ना! अपूर्व बात आ गयी है, ऐसा।

पू. लालचंदभाई: हाँ, ऐसा आ गया होगा धारावाही!

मुमुक्षु: **स्वभाव से निश्चयनय का निषेध! नय तो 'स्वभाव' में आते नहीं, बाहर रह जाते हैं। स्वभाव में तो नय नहीं हैं परंतु स्वभाविक ज्ञान और दृष्टि में भी नय नहीं हैं।**

पू. लालचंदभाई: नय कहाँ से हो उसमें?

मुमुक्षु: **ज्ञायक में तो नय होते ही नहीं किंतु ज्ञान में भी नय नहीं होते। क्योंकि अतीन्द्रियज्ञान अभेद से, स्वयं ज्ञायक ही है न! अतः उसमें नय नहीं हैं। आहाहा...**

पू. लालचंदभाई: अतीन्द्रिय ज्ञान में नय नहीं होते।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा! बहुत बढ़िया!

पू. लालचंदभाई: बढ़िया!

मुमुक्षु: **आहाहा... दूसरी तरह से कहें तो अज्ञान में नय हैं। (अर्थात् कि जब तक नय के विकल्प हैं, तब तक अज्ञान है**, ऐसा।

पू. लालचंदभाई: ऐसा।

मुमुक्षु: **क्योंकि तब तक विकल्प के साथ कर्ताकर्म की प्रवृत्ति रहती है।)**

पू. लालचंदभाई: **प्रवृत्ति रहती है।** अर्थात् इस अपेक्षा से अज्ञान कहलाता है। अथवा नयज्ञान आत्मा को नहीं जानता इसलिये अज्ञान कहलाता है।

मुमुक्षु: **ज्ञायकस्वभाव नयों से पार है। अरे! यह आप क्या कहते हो? नय तो ज्ञान में होते हैं और ज्ञान से ज्ञायक का अनुभव होता है। (यह अभ्यासी जिज्ञासु की दलील है।) (उसके उत्तर में ज्ञानी बताते हैं) प्रभु! ज्ञान में नय ही**

नहीं होते। ज्ञायक में तो नय नहीं ही हैं परंतु ज्ञान में भी नय नहीं होते। स्वभाव से बात आये उसमें अकेला स्वभाव ही दिखता है, अन्य कुछ नहीं दिखता। नय से स्वभाव का विचार करना और स्वभाव से स्वभाव का विचार करना, इस विचार कोटि में भी बड़ा फर्क है। स्वभाव स्वयं का विश्वास और ज्ञान का वजन झेल सकता है। परंतु नय वह वजन नहीं झेल सकता, क्योंकि नय सापेक्ष है।

मुमुक्षु: बहुत ही स्पष्ट है हों!

मुमुक्षु: स्वभाव से विचार करे तो स्वभाव में बैठ जाता है, घुस जाता है।

पू. लालचंदभाई: बैठ जाता है, बस! बैठ जाता है। जम जाता है।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा। **द्रव्यलिंगी की यह ही भूल है। वह द्रव्य की निरपेक्षता में आ सकता नहीं।**

पू. लालचंदभाई: द्रव्य की निरपेक्षता में आ सकता नहीं, हों! पर्याय से रहित द्रव्य है, उसमें नहीं आता।

मुमुक्षु: **वैसे ही पर्याय की निरपेक्षता में भी नहीं आ सकता।**

पू. लालचंदभाई: पर्याय भी निरपेक्ष है, वह द्रव्य से निरपेक्ष है। द्रव्य से पर्याय है ऐसा नहीं, सत् अहेतुक है। और द्रव्य सत् अहेतुक है, उसे पर्याय की अपेक्षा नहीं है।

मुमुक्षु: दोनों एक दूसरे से निरपेक्ष हैं। उसमें ही दोनों की पुष्टि है। पू. लालचंदभाई: पुष्टि है। दोनों सत् जीवित रहते हैं। एकता होती नहीं, उसमें।

मुमुक्षु: **वह द्रव्य को भी सापेक्ष देखता है और पर्याय को भी सापेक्ष देखता है।** पर्याय को सत् नहीं देखता और द्रव्य को अकर्ता नहीं देखता।

पू. लालचंदभाई: नहीं देखता। बहुत अच्छा आ गया है हों!

मुमुक्षु: बहुत अच्छा, अरे! कितना अच्छा। भंडार भरा है इसमें।

पू. लालचंदभाई: ऐसा लगता है अच्छा आ गया है।

मुमुक्षु: **ज्ञान निश्चयनय से आत्मा को जानता है वह भी एक प्रकार की सापेक्षता ही है। ज्ञान निश्चयनय से आत्मा को जानता है वह भी एक प्रकार की सापेक्षता ही है। ज्ञान स्वभाव से ही आत्मा को जानता है। स्वभाव कहने पर निरपेक्षता ही आती है।** वाह! **संसार की थकान उतर जाये ऐसी बात है। यह रहस्य ख्याल में आने पर अल्पकाल में मुक्ति होती है।**

पू. लालचंदभाई: अल्पकाल में होती है। हो गया टाइम लो। मुक्ति हो गई और टाइम भी हो गया।

मुमुक्षु: टाइमसर मुक्ति हो गई?

पू. लालचंदभाई: लेकिन ऐसा घोलन हो, उसकी मुक्ति ही होती है न? उसके कोई संसार थोड़ी न है? जहाँ अंतिम विकल्प... आहाहा! क्यों हंस रहे हो? कहो ना।

मुमुक्षु: ऐसा कहा न? टाइमसर मुक्ति हो गई।

मुमुक्षु: टाइमसर मुक्ति हो गई।

पू. लालचंदभाई: टाइमसर मुक्ति। टाइमसर ही होता है न सब? तेरह पृष्ठ हुये, तेरह पृष्ठ हुये।

मुमुक्षु: प्रतिमा को सुमंत्र (सूर्यमंत्र) देते हैं न, प्रतिष्ठा में? ऐसे यह सुमंत्र है। क्या कहलाता है? सूर्यमंत्र। ऐसे यह एक स्वभाव, स्वभाव, स्वभाव।

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट १४-१५, उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट तारीख: १७-१-१९९१

प्रवचन LA ०६७

१४ वां पृष्ठ।

मुमुक्षु: **निश्चयनय से शुद्ध कहने पर, किसी नय से अशुद्ध है ऐसा आ जायेगा। निश्चयनय से नित्य कहने पर, किसी नय से अनित्य है ऐसा आ जायेगा। क्योंकि नय सापेक्ष होते हैं। और स्वभाव तो निरपेक्ष है।**

पू. लालचंदभाई: स्वभाव तो निरपेक्ष होता है।

मुमुक्षु: **नय स्वभाव से ही सापेक्ष होता है और स्वभाव स्वभाव से ही अत्यंत निरपेक्ष होता है। व्यवहारनय निश्चयनय के द्वारा निषेध्य है और निश्चयनय स्वभाव के द्वारा निषेध्य है।** वाह!

पू. लालचंदभाई: संकलन अच्छा हो गया है। क्योंकि **निश्चयनय स्वभाव के द्वारा** ही **निषेध्य होता है**, नहीं तो विकल्प खड़ा ही होता है। स्वभाव में यदि जाये तो निश्चयनय का विकल्प चला जाये। स्वभाव द्वारा निश्चयनय का अभाव हो जाये, और व्यवहारनय का निषेध निश्चयनय द्वारा होता है। जैनदर्शन परिपूर्ण है। हें? चौदहवाँ पेज है मोदी साहेब, तीसरा पैराग्राफ, चौदहवाँ पेज, अब।

मुमुक्षु: **'नय' है वह निर्णय करने के लिये है। अपूर्व निर्णय आता है-परोक्ष अनुभूति होती है परंतु उसमें आनंद नहीं है। ज्ञान है वह अनुभव के लिये है। प्रत्यक्ष अनुभूति होती है-उसमें आनंद आता है।**

पू. लालचंदभाई: संक्षिप्त शब्दों में सब आ गया। यह अभ्यासी के लिये ही है। संक्षिप्त वाक्य हैं उन्हें अभ्यासी के अलावा कोई नहीं समझ सकता।

मुमुक्षु: इसमें अपूर्व निर्णय आया। कल आपने फरमाया था, वह निर्णय।

पू. लालचंदभाई: वह निर्णय (है), अनुभव नहीं है उसमें।

मुमुक्षु: **व्यवहारदृष्टि वह मिथ्यादृष्टि और निश्चयदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि ऐसा**

आता है। (परंतु) 'निरपेक्ष दृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' बस निरपेक्षता में दो नयपक्ष खड़े ही नहीं होते। यहाँ नयातीत होने की बात है।

पू. लालचंदभाई: यह तो जैसे सूत्र हो न, सूत्र। ऐसा आ गया है, आ गया है। कोई पल था, पल था।

मुमुक्षु: **व्यवहारदृष्टि वह मिथ्यादृष्टि और निश्चयदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि ऐसा आता है। (परंतु) 'निरपेक्ष दृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' बस निरपेक्षता में दो नय पक्ष खड़े ही नहीं होते। यहाँ नयातीत होने की बात है।**

पू. लालचंदभाई: मंत्र हैं।

मुमुक्षु: पहली बात प्रचलित है। यह निरपेक्ष दृष्टि वह सम्यग्दृष्टि वह (प्रचलित नहीं है)।

मुमुक्षु: महनीय गुरु ही कह सकते हैं!

मुमुक्षु: सच्ची बात है।

पू. लालचंदभाई: साथ ही कारण दिया कि **बस निरपेक्षता में दो नयपक्ष खड़े ही नहीं होते। यहाँ नयातीत होने की बात है।** कोई विकल्प ही खड़ा नहीं होता। इस नय से ऐसा और इस नय से ऐसा, विधि-निषेध नहीं, प्रमाण नहीं, विधि-निषेध नहीं, कुछ नहीं, स्वभाव।

मुमुक्षु: **निश्चयनय से एक ही धर्म ख्याल में आता है और स्वभाव के समीप जाकर देखता है तो पूरा स्वभाव ख्याल में आता है।** सही है। **परिपूर्ण स्वभाव की प्राप्ति स्वभावदृष्टि में होती है।** एक एक (मंत्र है)। **निश्चयनय से एक ही धर्म ख्याल में आता है और स्वभाव के समीप जाकर देखता है तो पूरा स्वभाव ख्याल में आता है। परिपूर्ण स्वभाव की प्राप्ति स्वभावदृष्टि में होती है।**

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय है न, नय? वह एक धर्म को स्वीकारता है। स्वभावदृष्टि में पूरा धर्मी आ जाता है। फिर से **निश्चयनय से**...

मुमुक्षु: **निश्चयनय से एक ही धर्म ख्याल में आता है और स्वभाव के समीप जाकर देखता है तो पूरा स्वभाव ख्याल में आता है। परिपूर्ण स्वभाव की प्राप्ति स्वभावदृष्टि में होती है।**

पू. लालचंदभाई: लो! १४ वें पेज पर अंतिम पैराग्राफ है।

मुमुक्षु: **नय दृष्टि से मात्र एक ही धर्म की सिद्धि होती है, इसलिये दूसरे**

धर्मों को जानने की आकुलता उत्पन्न होती है।

पू. लालचंदभाई: अंतिम पैराग्राफ में चौथी लाइन। **नय दृष्टि से मात्र एक ही धर्म की सिद्धि होती है, इसलिये दूसरे धर्मों को**..

मुमुक्षु: **जानने की आकुलता उत्पन्न होती है। नय में विकल्प की उत्पत्ति होती है उसका कारण ही यह है कि नय का धर्म एक एक धर्म को जानने का है। जब स्वभाव के समीप जाकर देखता है तो पूरा स्वभाव जानने में आता है। और कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता होने से नयपक्ष के विकल्प उत्पन्न ही नहीं होते। वाह! विषय का प्रतिबंध छूट जाता है और अनुभव हो जाता है।**

पू. लालचंदभाई: **कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।** आत्मा को जाना उसने सब जाना।

मुमुक्षु: **तब ध्येयपूर्वक पूरा सामान्य-विशेषात्मक आत्मा ज्ञान का ज्ञेय होता है।**

पू. लालचंदभाई: नय से एक धर्म जानने में आता था। स्वभावदृष्टि से पूरा धर्मी ज्ञात हो जाता है। आहाहा! आश्रय एक का और ज्ञान अनंत का हो जाता है। आश्रय सामान्य का और ज्ञान सामान्य-विशेष पूरे आत्मा का। समस्त धर्म युगपद्, अक्रम, एक समय में निर्विकल्पध्यान में ज्ञात हो जाते हैं, अतीन्द्रियज्ञान में। नयज्ञान है, वह इन्द्रियज्ञान है, इसीलिए उसमें आकुलता होती है, एक धर्म को जानता है और बाकी जानना रह जाता है बाकी। **इसलिये स्वभाव की दृष्टि होने पर**....

मुमुक्षु: **इसलिये स्वभाव की दृष्टि होने पर ही पक्षातिक्रांत हुआ जाता है। देखो! एक-एक वाक्य। इसलिये स्वभाव की दृष्टि होने पर ही पक्षातिक्रांत हुआ जाता है। परंतु निश्चयनय से पक्षातिक्रांत नहीं हुआ जाता।**

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय तो एक धर्म को अंगीकार करता है और बाकी के धर्म रह जाते हैं।

मुमुक्षु: कल फरमाया था, निश्चयनय से प्रमाण में से निकला नहीं जा सकता।

पू. लालचंदभाई: दो विकल्प खड़े होते हैं, क्षण में यह विकल्प और क्षण में यह विकल्प। सापेक्ष नय हैं न? स्वभाव तक पहुँचने पर, दो नयों का ज्ञाता हो जाता है, परंतु दो नयों का कोई विकल्प उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! (समयसार) १४३ में कहा न? समय से प्रतिबद्ध होता है तब दो नयों का ज्ञाता होता है। किसी भी नय पक्ष

को ग्रहण नहीं करता। अर्थात् विकल्प मात्र विलय को प्राप्त होते हैं और अनंत धर्मों का ज्ञान हो जाता है। आहाहा! नय से एक-एक धर्म का ज्ञान होता है। स्वभाव से अनंत धर्म का ज्ञान होता है। नय मानसिक ज्ञान है, वह अतीन्द्रियज्ञान है। **निश्चयनय से पक्षातिक्रांत नहीं हुआ जाता।** आहाहा! **स्वभावदृष्टि होने पर ही पक्षातिक्रांत हुआ जाता है। परंतु निश्चयनय से पक्षातिक्रांत नहीं हुआ जाता।**

मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा निश्चयनय से विचार किया करता है, विचार सच्चा है। व्यवहारनय का विचार भी झूठा है, कर्म से बंधा हुआ हूँ और मनुष्य हूँ और रागी हूँ और पर का ज्ञाता हूँ, वह तो पक्ष ही जाने दो। यह तो निश्चयनय तक आया, जैसा स्वभाव है ऐसा लक्ष में लेता है, विकल्प में, तो भी पक्षातिक्रांत नहीं हुआ जाता। स्वभाव दृष्टि होने पर निश्चयनय का विकल्प छूट जाता है। निश्चयनय का विकल्प छूटने पर निश्चय-व्यवहार का ज्ञाता होता है। निश्चयनय के पक्ष में निश्चय-व्यवहार का ज्ञाता नहीं हुआ जाता। ज्ञाता होना हो न तुझे? तो स्वभाव पर जा न!

दो नयों को आप मानते हो? दो नयों को हम मानते हैं, ज्ञानी ही मानते हैं। दो नयों को जानते हैं वे। क्रम से जानना वह जानना ही नहीं है। अक्रम से ज्ञात हो जाते हैं, द्रव्य-पर्यायस्वरूप सम्पूर्ण वस्तु। सामान्य-विशेष दोनों लिये न? आहाहा! कल हसमुखभाई आये थे। मैंने कहा यह कच्चा पारा है देखो यह। मोदी साहब ने कहा कि कच्चा पारा है परंतु यदि पच जाये तो चक्रवर्ती हो जाये, चक्रवर्ती हो जाये। अखंड का स्वामी, चक्रवर्ती अर्थात्? छह खंड का नहीं, अखंड का स्वामी। आहाहा! आगे।

मुमुक्षु: **जो आत्मा स्वभाव से ही शुद्ध है उसे किसी नय के द्वारा शुद्ध कहना वह सही नहीं है।**

मुमुक्षु: जरा खोलो न, साहेब।

पू. लालचंदभाई: ऐसा कहते हैं कि जो आत्मा अनादि-अनंत स्वयं अपने स्वभाव से ही शुद्ध है, वह शुद्ध होता नहीं है। भगवान जो आत्मा सामान्य ज्ञायकभाव है, वह अनादि-अनंत अपने स्वभाव से ही शुद्ध है। अशुद्धता टले तो शुद्ध है, ऐसा भी नहीं है, और 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा विकल्प करे तो शुद्ध है, ऐसा भी नहीं है। वह तो अनादि-अनंत स्वभाव से ही शुद्ध है। विकल्प के द्वारा समझाते हैं। अशुद्धता का पक्ष था उसे कहते हैं कि व्यवहारनय से अशुद्ध कहते हैं, व्यवहारनय आत्मा को, परंतु

वास्तव में निश्चयनय कहता है वह सत्यार्थ कथन है। निश्चयनय आत्मा को शुद्ध कहता है, त्रिकाल, अतः अशुद्धनय का पहलू छूट गया और शुद्ध में आया परंतु विकल्प में खड़ा होकर शुद्ध में आया। अब कहते हैं कि निश्चयनय से मैं शुद्ध हूँ, ऐसा जानेगा तो व्यवहारनय से अशुद्ध हूँ- (यह) प्रतिपक्ष आ जायेगा अतः प्रमाण में आ जायेगा।

व्यवहारनय से विचारे तो भी प्रमाण में और निश्चयनय से विचारे तो भी प्रमाण में आ जाता है। सापेक्ष है न, इसीलिये। अब कहते हैं कि विकल्प छोड़ दे। स्वभाव से शुद्ध अनादि-अनंत शुद्ध हूँ, नित्य निरावरण, अखंड-एक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय आत्मा है। अनादि-अनंत स्वभाव से ही शुद्ध है, उसे नय की जरूरत नहीं है। नयों के द्वारा समझाया जाता है परंतु नयों से वस्तु तुझे अनुभव में नहीं आयेगी, अनुमान में आयेगी लेकिन अनुभव में नहीं आयेगी। इसलिये (निश्चयनय) से ही शुद्ध है ऐसा तू लेगा तो निश्चयनय से मैं शुद्ध हूँ ऐसा जो विकल्प उठता है, वह विकल्प उसका कर्म हो जाता है। इन्द्रियज्ञान और राग उसका कर्म हो जाता है, अनुभव नहीं होता उसमें। स्वभाव से ही शुद्ध हूँ अनादि-अनंत, किसी नय की मुझे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! अग्नि उष्ण स्वभाव से ही है। पानी शीतल स्वभाव से ही है। आहाहा! सूर्य प्रकाश का पुंज स्वभाव से ही है। नय की क्या जरूरत है?

स्वभाव समझता नहीं है, उसे नय के द्वारा समझाते हैं। परंतु नय से चिपकने जैसा नहीं है। नय को छोड़ देने जैसा है। बालक चलना सीखता है तब उसको बाबागाड़ी देते हैं, गिर न जाये इसलिये। फिर बड़ा हो गया, फिर बाबागाड़ी रखता होगा? छोड़ देता है। इसीप्रकार स्वरूप विपरीतता थी, वह समझ अविपरीत हो इसलिये व्यवहार का निषेध करके निश्चयनय का प्रतिपादन किया। सविकल्प निश्चयनय में बड़ा लाभ यह हुआ उसे कि विपरीतता निकल गई। ख्याल में आया, ओहो! मैं तो अशुद्ध हुआ ही नहीं न! अशुद्धता की तो परिणाम की स्थिति थी, परिणाम तो परद्रव्य हैं। परिणाम तो जीव के होते ही नहीं। मैं तो परिणाम से भिन्न परमात्मा हूँ। मैं तो त्रिकाल प्रथम से ही शुद्ध हूँ, शुद्ध मुझे होना भी नहीं है। परिपूर्ण हूँ, मुझे परिपूर्ण होना नहीं है।

ऐसे पहले पर्याय पर दृष्टि थी उसे द्रव्य स्वभाव का, जैसा स्वरूप है, अविपरीत, ऐसा ज्ञान कराया। अब कहते हैं कि विकल्प छोड़ दे। वह उसे प्रतीत में

आये न जब, पूरा प्रतीत में आये, जितनी मात्रा में श्रद्धा चाहिये उतनी मात्रा में श्रद्धा आये, वचनातीत है, इशारे से समझाता हूँ तुम्हें। जितनी मात्रा में श्रद्धा आये, परिपक्व होवे, उतनी मात्रा में यदि परिपक्व हो जाये श्रद्धा, तो मैं शुद्ध हूँ ऐसा जो अंतिम विकल्प, वह विलय होकर साक्षात् शुद्ध का अनुभव करे और पर्याय में शुद्धता प्रगट हो जाए।

श्रद्धा के बल से ही उपयोग अंदर में आता है। श्रद्धा विपरीत है अनंतकाल से। श्रद्धा का दोष पहले टलता है, फिर चारित्र का दोष टलता है। लोगों को श्रद्धा की कुछ कीमत ही नहीं है। आहाहा! पर्यायदृष्टि है न? इसलिए ज्ञानी कहते हैं तू शुद्ध है, परिपूर्ण है। कि ना साहेब, मैं तो अशुद्ध हूँ। ज्ञानी के वचन पर श्रद्धा रखे न तो वह व्यवहार श्रद्धा में आया कहलाये। गुरुदेव को प्रश्न आते थे कि संसारी जीव है, तो मिथ्यादर्शनरूप से परिणमता है तब द्रव्य भी अशुद्ध हो गया? ऐसे हिन्दुस्तान में से प्रश्न आते थे अखबार में। तब गुरुदेव कहते भाई, वह प्रथम से ही शुद्ध है, अशुद्ध हुआ ही नहीं। आहाहा! कपड़ा जब मैला है उसी समय कपड़ा स्वच्छ है, मैला हुआ ही नहीं है न। पानी उष्ण हुआ तब पानी शीतल ही है न। उष्ण हुआ नहीं है। आहाहा!

ऐसे दो नय हैं। एक नय संयोग को बताता है, दूसरा नय स्वभाव को बताता है, निश्चयनय। दोनों विकल्पात्मक नय हैं। अब निश्चयनय जो विकल्पात्मक नय है वह वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करता है, जैसा है वैसा। प्रतिपादन करनेवाले भी नय से समझाते हैं और समझनेवाला भी निश्चयनय से समझता है। दोनों को विकल्प उठता है। फिर वह विकल्प छूट जाता है, मैं तो स्वभाव से परिपूर्ण शुद्ध हूँ, स्वभाव से ही अकर्ता हूँ, वह अंतिम विकल्प था वह छूटता है। श्रद्धा का बल आता है इतना अधिक जबरदस्त, अपूर्व, कभी नहीं आया हुआ ऐसा श्रद्धा का बल आता है। फट से विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव हो जाता है।

लोग ज्ञान के बल के ऊपर चले गये, श्रद्धा का बल चाहिये। ज्ञान निर्बल है, सविकल्प है वह ज्ञान। श्रद्धा निर्विकल्प है। श्रद्धा अभेदग्राही है, ज्ञान भेदाभेदग्राही है। श्रद्धा का बल main (मेइन, मुख्य) (है), गुरुदेव के ४५ वर्ष के उपदेश में श्रद्धा के ऊपर वजन था। तू वर्तमान में मुक्त है! तू बंधा ही नहीं न! कि साहेब, व्यवहारनय से तो बंधा हूँ न? भाई अब रहने दे न, अभी राम बोलो भाई राम रहने दे, विवाह के गीत

गाये जाते हैं। तू मुक्त है, इसी वक्त तू सिद्ध समान है, सिद्ध ही है, सिद्ध होना भी नहीं है। इसप्रकार नय के द्वारा स्वभाव का ख्याल आता है तब निश्चयनय के पक्षवाले को स्वभाव का बल आता है। ध्यान रखना। निश्चयनय के पक्षवाले को स्वभाव का बल आता है। ऐसा स्वभाव का बल एक बार आयेगा कि निश्चयनय का विकल्प छूटकर साक्षात् अनुभव हो जायेगा।

यह तो निश्चय की बात है, यह तो निश्चय की बात है, ऐसा कहकर निकाल देते हैं! निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् झूठ। व्यवहारनय अन्यथा कथन करता है। निश्चयनय जैसा स्वरूप है ऐसा कथन करता है, परंतु निश्चयनय के विकल्प में अनुभव नहीं होता। स्वभाव का जोर आता है उसमें विकल्प छूट जाता है। उसे पता भी नहीं होता और एकाएक सम्यग्दर्शन हो जाता है उस समय। स्वभाव का एकदम रटन चलता हो। स्वभाव का जोर आता है उस समय।

यह पुस्तक नयातिक्रांत होने के लिए है। निश्चयनय तक आ गया। व्यवहार के पक्ष में खड़ा है उसे तो यह निमित्त भी नहीं होगा। परंतु निश्चयनय के पक्ष में आया है उसे ज्ञानी की वाणी निमित्त होगी। पक्षातिक्रांत होने की विधि है यह। निश्चयनय से शुद्ध हूँ ऐसा नहीं, स्वभाव से ही शुद्ध हूँ। निश्चयनय से अकर्ता हूँ ऐसा नहीं, स्वभाव से ही अकर्ता हूँ। निश्चयनय से ज्ञाता हूँ ऐसा नहीं, स्वभाव से ही ज्ञाता हूँ, ऐसा। आया न? निश्चयनय व्यवहार का निषेध करता है और स्वभाव निश्चयनय का निषेध करके अनुभव कराता है, ऐसा आया। **व्यवहारनय निश्चयनय के द्वारा निषेध्य है और निश्चयनय स्वभाव के द्वारा निषेध्य है।** दूसरा पैराग्राफ, बड़े अक्षर तीन लाइनें, बड़े अक्षर bold type (बोल्ड टाइप, मोटा टाइप)।

आते हैं, विकल्प आते हैं। निश्चयनय के विकल्प द्वारा व्यवहारनय के विकल्प का निषेध होता है, परंतु उससे क्या? निश्चयनय के विकल्प में भी आनंद नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं होता। वह विकल्प छूटता है तब अनुभव होता है। यह किसके लिये है? कि व्यवहार का जिसे निषेध वर्तता है, निश्चय के पक्ष में आ गया है और अभी अनुभव होता नहीं है, उसके लिये है। चक्रवर्ती के आँगन तक आया है परंतु अंदर प्रवेश नहीं हुआ।

व्यवहारनय के पक्षवाला तो हरिजनवास में रखड़ता है। आहाहा! आत्मा के अनुभव बिना धर्म तीनकाल में शुरू नहीं होता। आज अनुभव करो या कल करो,

दूसरी कोई क्रिया ही नहीं है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (मोक्षशास्त्र/तत्त्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १), आत्मा का ज्ञान, आत्मा का श्रद्धान और आत्मा की लीनता, बस! यह मोक्ष का, सुख का मार्ग, बाकी सभी बातें हैं।

व्यवहार के पक्षवाले को तो एकांत लगता है इसमें। निश्चय के पक्षवाले को अमृत लगता है। (समयसार गाथा) १४३ में कहा है कि पक्षातिक्रांत होता है तब ही समयसार की प्राप्ति होती है। पक्ष में, निश्चयनय के पक्ष में (प्राप्त नहीं होता)। उससे क्या? (समयसार गाथा १४२, शीर्षक) व्यवहार का निषेध तो प्रथम से ही करते आये हैं। ऐसा तो आत्मा का स्वरूप ही नहीं है, जैसा व्यवहारनय प्रतिपादन करता है। निश्चयनय प्रतिपादन करता है ऐसा स्वरूप है। व्यवहारनय तो अन्यथा कथन करता है। निश्चयनय तो जैसा स्वरूप है ऐसा प्रतिपादन करता है। परंतु उससे क्या? उस विकल्प में कुछ शांति नहीं है, आकुलता है। स्वभाव का जोर आने पर विकल्प छूट जाते हैं, सहज ही छूटते हैं। छोड़ता नहीं है, विकल्प की उत्पत्ति होती नहीं है, ऐसा। छूटते हैं बस! विकल्प को छोड़ता भी नहीं और निर्विकल्प को करता भी नहीं, वह तो ज्ञायक को जानता है - वहाँ यह स्थिति बन जाती है। पूर्व पर्याय का व्यय और उत्तर पर्याय का उत्पाद और ध्रुव की दृष्टि। यह अनुभव कैसे हो उसकी इसमें विधि है। रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है यह। क्या कहा?

मुमुक्षुः रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है, साहेब। परम सत्य बात है। अफर फरमान!

पू. लालचंदभाईः और title page (टाइटल पेज, शीर्षक पेज) भी अच्छा किया है। यह ॐकार ध्वनि में से आया हुआ है यह, द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव। गोहिल (चित्रकार) का काम अच्छा है। यह पुस्तक तो छह महीने बाद बाहर निकलेगी, छह महीने तक गुप्त रखनी है।

मुमुक्षुः इसमें आया नय पक्ष से अतिक्रांत बताया वह समय का सार है।

पू. लालचंदभाईः पहले पेज पर है, पहले पेज पर, गोल आकार में। हाँ, वह, हाँ, वह। अर्थात् इसमें वह विषय है, ऐसे। विषय की सूचना है इसमें। नय में विकल्प उत्पन्न होता है, कि मैं शुद्ध हूँ ऐसा विकल्प, और जब विकल्प टूटता है तब निर्विकल्प ध्यान आ जाता है। यानि इन्द्रियज्ञान रुक जाता है, नया स्वसंवेदन अतीन्द्रियज्ञान आत्मसन्मुख प्रगट होता है। वह आत्मा के आश्रय से प्रगट होता है तो अभेद होकर आनंद का उसमें अनुभव आता है। इसका नाम निर्विकल्प, विकल्प

रहित, राग रहित, इन्द्रियज्ञान रहित, खंडज्ञान रहित। विकल्प का अर्थ खंडज्ञान है, विकल्प का अर्थ राग भी है। वह वचनातीत, विकल्पातीत, नयातीत - अनुभव में नय नहीं होते, नयातीत है। मतलब कि यह अभ्यास करने के बाद जिसे अनुभव न हुआ हो, सम्यग्दर्शन, यह उसके लिये है। व्यवहार के पक्षवाले को तो यह कुछ लागू पड़े ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: वह तो हरिजनवास में है।

पू. लालचंदभाई: हरिजनवास में है, उसे तो दिल्ली बहुत दूर है। यह तो स्वभाव के समीप आ गया है। आहाहा! व्यवहार का निषेध वर्तता ही रहता है, निषेध के विकल्प वर्तते हैं। निषेध के विकल्प बिना व्यवहार का निषेध वर्त जाता है - वह स्वभाव हो जाता है, वह, पक्ष।

पहले व्यवहार का निषेध उसे विकल्प द्वारा करना पड़ता है। निश्चयनय के पक्ष में आकर 'ऐसा मैं नहीं हूँ', ऐसा, ऐसा करना पड़ता है, practice (प्रेक्टिस, अभ्यास)। फिर जब ऐसा निश्चयनय का जोर आ जाता है तब उसे निषेध के लिये विकल्प नहीं करना पड़ता, विकल्प के बिना निषेध वर्तता रहता है। और आत्मा का आश्रय आया नहीं है और निश्चयनय के विकल्प का पक्ष रहा करता है। जब आत्मा का आश्रय आता है, तब निश्चय के पक्ष का विकल्प छूटकर अनुभव हो जाता है। फिर तो निषेध की बात है ही नहीं।

मुमुक्षु: स्वभाव के बल से निषेध वर्तता रहता है?

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय के पक्ष में आ जाये उसे व्यवहारनय का निषेध वर्तता ही रहता है। वह शास्त्र में पढ़े न, ज्ञानी की वाणी, ज्ञानी की वाणी, किन्तु उसे निषेध वर्तता रहता है। निषेध करने का विकल्प नहीं रहता, वह उसका स्वभाव हो गया। ऐसा एक स्वभाव हो जाता है, अनुभव से पहले। अनुभव से पहले...

मुमुक्षु: स्वभाव वर्तता ही रहता है।

पू. लालचंदभाई: वर्तता ही रहता है, कि वह मैं नहीं हूँ, ऐसा मैं नहीं हूँ, जो व्यवहारनय कहता है ऐसा मैं नहीं, मेरा स्वरूप नहीं है, बस! मेरा स्वरूप नहीं है इसलिए नहीं है, ऐसा नहीं! मेरा स्वरूप ही नहीं है। वह व्यवहारनय तो अन्यथा कथन करता है। करने दो, उसमें हमें कुछ तकलीफ नहीं है, हमें तकलीफ नहीं है। आत्मा राग का कर्ता है, और कर्म को बांधता है और दुःख को भोगता है और पर को

जानता है और - भले व्यवहारनय कथन करे! मैं उसके लिये विकल्प भी नहीं करता! वो विकल्प मेरे निषेध के लिये नहीं है, वो मेरा विकल्प स्वभाव की अस्ति में चला जाता है। ये विकल्प रहता है, इतना विकल्प रहता है। उस विकल्प का दुरुपयोग नहीं करता हूँ... विकल्प का ही सदुपयोग। मैं तो स्वभाव से अकर्ता हूँ।

मुमुक्षु: अपूर्व है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। इतना स्वभाव का जोर आये...

मुमुक्षु: व्यवहार का निषेध (वह) विकल्प का दुरुपयोग।

पू. लालचंदभाई: दुरुपयोग।

मुमुक्षु: व्यवहार का निषेध ओहो! धन्य है।

पू. लालचंदभाई: और निश्चयनय का जो पक्ष का विकल्प आता है वह विकल्पात्मक शुद्धोपयोग है, विकल्प का सदुपयोग है। क्योंकि विकल्प में स्वभाव लिया उसने, विकल्प में विभाव छोड़ दिया, विकल्प में विभाव छोड़ दिया, मैं रागी नहीं हूँ, मैं तो परमात्मा हूँ।

मुमुक्षु: स्वभाव ग्रहण किया विकल्प में।

पू. लालचंदभाई: हाँ, स्वभाव ग्रहण किया विकल्प में, तो विकल्प का सदुपयोग हुआ। वह विकल्प का जो सदुपयोग रहता है, वह विकल्प टूटनेवाला है। जिस विकल्प में दुरुपयोग है, वह विकल्प टूटता नहीं और सम्यग्दर्शन नहीं होता, तीनकाल में, व्यवहार के पक्ष में।

मुमुक्षु: धन्य है, पराकाष्ठा का। कमाल कर दिया।

मुमुक्षु: विकल्प का सदुपयोग है वह टूटेगा और विकल्प का दुरुपयोग है वह टूटनेवाला नहीं है।

पू. लालचंदभाई: वह टूटनेवाला नहीं है। वह तो दृढ़ होता है, मिथ्यात्व उसे। आहाहा!

मुमुक्षु: पराकाष्ठा की व्याख्या है। विकल्प के दुरुपयोग की व्याख्या क्या? और विकल्प के सदुपयोग की व्याख्या क्या? इस सदुपयोग का व्यय होकर निर्विकल्प अनुभव होगा।

पू. लालचंदभाई: जरूर होगा।

मुमुक्षु: धन्य है साहेब। बहुत कुछ सीखे।

पू. लालचंदभाई: क्योंकि विकल्प में भी स्वभाव घोटने में आता है उसे, निरंतर स्वभाव घोटने में आता है।

मुमुक्षु: स्वभाव में आने से विकल्प टूटते है। यह अफर बात है! इसके लिये है।

पू. लालचंदभाई: इसके लिये (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव**) है।

मुमुक्षु: धन्य है! परम प्रताप आपका।

मुमुक्षु: बहुत सुन्दर बात कही। अनुभव से पहले भी व्यवहार का निषेध करने के लिये विकल्प की जरूरत नहीं पड़ती।

पू. लालचंदभाई: बिल्कुल जरूरत नहीं पड़ती। एक बार निर्णय कर लिया कि व्यवहारनय सर्व ही अभूतार्थ है, झूठा कथन करता है। श्रीगुरु ने, महान गुरु। कैसे? महनीय श्रीगुरु ने मुझे कहा कि व्यवहार समस्त ही अभूतार्थ है। अब व्यवहार अभूतार्थ है ऐसा विकल्प भी आता नहीं है। (व्यवहारनय) स्वभाव से अभूतार्थ है। मुझे उस विकल्प की क्या जरूरत?

मुमुक्षु: बड़ी ऊंची दिव्यवाणी आ रही है। बहुत ऊंचे से ऊंची पराकाष्ठा की दिव्यवाणी आयी!

पू. लालचंदभाई: है पराकाष्ठा की, यह बात सत्य है। हाँ इतना है, स्वभाव में पहुँचा नहीं है अभी इसलिये निश्चयनय का जो विकल्प, जो स्वभाव है, ऐसे विकल्प आते हैं उसे। मैं अकर्ता हूँ, जाननहार जानने में आता है, मुझे जाननहार जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में ही नहीं आता न! मुझे मेरा परमात्मा, मेरे विशेष में मेरा सामान्य ज्ञात होता है। ऐसे विकल्प का वह सदुपयोग है परंतु वह भी परमार्थ से देखें तो दुरुपयोग है, इसलिये निकल जाता है और अनुभव हो जाता है।

मुमुक्षु: दुरुपयोग है इसलिये निकल जाता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ), वह रहता नहीं फिर विकल्प। मेरे विशेष में सामान्य ज्ञात होता है, मेरे विशेष में विशेष ज्ञात नहीं होता। पर तो ज्ञात नहीं होता परंतु मेरे विशेष में सामान्य ज्ञात होता है ऐसा जो विकल्प, एक अपेक्षा से वह सदुपयोग है, उसकी अपेक्षा से। परंतु वह विकल्प भी खटकता है, खटकता है! उस विकल्प की भी अधिकता नहीं आती। यदि अधिकता आ जाये तो निश्चयनय रहता नहीं। उस विकल्प की अधिकता नहीं होती।

मुमुक्षु: विकल्प में स्वभाव की अधिकता होती है।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव की अधिकता होती है इसलिए यह विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव अवश्य होता है उसे।

मुमुक्षु: नियम से होता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ), नियम से होता है।

मुमुक्षु: सोगानीजी को स्वभाव की अधिकता थी तो **अरे विकल्प! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेव के संगमे ले चल, वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अन्त कर डालेगा** (द्रव्य-दृष्टि प्रकाश, भाग १, पत्र ९, ५-७-१९५३)।

पू. लालचंदभाई: हाँ वो, बस! वह विकल्प का सदुपयोग मुझे ले जा वहाँ, बाकी दूसरे विकल्प को हम सत्कार नहीं देंगे, इसप्रकार। दूसरे विकल्पों का तो निषेध वर्तता ही है, स्वभाव से निषेध आ जाता है, स्वभाव से।

गुरुदेव ने जो स्वाध्याय की प्रथा की है, बहुत अच्छी प्रथा है। स्वभाव के लक्ष से ही स्वाध्याय करना, निमित्त के लक्ष से नहीं, भेद के लक्ष से नहीं, राग के लक्ष से नहीं, आहाहा! उघाड़ के लक्ष से नहीं। स्वभाव के लक्ष से स्वाध्याय करना। उसमें उर्ध्व आत्मा, आत्मा आना चाहिये, बस, तो ही स्वाध्याय सच्चा है।

मुमुक्षु: बाकी सब संयोग है। निमित्त, भेद वगैरह स्वभाव नहीं हैं।

पू. लालचंदभाई: संयोग हैं, स्वभाव नहीं हैं।

मुमुक्षु: आत्मा को छोड़कर सब संयोग हैं।

पू. लालचंदभाई: संयोग हैं। चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान उन्हें जानने से तुझे कुछ लाभ नहीं है। परद्रव्य हैं वे तो सब। चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान परद्रव्य हैं। आहाहा! एक बार परद्रव्य (है) आया, समाप्त! फिर 'परद्रव्य है' (ऐसे) विकल्प की तुझे कहां जरूरत है?

मुमुक्षु: ऐसी तो उसकी परिणति बन गई है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ) बन गई है।

मुमुक्षु: अनुभव के पहले ऐसी परिणति बन गई है, निर्विकल्पपने निषेध वर्तता है। बहुत अच्छा!

पू. लालचंदभाई: मेरे में जिसकी नास्ति है, एकबार 'मेरे में नास्ति है' ऐसा आ

गया विचार, फिर मेरे में नहीं है, मेरे में नहीं है, यह मेरे में नहीं है, पहला गुणस्थान मेरे में नहीं है, दूसरा मेरे में नहीं, तीसरा मेरे में नहीं, चौथा मेरे में नहीं - दुरुपयोग है तेरा। समुच्चयरूप से भगवान ज्ञायक सामान्य तत्त्व वह मैं हूँ, बाकी समस्त विशेष मुझे परद्रव्य है, परभाव है, हेय है। श्रीगुरु ने फरमाया, बस समाप्त! निषेध आया सो आया, निषेध का विकल्प भी नहीं अब। विधि के विकल्प आते हैं प्रभु! अब भी विधि के विकल्प आते हैं, प्रभु! छूटते नहीं हैं परंतु आपकी कृपा है न? आपकी कृपा है न? गुरु। हे गुरु, तेरी कृपा है न? छूट जायेंगे। उन (पर) गुरु की कृपा और इस गुरु की (मेरे आत्मा की) कृपा। यहाँ (मेरे में) मैंने लिया, यहाँ। हे गुरु! तेरी कृपा है न? यहाँ से मैंने बात की।

मुमुक्षु: छूटने के लिये ही आता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। स्वभाव के जोरवाले को विकल्प टूटेगा और अनुभव होगा। विभाव का जोर है जिसे (उसका विकल्प टूटेगा नहीं)। आहाहा! व्यवहारनय तो पहले से ही छुड़ाते आए हैं, समयसार में (कलश ७०)। आहाहा! यहाँ तो शुद्धनय के पक्ष में आया, उससे क्या? उससे 'अब ये विकल्प टूटे कैसे' उसकी विधि है इसमें (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव** में)।

मुमुक्षु: निषेध का विकल्प आया वह दुरुपयोग है। गजब बात है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। मैं कर्म से बंधा नहीं हूँ, मैं कर्म से बंधा नहीं हूँ, मैं कर्म से बंधा नहीं हूँ, दुरुपयोग है तेरा। तुझे इसमें ही रहना (बताता है) कि शंका है अभी, सशंक है तू। कर्म से बंधा हूँ उसका बारंबार निषेध करता है उसका अर्थ कर्म से बंधा हुआ हूँ, ऐसा आ गया। 'मैं नारकी नहीं हूँ', 'मैं तिर्यंच नहीं हूँ' (ऐसा) कभी विकल्प उठता है?

मुमुक्षु: नहीं साहेब!

पू. लालचंदभाई: उठता है किसी को विकल्प? एकबार गुरु ने कहा 'मैं कर्म से बंधा नहीं हूँ', (तो) मैं अबद्ध हूँ (ऐसे निर्णय हो गया), समाप्त!

मुमुक्षु: व्याख्यान में आया था, मैं चोर नहीं हूँ, आज सुबह। मैं चोर नहीं हूँ, मैं चोर नहीं हूँ, मैं चोर नहीं हूँ।

पू. लालचंदभाई: साहूकार व्यक्ति ऐसे बात करे?

मुमुक्षु: बिल्कुल नहीं करे साहेब!

पू. लालचंदभाई: इतना तो उसे सविकल्प भेदज्ञान हो जाता है। ऐसा तो सविकल्प भेदज्ञान आता है पहले। स्वभाव के विकल्प आते हैं वे खटकते हैं उसे। आहाहा! विशेष में सामान्य ज्ञात होता है वह भी खटकता है।

मुमुक्षु: खटकता है तब निकलता है न? आत्मार्थी को खटकता ही है।

पू. लालचंदभाई: खटकता है, आत्मार्थी को खटकता है। ऐई! सुना?

मुमुक्षु: परम सत्य। खटकता ही है।

पू. लालचंदभाई: मुझे मेरे ज्ञान में आत्मा जानने में आता है, ऐसा विकल्प खटकता है। है बात सत्य, परंतु है विकल्प। आहाहा! यह (**द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव**) तो अंतिम सीमा की बात है इसमें। सूक्ष्म विकल्प रहते हों, (वे) टूटकर (अनुभव होता है)।

मुमुक्षु: खटके का व्यय, खटक-अतिक्रांत का उत्पाद।

पू. लालचंदभाई: उत्पाद हो जाता है, बस। चलो आगे।

मुमुक्षु: **जो आत्मा स्वभाव से ही शुद्ध है उसे किसी नय द्वारा शुद्ध कहना वह सही नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: कहाँ आया?

मुमुक्षु: पंद्रहवें पेज पर दूसरा पैराग्राफ।

पू. लालचंदभाई: पंद्रहवा पेज, ठीक है, दूसरा पैराग्राफ। **जो आत्मा स्वभाव से ही शुद्ध है उसे**।

मुमुक्षु: **जो आत्मा स्वभाव से ही शुद्ध है उसे किसी नय के द्वारा शुद्ध कहना वह सही नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: स्वभाव से ही शुद्ध हूँ, अनादि-अनंत। निश्चयनय से शुद्ध का क्या काम है? आहाहा! वह तो जो शुद्धआत्मा को अशुद्ध मानता था उसे समझाने के लिये कहा कि आत्मा निश्चयनय से शुद्ध है वह ग्रहण कर तू, ऐसा। अशुद्धता का शल्य था न कि संसारी जीव अशुद्ध है? कि संसारी जीव शुद्ध है, ऐसा। अंतिम कोटि की बात है यह, रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है।

मुमुक्षु: **आत्मा निश्चयनय से शुद्ध है, वह कथन सत्य है परंतु उसमें अनुभव नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: कथन सच्चा है। आत्मा अशुद्ध है वह तो कथन भी झूठा है।

आत्मा निश्चयनय से शुद्ध है, वह कथन तो सच्चा है। **परंतु उसमें**..

मुमुक्षु: **परंतु उसमें अनुभव नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: **अनुभव नहीं है।** आहाहा!

मुमुक्षु: **परंतु उस कथन द्वारा स्वभाव का मात्र अनुमान ही हो सकता है।**

पू. लालचंदभाई: **हो सकता है।** कथन द्वारा, विकल्प द्वारा, दूसरा उपाय नहीं है।

मुमुक्षु: **आत्मा निश्चयनय से शुद्ध है ऐसा नहीं, परंतु स्वभाव से ही शुद्ध है। सीधे स्वभाव को ही देखो तो नय के माध्यम द्वारा जो विकल्प आते थे, वे विकल्प छूट जायेंगे।** परम सत्य। अक्षरश: परम सत्य है।

पू. लालचंदभाई: जो अभी तुमने बोला न? वह ही विचार मुझे आया, वह ही विचार आया। वह ही तुम्हारी वाणी में आया। क्योंकि मेरा कहा हुआ है इसलिये मैं कुछ कैसे बोलूँ? ऐसा।

मुमुक्षु: आहाहा! अक्षरश: परम सत्य है।

पू. लालचंदभाई: फिर से, **आत्मा निश्चयनय से**...

मुमुक्षु: **आत्मा निश्चयनय से शुद्ध है ऐसा नहीं, परंतु स्वभाव से ही शुद्ध है। सीधे स्वभाव को ही देखो तो जो नय के माध्यम द्वारा विकल्प आते थे, वे विकल्प छूट जायेंगे।**

पू. लालचंदभाई: **छूट जायेंगे।** स्वभाव से देखो तो विकल्प छूट जायेंगे। नय से देखा करोगे तो विकल्प रहेंगे।

मुमुक्षु: **स्वभाव से विचारने पर**...

पू. लालचंदभाई: स्वभाव से विचारने पर और स्वभाव से अनुभव करने पर, इन दोनों में फर्क है। स्वभाव से विचारने पर- वह मानसिक है। **स्वभाव से विचारने पर बीच में जो नय आती थी वह निकल जायेगी**, स्वभाव के जोर से।

मुमुक्षु: वाह वाह! बहुत अच्छा!

पू. लालचंदभाई: और क्या रह जायेगा?

मुमुक्षु: **अकेला ज्ञान रह जायेगा।**

पू. लालचंदभाई: विकल्प बिना का ज्ञान।

मुमुक्षु: ज्ञान तो विकल्प बिना का ही होता है न?

पू. लालचंदभाई: होता है न! **अकेला ज्ञान रह जायेगा।**

मुमुक्षु: **अकेला ज्ञान रह जायेगा और अनुभव हो जायेगा।**

पू. लालचंदभाई: **अकेला ज्ञान रह जायेगा और अनुभव हो जायेगा।** अकेले ज्ञान में ही अनुभव होता है न? राग मिश्रित, विकल्प मिश्रित ज्ञान में कहीं अनुभव नहीं होता।

मुमुक्षु: अकेले ज्ञान में, शुद्ध ज्ञान में।

पू. लालचंदभाई: अकेले ज्ञान में, सम्यग्ज्ञान में।

मुमुक्षु: शुद्ध ज्ञान में।

पू. लालचंदभाई: शुद्ध ज्ञान में, स्वसंवेदन ज्ञान में, अतीन्द्रियज्ञान में।

मुमुक्षु: **स्वभाव से** ही **स्वभाव का विचार करो (और) नय के माध्यम को-विकल्प को रहने दो। स्वभाव से स्वभाव विचारो (और) नय के माध्यम को-विकल्प को रहने दो।**

पू. लालचंदभाई: **रहने दो। 'मैं स्वभाव से हूँ शुद्ध हूँ',** परिपूर्ण हूँ। बस! नय का क्या काम है? आगे। कोई पल था, बस दूसरा कुछ नहीं, पल था।

मुमुक्षु: यह तो ज्ञानियों का शुद्ध अनुभव है।

उत्तर- अनुभव की विधि है इसमें, खुल्लम खुल्ला।

मुमुक्षु: खुल्लम खुल्ला, कुछ भी छुपाये बिना।

पू. लालचंदभाई: गुप्त नहीं, एक एक व्यक्ति के कान में मंत्र देना, ऐसा नहीं। खुल्लम खुल्ला।

मुमुक्षु: खुली रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है, खुली रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है।

पू. लालचंदभाई: खुली, हाँ।

मुमुक्षु: गुरुदेव कहते (थे कि) 'नागा बादशाह थी आघा', ऐसी बात है।

मुमुक्षु: **'मैं स्वभाव से ही शुद्ध हूँ' -उसमें व्यवहारनय से अशुद्ध हूँ, वह दोष छूट जाता है और निश्चयनय से शुद्ध हूँ वह विकल्प छूट जाता है।** यह तो क्या मंत्र है! बहुत सुंदर।

मुमुक्षु: वह दोष, यह विकल्प।

पू. लालचंदभाई: फिर से।

मुमुक्षु: **'मैं स्वभाव से ही शुद्ध हूँ', 'मैं** तो **स्वभाव से ही शुद्ध हूँ'।**

पू. लालचंदभाई: into comma (इन्टू कोमा है, उद्धरणों में) **'मैं स्वभाव से ही शुद्ध हूँ'- उसमें**...

मुमुक्षु: **-उसमें व्यवहारनय से अशुद्ध हूँ, वह दोष छूट जाता है।**

पू. लालचंदभाई: **छूट जाता है और...**

मुमुक्षु: **और निश्चयनय से शुद्ध हूँ- वह विकल्प छूट जाता है।**

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय से शुद्ध हूँ- वह दोष था, विकल्प वह दोष था न? वह दोष छूटा और यह विकल्पात्मक दोष भी छूट जाता है, अनुभव में।

मुमुक्षु: बहुत सुंदर!

पू. लालचंदभाई: बोल्ड टाइप से है न? छह महीने बाद यह सभी को मिलेगा। पहले **इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं है** उसका खूब प्रचार हो। बाकी बाद में।

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट १६-१९
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट, गुजरात
तारीख: १८-१-१९९१

प्रवचन LA-०६८

आज पर्याय स्वभाव का प्रकरण आनेवाला है। एक द्रव्य स्वभाव है और एक पर्याय स्वभाव है। द्रव्य स्वभाव भी स्वभाव से अनादि-अनंत है। द्रव्य का अपना निज भाव - निज स्वभाव भाव, स्वभाव से ही अनादि-अनंत है। उसमें कभी किसी भी कारण से फेरफार नहीं हो सकता। उसमें फेरफार होना अशक्य है। जो है, कल था, आज है और भविष्यकाल, अनंतकाल में भी ऐसा का ऐसा द्रव्य स्वभाव रहेगा।

द्रव्य स्वभाव निरपेक्ष है। उसे किसी संयोग की, किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं है। उसे कर्म का बंध होता नहीं। उसे कर्म का उदय आता नहीं। वह द्रव्य स्वभाव कर्म के उदय में जुड़ता नहीं। वह नये कर्म को बांधता नहीं और बंधते हैं उसमें निमित्तपना भी इसमें नहीं है। ऐसा एक द्रव्य स्वभाव अनादि-अनंत परमात्मा का स्वभाव है। और अंदर में देखें तो वह परिणाम से भी निरपेक्ष है। कि जिसके कारण परिणाम बिगड़े या सुधरे, परिणाम घट जाये या बढ़ जाये, परिणाम स्वभाव में चाहे जितना फेरफार होवे, तो भी उस परिणाम से आत्मा रहित होने से निरपेक्ष है, उसकी बिल्कुल अपेक्षा उसे नहीं है।

द्रव्य स्वभाव पर्याय को छूता नहीं है। ऐसा द्रव्य स्वभाव त्रिकाली है कि जो परिणाम होते हैं उन्हें करता भी नहीं और परिणाम होते हैं उन्हें जानता भी नहीं। ऐसा द्रव्य स्वभाव निष्क्रिय परमात्मा है। वह पारिणामिक भाव से विराजमान है। उसे किसी कर्म के उदय आदि की अपेक्षा नहीं है, क्षय की अपेक्षा नहीं है। निगोद की

पर्याय के समय जो द्रव्य स्वभाव है, साधक की अवस्था के समय भी ऐसा का ऐसा है। वह परमात्मा अरिहंत और सिद्ध होता है तो भी वैसा का वैसा है। किंचित मात्र न घटता है न बढ़ता है, न घटे न बढ़े ऐसा अघटित घाट अनादि-अनंत परमात्मा का स्वभाव है। अनंत गुणों का पिंड परमात्मा है।

वह निष्क्रिय है, क्रिया के कारक उसमें नहीं हैं। स्वभाव से ही अकारक और अवेदक है। किसी भी होते हुये परिणाम को करता नहीं और होते हुये परिणाम को भोगता नहीं। अज्ञान दशा में हो तो अज्ञान भाव को करता नहीं और अज्ञान का फल दुःख वह भोगता नहीं। साधक दशा होती है पर्याय में तो वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम प्रगट होते हैं, उन्हें करता नहीं और उनका फल आंशिक आनंद आता है पर्याय में, उसे वह भोगता नहीं।

और साधक होकर वह परमात्मा होता है, पर्याय से - बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा, तब केवलज्ञान आदि पर्याय को करता नहीं और यथाख्यात चारित्र का फल जो पूर्ण आनंद उसे वह भोगता नहीं। ऐसा अकारक-अवेदक त्रिकाल सामान्य एकरूप स्वभाव है, उसे दृष्टि का विषय कहा जाता है, अथवा उसे शुद्धनय का विषय भी कहा जाता है। अथवा जो उपादेय तत्त्व है अनादि-अनंत, ऐसा त्रिकाली सामान्य एकरूप स्वभाव, जिसे अपनी विशेष पर्याय में ऐसा स्वभाव लक्ष में आता है तब उसे आत्मा का अनुभव होता है, दर्शन होते हैं आत्मा के, भगवान के। तब पर्याय अपेक्षा से उसे मोक्षमार्ग प्रगट हुआ कहा जाता है।

द्रव्य स्वभाव से तो तीनोंकाल मुक्त है। वह बंधा नहीं है, बंधता है वह मुक्त होता है। बंधा नहीं है इसलिये मुक्त भी होता नहीं है। परमात्मप्रकाश में (गाथा ६८ में) कहते हैं बंध मोक्ष से आत्मा रहित है। श्रीमद् राजचंद्रजी (व्याख्यानसार-१, बोल ८०) कहते हैं कि दिगंबर के आचार्यों ने ऐसा कहा है कि **जीव का मोक्ष नहीं होता, मोक्ष समझ में आता है**। अर्थात् तीनोंकाल मुक्त है, ऐसा समझ में आता है, ऐसा जानने में आता है, ऐसा हमें अनुभव में आता है, इसप्रकार। जीव का मोक्ष नहीं होता, मोक्ष समझ में आता है, है वह जानने में आता है। जीव का मोक्ष नहीं होता, यदि जीव का मोक्ष होवे तो जीव बंधा हुआ हो तो छूटे। परंतु जीव तो अबद्ध स्वभावी अनादि-अनंत। भावकर्म का भी बंध नहीं है, द्रव्यकर्म का भी बंध नहीं है, संयोग का भी संबंध नहीं है। ऐसा द्रव्य स्वभाव त्रिकाली सामान्य एकरूप है।

अब उसे कहते हैं कि यहाँ तो आगे बढ़कर ऐसा जो है, ऐसे आत्मा के मूल स्वभाव को जो जानता नहीं, ऐसे अज्ञानी प्राणियों को, नय के द्वारा उस स्वरूप को समझाते हैं संत। कि निश्चयनय से अकारक-अवेदक है, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से देखने में आये तो अकारक-अवेदक है, निष्क्रिय है। इसप्रकार नय द्वारा वस्तु के स्वरूप को वे समझाते हैं। समझाने के लिये नय का प्रयोग यथार्थ है। क्योंकि जो जीव वस्तु के स्वरूप को नहीं समझता, नहीं जानता, वास्तव में कभी सुना नहीं रुचिपूर्वक, अनुभव तो हुआ नहीं, ऐसे जीवों को समझाने के लिये संत करुणा करके, अपना नुकसान होता दिखाई दे तो भी, वे सविकल्प में आकर नयों के दो भेद करके समझाते हैं कि एक नय तो अन्यथा कथन करता है, व्यवहारनय तो, उसकी बात तो क्या करनी हमें? परंतु निश्चयनय यथार्थ स्वरूप को बताता है। और हम निश्चयनय से समझाते हैं वह समझनेवाले को ख्याल में भी आता जाता है कि आप ऐसा कहना चाहते हो। कहनेवाले का आशय लायक श्रोता समझ सकता है। समझकर व्यवहार का पक्ष छोड़ देता है। बुद्धिपूर्वक व्यवहार का जो पक्ष था वह छोड़ देता है। बुद्धिपूर्वक निश्चयनय के पक्ष में आ जाता है और फिर पक्षातिक्रांत होकर अनुभव करता है।

तब श्री गुरु को नमस्कार करता है कि आपने जो मुझे नय के द्वारा वस्तु का स्वरूप समझाया और मैंने अपने मानसिक ज्ञान में ग्रहण किया। फिर मानसिक ज्ञान छूट गया और आत्मिक ज्ञान में, जो मानसिक ज्ञान में आया था, जो आपने कहा था, आपने कहा था, मानसिक ज्ञान में आया था, ऐसा ही आत्मा मुझे आज अनुभव में आया। आपका वचन प्रमाण है।

ऐसा करके वह स्वभाव के सन्मुख होकर और द्रव्य स्वभाव को पर्याय में, विशेष में सामान्य को ग्रहण करता है। उस विशेष में जहाँ सामान्य का ग्रहण हुआ वहाँ उस विशेष की उस काल की योग्यता, शुद्धता होनेवाली थी वह हुई। सामान्य को ग्रहण किया इसलिए शुद्धता प्रगट हुई ऐसा भी नहीं है। वह उसका शुद्धता का स्वकाल था, अशुद्धता छूटने का स्वकाल था। उस विशेष में, उस विशेष में, इन्द्रियज्ञान में राग और देह, वे जानने में आते थे उसे बंद किया। और उस विशेष में सामान्य जानने में आने लगा तब इसका स्वकाल शुद्धता का था, (तब) इसके आश्रय से शुद्धता प्रगट हुई ऐसा उपचार से कहने में आता है। ऐसा द्रव्य स्वभाव है अनादि-

अनंत। अब **पर्याय स्वभाव** की बात शुरू होती है।

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव का एकदम स्पष्ट।

पू. लालचंदभाई: स्पष्ट। बहुत दिनों से चलता है न? इसीलिए short (शॉर्ट, संक्षेप)में।

मुमुक्षु: **'पर्याय स्वभाव'। सिद्धांत:- वस्तु कभी भी अपना स्वभाव छोड़ती नहीं। वस्तु के दो विभाग।**

पू. लालचंदभाई: पहले वस्तु कही। उस वस्तु में द्रव्य पर्याय स्वरूप दोनों आ गये। वस्तु गुणपर्ययवत् द्रव्यं (मोक्षशास्त्र अध्याय ५, सूत्र ३८), वह सिद्धांत कहा। वस्तु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती। अब वह वस्तु कैसी है? वस्तु के दो विभाग। वस्तु एक उसके विभाग दो, भेद दो।

मुमुक्षु: **१. द्रव्य स्वभाव:- निष्क्रिय स्वरूप अपने अनादि-अनंत अकर्ता स्वभाव को छोड़ता नहीं और कभी भी कर्ता होता नहीं।**

पू. लालचंदभाई: यह द्रव्य स्वभाव। पहला शब्द निष्क्रिय आया। क्योंकि 'निष्क्रिय: शुद्धपारिणामिक:' (गाथा ३२०, समयसार, तात्पर्यवृत्ति टीका, जयसेनाचार्य) उसका मूल स्वभाव है। उसका लक्षण है वह। निष्क्रिय है वह द्रव्य स्वभाव का लक्षण है।

मुमुक्षु: **२. पर्याय स्वभाव:- पर्याय भी एक वस्तु है। सत् अहेतुक है। पर्याय स्वभाव से ही क्रियावंत है। अनादि-अनंत वह अपने क्रिया के कारक को छोड़ती नहीं। पर्याय में क्रिया-(सामान्य उत्पाद-व्ययरूप क्रिया, पराश्रित या स्वाश्रित ऐसा भेद अभी नहीं करना) -प्रति समय हुआ ही करती है।**

पू. लालचंदभाई: उत्पाद-व्यय हुआ ही करता है।

मुमुक्षु: **वह उसका स्वभाव ही है।**

पू. लालचंदभाई: उसका स्वभाव है। उत्पाद-व्यय भी पर्याय का स्वभाव है, वस्तु का स्वभाव है। किसी समय पर्याय में उत्पाद-व्यय न हो ऐसा बनता नहीं। और ध्रुव में उत्पाद-व्यय हो जाये ऐसा किसी काल में बनता नहीं। यह जैनदर्शन वस्तु-दर्शन है। इसके दो भेद, द्रव्य स्वभाव और (पर्याय स्वभाव)। द्रव्य निष्क्रिय और पर्याय सक्रिय, अनादि-अनंत दोनों। अपने अपने धर्म को, स्वभाव को छोड़ते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु: और एक दूसरे के धर्म को कोई ग्रहण करता नहीं है।

पू. लालचंदभाई: ग्रहण करता नहीं, छूता नहीं। दो सत् अलग-अलग हैं, सामान्य और विशेष अलग-अलग हैं।

मुमुक्षु: वास्तविक वस्तु की स्थिति का सिद्धांत।

पू. लालचंदभाई: प्रमाण से एक सत्ता है, नय विभाग से देखो तो दो सत्ता हैं। आहाहा! स्वभाव से देखो तो भी दो सत्तायें हैं, अलग-अलग। आहाहा! अभेदनय से एक सत्ता है, भेदनय से दो सत्ता हैं। वस्तु का स्वरूप है ऐसा।

मुमुक्षु: **होती हुई क्रिया को मैं करूँ वह अज्ञान। होती हुई क्रिया को मैं रोकूँ वह भी अज्ञान। पर्याय में कर्ता-भोक्ता धर्म स्वभाव से ही है। पर्याय करती है और भोगती है वह उसका स्वभाव ही है।**

पू. लालचंदभाई: मिथ्यात्व को करे और दुःख को भोगे वह पर्याय का स्वभाव है, विभाव स्वभाव। सम्यग्दर्शन को करे पर्याय और आनंद को भोगे वह भी पर्याय का स्वभाव है। वह विभाव कहलाता है, समझ गये? चारों पर्यायें विभावरूप हैं - उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम, (औदयिक)। विभाव भी उसका स्वभाव है। राग होना ऐसा जो विभाव वह पर्याय का तत् समय का स्वभाव है। स्वभाव अर्थात् धर्म, ऐसा। किसी से नहीं होता, निमित्त से नहीं होता और आत्मा से भी नहीं होता राग।

मुमुक्षु: **पर्याय करती है और भोगती है वह उसका स्वभाव ही है। किस नय से पर्याय को करता है और भोगता है ऐसा नहीं। बस स्वभाव से ही उसमें कर्ताभोक्तापना है।**

पू. लालचंदभाई: अज्ञानी हो, साधक हो, परमात्मा हो, पर्याय में कर्ता और भोक्तापना पर्याय का स्वभाव से ही हुआ करता है, बस। होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है। जाननहार को जिसने जाना उसे ऐसा भासित होता है कि होने योग्य होता है। उसका स्वभाव है पर्याय का, करती है और भोगती है। आहाहा! जैसे परिणाम को वह करती है वैसे परिणाम को वह भोगती है। आहाहा! वह परिणाम को करे और भोगूँ मैं- ऐसा नहीं है। जो करता है वह भोगता है, जो करता नहीं वह भोगता नहीं। आत्मा तो करता नहीं है, वह दुःख को कहाँ से भोगे? यह भेदज्ञान है, द्रव्य पर्याय के बीच का भेदज्ञान है, उत्कृष्ट भेदज्ञान है।

मुमुक्षु: **अज्ञान दशा में राग को करता है और दुःख को भोगता है।**

पू. लालचंदभाई: कौन, अज्ञान दशा में राग को करे और (दुःख को) भोगे कौन?

मुमुक्षु: पर्याय।

पू. लालचंदभाई: पर्याय, जीव नहीं?

मुमुक्षु: नहीं। उसमें धर्म ही नहीं है करने-भोगने का जीव में तो।

पू. लालचंदभाई: अच्छा!

मुमुक्षु: **अज्ञान दशा में राग को करता है और दुःख को भोगता है।**

पू. लालचंदभाई: यह पर्याय स्वभाव की बात चल रही है, यह ध्यान रखना, प्रकरण बदल गया।

मुमुक्षु: हाँ! पर्याय स्वभाव की। **साधक दशा में, वीतरागता और राग को करता है, और आनंद और दुःख को भोगता है।** साधक है न?

पू. लालचंदभाई: साधक दशा है, दो धर्म लिये न? वीतरागता भी करता है और राग को भी करता है। दुःख को भोगता है और आनंद को भोगता है। एक पर्याय में दो भाग पड़ गये, थोड़ा वीतरागभाव, थोड़ा रागभाव।

मुमुक्षु: बोलो कैसी बात है न? साधक दशा में ऐसा पर्याय स्वभाव है?

पू. लालचंदभाई: पर्याय स्वभाव ऐसा ही है। क्योंकि जो अज्ञान दशा में पर्याय स्वभाव जैसा है ऐसा साधक दशा में होता नहीं है।

मुमुक्षु: सही है! यह तो पर्याय स्वभाव है।

पू. लालचंदभाई: पर्याय स्वभाव है वह वीतरागभाव को करता है और राग को करता है। थोड़ा राग को करता है, पराश्रित पर्याय है वह राग को करती है, और स्वाश्रित पर्याय वीतरागभाव को करती है। और वह पर्याय जितना राग करती है उतना दुःख भोगती है। और पर्याय जितना वीतरागभाव को करती है उतना सुख भोगती है। जैसा उसे करना हो ऐसा करे। आहाहा! होने योग्य होता है।

मुमुक्षु: वीतरागता भी होने योग्य होती है और राग भी होने योग्य होता है।

पू. लालचंदभाई: होता है। आत्मा अकारक और अवेदक है, मूल बात यह है। पर्याय करती है तब द्रव्य अकर्ता रहता है, ऐसा। पर्याय जब करती है अपने कार्य को, तब हस्तक्षेप कोई नहीं करता। द्रव्य उसका दाता नहीं है।

मुमुक्षु: **साध्य दशा में पूर्ण वीतरागता को करता है और पूर्ण आनंद को**

भोगता है।

पू. लालचंदभाई: साध्य अर्थात् मोक्ष। पूर्वोक्त साधक अवस्था थी। पहली अज्ञान, फिर साधक और फिर साध्य, पर्याय के तीन प्रकार किये। मीठाभाई! पहली लाइन है वह अकेला अज्ञान। दूसरी दशा में साधक और तीसरी में साध्य। बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन विभाग करके समझाते हैं। साध्य अर्थात् मोक्ष, ऐसी जो दशा होती है जीव की, तब **पूर्ण वीतरागता को करता है**। कौन करता है? पर्याय करती है। और पूर्ण आनंद को भोगता है कौन? पर्याय भोगती है। भगवान आत्मा नहीं भोगता। **इसप्रकार** ...

मुमुक्षु: **इसप्रकार पर्याय अपने कर्ताभोक्ता धर्म को कभी भी छोड़ती नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! सोलहवाँ पेज अंतिम लाइन से। **साध्यदशा में पूर्ण वीतरागता को करती है और पूर्ण आनंद को भोगती है।** पर्याय हों! पर्याय स्वभाव की बात चल रही है। आत्मा नहीं करता-भोगता। आत्मा कर्ता-भोक्ता है ऐसी भ्रांति अनादिकाल से है, तो भी आत्मा कर्ता होता नहीं है, अकर्तापना छोड़ता नहीं है।

कर्ता प्रतिभासित होता है अज्ञानी को, कि राग को मैं करता हूँ, ऐसा प्रतिभासित होता है तो भी भगवान आत्मा राग को करता नहीं है। उस समय अज्ञान दशा में भी पर्याय राग को करती है। अज्ञान दशा पहली ली, फिर साधक की ली और फिर साध्य, तीन विभाग किये। राग को न करे तो कुछ नहीं परंतु केवलज्ञान को करता है या नहीं आत्मा? कि नहीं करता!

मुमुक्षु: नहीं करता। वह तो पर्याय का स्वभाव है। करना आत्मा का स्वभाव ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: नहीं है। निष्क्रिय है वह तो पहले कह दिया।

मुमुक्षु: अनादि-अनंत अकर्ता स्वभाव को छोड़ता नहीं।

पू. लालचंदभाई: हाँ, छोड़ता नहीं। यह घोटाला कहाँ हुआ है? और इस घोटाले का समाधान कुंदकुंद भगवान ने कहा, महापुरुष एक। गड़बड़ क्यों हुई? पर्याय को करता है और भोगता है, ऐसा अनादि से अज्ञान का प्रवाह चल रहा है। आत्मा ही करता है और आत्मा ही भोगता है अकेला। आत्मा अकेला करता है और

अकेला भोगता है। अज्ञान दशा में अकेला, साधक दशा में अकेला और पूर्ण परमात्मा होवे तब भी अकेला। ऐसा संत लिखते हैं, अकेला करता है और अकेला भोगता है। यह सब आगम में है। वह कहते हैं, कुंदकुंदाचार्य भगवान ने कलम चलायी कि व्यवहारनय समस्त ही अभूतार्थ है। वे उपचार के कथन हैं। मिथ्यात्व के परिणाम को जीव करता है वह उपचार का कथन है, व्यवहार का कथन। सम्यग्दर्शन की पर्याय को करता है आत्मा, वह उपचार का कथन है। केवलज्ञान को करता है, उपचार का कथन है। वह उपचार जो व्यवहार है वह तुझे सत्यार्थ लगा है इसलिये तेरा अज्ञान रह गया।

गुरुदेव ने वे दो विभाग अलग किये -द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव। यह जो द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव की बात (प्रवचन रत्नाकर के) ११ भाग तुम पढ़ो तो उसमें मिलेगी। यह तो ११ में से सार निकालकर हमने अलग बाहर रखा, लोगों का ध्यान खिंचे इसलिये।

करती है और भोगती है - किस नय का कथन है? कि भाई अशुद्ध निश्चयनय का कथन। अशुद्ध निश्चयनय का कथन अर्थात् पर्यायार्थिकनय का कथन अर्थात् व्यवहारनय का कथन, इसप्रकार शास्त्र में सब आता है स्पष्टीकरण। परंतु व्यवहार के पक्षवाले को वह व्यवहार सत्यार्थ लगा, इसलिये अज्ञान रह गया।

मुमुक्षु: अशुद्ध निश्चयनय कहा अर्थात् पर्याय स्वभाव हो गया।

पू. लालचंदभाई: हो गया। अर्थात् उपचार से, अर्थात् इसके ऊपर उपचार आया। कुंभार तो घड़े की पर्याय को करता नहीं परंतु मिट्टी भी घड़े की पर्याय को करती नहीं। मिट्टी करे तो एक जैसे ही घड़े होने चाहिये, फेरफार होना (नहीं चाहिये)।

मुमुक्षु: परंतु करती ही नहीं है न मिट्टी?

पू. लालचंदभाई: उसके लिये यहाँ परमात्मप्रकाश की ६५ और ६८ गाथा चलती थी। और यह जयसेन आचार्य की ३२० गाथा अकारक-अवेदक की। कौन से साल में?

मुमुक्षु: ६७।

पू. लालचंदभाई: ६७ की साल में। उसे याद होता है।

मुमुक्षु: नहीं, ६७ तो आपकी थी। बाकी महाराज...

पू. लालचंदभाई: ६८ की साल में, कितने वर्ष हुये?

मुमुक्षु: बाईस।

पू. लालचंदभाई: बाईस साल पहले यह गाथा चलती थी तब आत्मा अकारक-अवेदक है, अपने परिणाम होने योग्य होते हैं, उन्हें करता नहीं है। उसका एक जबरदस्त अकाट्य दृष्टांत दिया। अकाट्य, कोई काट न सके। कि देखो, एक परमाणु लो, एक परमाणु में मुख्यरूप से चार गुण, स्पर्श, रस, गंध और वर्ण। तो वर्ण नाम की पर्याय लो, तो पहले समय काली थी, दूसरे समय सफेद हो जाती है, तीसरे समय लाल हो जाती है। अब उसे किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं है (क्योंकि) अलग परमाणु लिया है। गुण एक जैसा और पर्याय में फेरफार होने लगा, तो उस गुण से भी पर्याय होती नहीं है, द्रव्य से (भी) होती नहीं है, उसके स्वकाल में पर्याय होती है। ऐसा एक जबरदस्त सिद्धांत रखा उन्होंने। आहाहा! कर्ताबुद्धि छूट जाये! ज्ञाता हो जाये साक्षात्, परमात्मा हो जाये दृष्टि में, (पूर्ण) परमात्मा थोड़े टाइम में।

एक परमाणु लिया। स्कन्ध का परमाणु नहीं लिया, (स्कन्ध लिया होता) तो तो इसके निमित्त से यह हुआ और इसके निमित्त से यह हुआ। नहीं! एक पृथक परमाणु लो, उसमें वर्ण नाम का गुण लो, वर्ण नाम का एक गुण जो है उसकी एक समय की पर्याय काली और दूसरे समय सफेद हो जाती है, संख्यात गुणी सफेद, असंख्यात गुणी सफेद, अनंत गुणी सफेद हो जाती है, फिर उसमें भी वृद्धि-हानि हो जाती है। कौन करता है उसे?

मुमुक्षु: पर्याय करती है पर्याय को।

पू. लालचंदभाई: यदि गुण करे तो एक सी पर्याय होनी चाहिये, और काली के बाद सफेद नहीं ही होगी। यदि काली पर्याय को करे तो सफेद पर्याय नहीं होवे, काली ही किया करे। परंतु कर्ता नहीं है, गुण तो निष्क्रिय है। ऐसा दृष्टांत दिया था।

मुमुक्षु: आपने मुझे बाईस वर्ष पहले बताया था, मैंने तो तब ही लिख लिया था, तबसे मुझे याद है।

पू. लालचंदभाई: धुन चढ़ी थी गुरुदेव को उस गाथा में, ३२० गाथा में दृष्टांत दिया। आत्मा कर्ता नहीं है। आहाहा! जैसे चक्षु देखनेवाला है ऐसे आत्मा देखनेवाला जाननेवाला है, करनेवाला नहीं है। यह कर्ता-भोक्ता का शल्य जबरदस्त है। कोई तो ईश्वर को कर्ता मानता है, कोई कर्म को कर्ता मानता है और कोई स्वयं को कर्ता

मानता है, तीनों अज्ञानी हैं।

मुमुक्षु: तीनों अपसिद्धांत हैं।

पू. लालचंदभाई: अपसिद्धांत। कुंदकुंद भगवान द्रव्यलिंगी मुनि को कहते हैं, जैसे ईश्वर कर्तावादी है ऐसे तू यदि करेगा, कि 'मैं कर्ता हूँ पर को और अपने परिणाम को' तो तेरे में और ईश्वर के कर्तावादी में कोई अंतर नहीं है, अन्यमति हो! अन्यमति कह दिया। तेरा मोक्ष नहीं होगा, ऐसा। ऐसा कहा मोक्ष नहीं होगा।

मुमुक्षु: अर्थात् अपने परिणाम का कर्ता माने उसका मोक्ष नहीं होगा।

पू. लालचंदभाई: मौत होती है! मौत होती है! भावमरण होता है परंतु मोक्ष (नहीं होता)।

मुमुक्षु: गुरुदेवश्री का महासिद्धांत अच्छा फरमाया, आपने कहा न कि घोटाला क्यों हो गया? इस कारण से हुआ।

पू. लालचंदभाई: उपचार के कथन आते हैं, असीम शास्त्रों में, अकेला करता है और अकेला भोगता है। प्रवचनसार में, अमृतचंद्र आचार्य भगवान कहते हैं अरे! मैं अज्ञान अवस्था में था न? अमृतचंद्र आचार्य समर्थ! मैं अज्ञान अवस्था में था न, मैं अकेला परिणाम को करता था और परिणाम को भोगता था। अर्थात् वे परिणाम दूसरे से नहीं होते थे इतना उन्हें बताना था, पर से भिन्नपना। और फिर जब भेदविज्ञान हुआ, तब मैं अकेला ही मोक्षमार्ग में आया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम को अकेला करता हूँ और आनंद को अकेला मैं भोगता हूँ। आहाहा! ऐसे जो उपचार के कथन, व्यवहारनय के कथन, वे सत्यार्थ जिसे लगते हैं उसे सम्यग्दर्शन होनेवाला नहीं है। तीनकाल में नहीं होगा।

मुमुक्षु: किस प्रकार से हो? आत्मा ऐसा है नहीं।

पू. लालचंदभाई: आत्मा तो निष्क्रिय है। आत्मा को कर्ता माना। आत्मा को अकर्ता रखकर पर्याय पर्याय को करती है ऐसा जानो। ऐसा जानो कि मैं तो अकर्ता हूँ और परिणाम परिणाम से होता है, परिणाम परिणाम को करता है। बस! तो अकर्ता के पक्ष में तो आया, भले ही साक्षात् बाद में होवे परंतु अकर्ता में तो आया, इतना भेदज्ञान तो हुआ। आहाहा!

ये तीनों बातें ली हैं देखो! अज्ञान दशा, साधक दशा और परमात्म दशा। बहुत व्यवस्थित सब कुछ आता था! **इसप्रकार पर्याय** ...

मुमुक्षु: **इसप्रकार पर्याय अपने कर्ता-भोक्ता धर्म को कभी भी छोड़ती नहीं।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! करती ही है तीनोंकाल। आत्मा कर्ता है ऐसा जो कहा उसका अर्थ पर्याय करती है और पर्याय का आरोप आत्मा के ऊपर देकर आत्मा करता है, ऐसा आरोपित कथन, व्यवहार का कथन है, वास्तव में वह कथन सच्चा नहीं है।

मुमुक्षु: सच्चा नहीं है। ऐसा नहीं है। सही बात है। यह पर्याय स्वभाव बताकर यह बहुत स्पष्ट कर दिया है भाई! हों! यह पर्याय स्वभाव है।

पू. लालचंदभाई: पर्याय स्वभाव है। कर्ता का उपचार देंगे, व्यवहार के कथन तो अनेक प्रकार के आते हैं, उसमें क्या है?

मुमुक्षु: पर्याय स्वभाव है यह तो। अर्थात् द्रव्य स्वभाव नहीं है।

पू. लालचंदभाई: नहीं है! करना-भोगना वह तो पर्याय का स्वभाव है, जीव का स्वभाव नहीं है। जीव तो अकारक-अवेदक निष्क्रिय परमात्मा है। आहाहा! पर्यायरूप से परिणमता ही नहीं न, तो पर्याय को करे कहाँ से? तद्रूपो न भवति (समयसार गाथा ३२०, जयसेन आचार्यदेव की टीका) आहाहा! शिष्य के मुख में प्रश्न आया कि यह मिथ्यात्व अवस्था में राग को करता है जीव? कि झूठी बात है। कि झूठी बात हो तो कारण बताओ? हमने तो शास्त्र में जगह-जगह पढ़ा है कि अज्ञानी आत्मा राग को करता है, अज्ञानी का आत्मा राग को करता है। कि नहीं! तद्रूपो न भवति, उसरूप नहीं होता इसीलिये भगवान आत्मा राग को नहीं करता। (राग) होता है तब भी वह अकर्ता रहता है, वह टलता है तब अकर्ता हुआ ऐसा नहीं। मिथ्यात्व की पर्याय होती है तब मिथ्यात्व की पर्याय का भगवान आत्मा अकर्ता है। वह मिथ्यात्व की पर्याय टल जाती है तब अकर्ता हुआ, ऐसा नहीं है। वह तो प्रथम से ही अकर्ता है। आहाहा! ऐसा अकर्ता स्वभाव दृष्टि में आया उसे पर्याय दृष्टि छूटकर सम्यग्दर्शन होता ही है। आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय के ऐसे स्वभाव को जानने का निषेध नहीं है**।

पू. लालचंदभाई: पर्याय, पर्याय में ऐसे क्रिया के कारक हैं। पर्याय में मिथ्यात्व अवस्था मिथ्यात्व को करती है। (पर्याय) सम्यग्दर्शन को करती है, वह पर्याय केवलज्ञान को करती है। ऐसा पर्याय स्वभाव है उसे जानने का निषेध नहीं है, परंतु

'मैं करता हूँ' उसका निषेध है।

मुमुक्षु: बोलो! पर्याय का ज्ञान हो जाता है और द्रव्य-दृष्टि हो जाती है।

पू. लालचंदभाई: द्रव्य-दृष्टि होती है। होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है, वह यह है, वह यह है। पर्याय के ऐसे स्वभाव को, जो तीन प्रकार ऊपर कहे, अज्ञान अवस्था में, साधक अवस्था में या साध्य अवस्था में, पर्याय का जो ऐसा स्वभाव है उसे **जानने का निषेध नहीं है, परंतु उसमें मैंपने का निषेध है।** 'मैं करता हूँ' उसका निषेध है। आहाहा!

मुमुक्षु: भाई, होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है।

पू. लालचंदभाई: वही आया न? आहाहा! तीनलोक के नाथ की वाणी मे ... आहाहा! तो दिव्यध्वनि है। अधिक तो कहा नहीं जाता क्योंकि पंचमकाल है, हजम नहीं होता किसी को। तो भी हम तो किसी-किसी बार कह देते हैं। आहाहा! भविष्य में ऐसा तो होगा कि ये एक पुरुष हो गये, (वे) ऐसा कह गये हैं। बस है, किसी का काम होगा उसमें।

मुमुक्षु: यह तो परमाणु का दृष्टांत गुरुदेव की दिव्यध्वनि में आनेवाला है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! आनेवाला है, आनेवाला है। परमाणु का दृष्टांत बहुत अच्छा। गुण एक जैसा, पर्याय में फेरफार हुआ करता है। श्रद्धा नाम का गुण एक जैसा और पर्याय में मिथ्यात्व, पर्याय में उपशम सम्यक्, क्षयोपशम सम्यक्, क्षायिक सम्यक्। बोलो! पर्याय में फेरफार हुआ ही करता है। आहाहा! बोलो आगे।

मुमुक्षु: **मैं तो ज्ञायक हूँ। स्वभाव से ही अकारक और अवेदक हूँ। मेरापना यहाँ आया तो, द्रव्य स्वभाव को जानते-जानते, पर्याय के कर्ता-भोक्ता धर्म जैसे हैं वैसे जानने में आ जाते हैं।**

पू. लालचंदभाई: **जानने में आ जाते हैं।**

मुमुक्षु: **पर्याय के कर्ता-भोक्ता धर्म जैसे हैं वैसे जानने में आ जाते हैं।**

पू. लालचंदभाई: **जानने में आ जाते हैं**, उन्हें जानता नहीं है। जानने में आ जाते हैं, जनित जाते हैं। लक्ष नहीं है न वहाँ।

मुमुक्षु: और पर्याय के कर्ता-भोक्ता धर्म।

पू. लालचंदभाई: हाँ। पर्याय के कर्ता-भोक्ता धर्म हों!

मुमुक्षु: जैसे हैं वैसे जानने में आ जाते हैं। इसमें सब आ गया।

पू. लालचंदभाई: परिणाम होने योग्य होते हैं और जाननहार जानने में आता है।

मुमुक्षु: होने योग्य होता है वह जनाता नहीं है, जाननहार जनाता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ। जनाता है।

मुमुक्षु: **आत्मा व्यवहार से कर्ता भोक्ता नहीं है। वह तो पर्याय स्वभाव ही है।** ओहो! **आत्मा व्यवहार से कर्ता भोक्ता नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: निश्चय से तो कर्ता-भोक्ता नहीं है परंतु आत्मा उपचार से भी परिणाम का कर्ता-भोक्ता नहीं है।

मुमुक्षु: क्योंकि **वह तो पर्याय स्वभाव ही है।**

पू. लालचंदभाई: पर्याय स्वभाव है। वह जयपुर में कहा था कि निर्मल पर्याय का कर्ता उपचार से भी नहीं है। अर्थात् व्यवहार से भी सम्यग्दर्शन का कर्ता नहीं है। निश्चय से तो नहीं है आत्मा कर्ता परंतु व्यवहारनय से (भी) कर्ता नहीं है। व्यवहारनय से कर्ता नहीं है, तुझे यदि इतना लेना हो तो व्यवहारनय से ज्ञाता है- इतना ले, किन्तु कर्ता का शल्य निकाल दे। क्या कहा?

मुमुक्षु: व्यवहारनय से कर्ता हूँ उसका शल्य तो निकाल दे।

पू. लालचंदभाई: निकाल दे।

मुमुक्षु: ज्ञाता लेना हो तो ले।

पू. लालचंदभाई: ले, ले थोड़े time (टाइम, काल) के लिये, temporary (टेम्परेरी, अल्प काल के लिए) ऐसा कहते हैं, लेकिन कर्ता का शल्य तो छोड़ दे अभी।

मुमुक्षु: हाथ हिलाता हूँ ऐसा तो ले ही मत लेकिन हिलते हुये हाथ को जानता हूँ, थोड़े टाइम के लिये ये ले ले।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! पर्याय को मैं करता हूँ वह कर्ताबुद्धि छोड़ दे कि निश्चय से भी कर्ता नहीं हूँ और व्यवहार से भी कर्ता नहीं हूँ। तो व्यवहार करना हो तो क्या कहना? कि व्यवहार से उसे जानता है, इतना कह सकते हैं। आहाहा! वरना करता है, वह शल्य तो भाईसाहब निकाल देना। आहाहा! भाषा बोलता है व्यवहारनय से कर्ता और मानता है निश्चय से कर्ता, ऐसा मईल्ल धवल में पाठ आया है।

मईल्ल धवल में एक पाठ आया है कि जीव ऐसा कहते हैं कि व्यवहारनय से, देह है वह व्यवहारनय से मेरा है, निश्चयनय से मेरा नहीं है, ऐसा बोलते हैं भाषा में। परंतु वे जो बोलते हैं व्यवहारनय से मेरा है, वे निश्चयनय से मेरा मानते हैं। ऐसे व्यवहारनय से कर्ता हूँ परिणाम का, ऐसा जो भाषा में आया वह निश्चयनय से कर्ता है (ऐसा मानता है)। उसकी भाषा में ऐसा क्यों नहीं आया कि व्यवहारनय से ज्ञाता है? कर्ता का क्यों आया शल्य?

मुमुक्षु: कर्ताबुद्धि है इसलिये। बराबर है एकदम।

पू. लालचंदभाई: वाणी में कर्ता क्यों आया व्यवहारनय से? वाणी में ऐसा क्यों नहीं आया कि व्यवहारनय से उसे जानता है, परिणाम को?

मुमुक्षु: सही है। न्याय से बात है।

मुमुक्षु: ऐसा ले तो तो जानने के व्यवहार को उलंघ जायेगा।

पू. लालचंदभाई: हाँ! तो जानने के लिये नहीं रुकेगा, वह छूटकर अनुभव होगा। परंतु व्यवहार से मैं कर्ता हूँ वह छूटकर अनुभव नहीं होगा, क्योंकि ज्ञाता के पक्ष में भी नहीं आया।

मुमुक्षु: ज्ञाता के पक्ष में भी आया नहीं।

पू. लालचंदभाई: वह वाला पक्ष... सम्यग्दर्शन का कर्ता उपचार से भी नहीं है। और वह ही बात कुंदकुंद भगवान ने नियमसार में पाँच रत्न की (७७-८१) गाथा में कहा कि पर्याय का कर्ता व्यवहार से भी नहीं है। कर्ता ही नहीं है, निश्चय से या व्यवहार से कर्ता ही नहीं है क्योंकि होने योग्य परिणाम होते हैं, इसलिये कर्तापना इसे लागु नहीं पड़ता। व्यवहार से कर्ता मतलब निमित्तकर्ता हो जायेगा वह। मिट्टी घड़े की पर्याय को निश्चय से तो नहीं करती परंतु व्यवहार से करती है - व्यवहार से करती है मतलब मिट्टी कारण बन गई और घड़ा कार्य हो गया। कि कर्ता भी नहीं है और कारण भी नहीं है, अर्थात् निमित्त कारण उसमें नहीं है। उसकी मौजूदगी है, मिट्टी द्रव्य की, तो घट की पर्याय हुई ऐसा नहीं है। इसलिये उसमें कर्तापना भी नहीं है और कारणपना भी नहीं है अर्थात् निमित्तपने का भी उसमें अभाव। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु: कर्ता और कारण दो (शब्द) लिये, उसका रहस्य है।

पू. लालचंदभाई: रहस्य है। सम्यग्दर्शन का निश्चय से तो कर्ता नहीं है, व्यवहार से भी कर्ता नहीं है। व्यवहार से कर्ता नहीं है अर्थात् उसकी उपस्थिति है तो

यहाँ होता है, ऐसा नहीं है। वह है तो यहाँ होता है वह निमित्तपना उसमें है, ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्मा तो अनादि का था, क्यों सम्यग्दर्शन नहीं हुआ? अर्थात् आत्मा कर्ता भी नहीं है और निमित्त कारण भी नहीं है। अब यदि आत्मा कर्ता नहीं है तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता कौन है? कि पर्याय का कर्ता पर्याय है। आत्मा उसमें निमित्त नहीं है तो निमित्तकारण बताओ? कि कर्म का अभाव निमित्त है। यह बात १३ वीं गाथा में ली है।

मुमुक्षु: स्वयं और पर जिनके कारण हैं। स्वयं और पर जिनके कारण हैं।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। पर्याय का कारण पर्याय है, उसका क्षणिक उपादान। निमित्तकारण कर्म का अभाव है। नौ की नौ पर्याय में पुराने कर्म लेना, नये कर्म नहीं। नये कर्म के बंध में कारण होवे ऐसा पर्याय का भी स्वभाव नहीं है। निर्मल पर्याय हो वह पर्याय का स्वभाव है, तब कर्म के अभाव को निमित्तकर्ता कहने में आता है। उपादानकर्ता पर्याय और निमित्तकर्ता पुराने कर्म का अभाव। परंतु उपादानकर्ता भी आत्मा नहीं और निमित्तकर्ता भी आत्मा (नहीं)। क्योंकि आत्मा तो निमित्त पहले से ही था, क्यों सम्यग्दर्शन नहीं हुआ? सूक्ष्म बात है! आहाहा! चलो आगे। आगे चलो। कर्ता भी नहीं है और कारण भी नहीं है। आहाहा! (नियमसार में गाथा ७७-८१) में लिया है, कर्ता नहीं है, कारयिता नहीं है, अनुमोदक नहीं है और कारण भी नहीं है। आहाहा! पर्याय का कारण पर्याय ही है।

मुमुक्षु: वह पर्याय का स्वभाव ही है।

पू. लालचंदभाई: वह पर्याय का स्वभाव है। और तुझे यदि निमित्त चाहिए हो तो कर्म का सदभाव-अभाव ले ले, बस। लेकिन आत्मा को तो निमित्त मत बना। आत्मा का निमित्तपना टालने के लिये उसको निमित्त कहा, सापेक्ष। है तो वह भी निरपेक्ष, है तो वह भी निरपेक्ष। परंतु यह आत्मा निमित्तकर्ता नहीं है।

मुमुक्षु: पर्याय भी निरपेक्ष है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ), चलो आगे। **आत्मा व्यवहार से कर्ता भोक्ता नहीं है।**

मुमुक्षु: **वह तो पर्याय स्वभाव ही है।**

पू. लालचंदभाई: **वह तो पर्याय स्वभाव ही है।**

मुमुक्षु: **पर्याय स्वभाव ही है। कर्ता भोक्ता धर्म पर्याय में स्वभाव से ही**

हैं।

पू. लालचंदभाई: **स्वभाव से ही हैं।**

मुमुक्षु: **धर्मी तो मात्र पर्याय के धर्मों को जानता है। धर्मी तो मात्र पर्याय के धर्मों को जानता है। व्यवहारनय से भी मैं कर्ता भोक्ता नहीं हूँ। व्यवहारनय से भी मैं कर्ता भोक्ता नहीं हूँ।**

पू. लालचंदभाई: नहीं हूँ!

मुमुक्षु: **वह तो पर्याय में स्वभाव से ही कर्ता भोक्ता धर्म है।**

पू. लालचंदभाई: ऐसा मैं जानता हूँ। मैं कर्ता-भोक्ता हूँ- ऐसा जानने में नहीं आता। वैसे ही कर्ता-भोक्ता, उसका (पर्याय का) धर्म है, ऐसा मुझे ज्ञान में जनाता है। परंतु मैं कर्ता हूँ और मैं भोगता हूँ, ऐसा धर्मी को जनाता नहीं है। आहाहा! कहा न? बहुत होये खींचकर तो ज्ञाता हूँ ऐसा ले, परंतु कर्ता रहने दे। वह कहा था न, (उसका) खुलासा (है ये)।

मुमुक्षु: **आत्मा व्यवहारनय से कर्ता-भोक्ता है- ऐसा मत ले।**

पू. लालचंदभाई: ऐसा मत ले प्रभु! आहाहा! अब रहने दे न?

मुमुक्षु: अच्छा! बहुत अच्छी बात आनेवाली है। **आत्मा व्यवहारनय से कर्ता-भोक्ता है- ऐसा मत ले।**

पू. लालचंदभाई: मत ले प्रभु! आहाहा! **और** ...

मुमुक्षु: **और पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चयनय से है- ऐसा भी मत ले!**

पू. लालचंदभाई: मत ले!

मुमुक्षु: क्योंकि पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चयनय से है तो आत्मा व्यवहारनय से (कर्ता) है ऐसा आ जायेगा।

पू. लालचंदभाई: आ जायेगा, सापेक्ष है नय।

मुमुक्षु: नय लागू मत कर।

पू. लालचंदभाई: उसका स्वभाव, पर्याय को उसके स्वभाव से देख न? नय का क्या काम है तुझे? वास्तव में ऊँचा माल आ गया है। ऐसी पल थी, ३१ वीं December (दिसंबर १९८९). एक वर्ष और अठारह दिन हुये। अठारह तारीख है न आज। शांतिभाई झवेरी के घर नीलांबर में सुबह ६ बजे शुरू हो गई चर्चा। ६ बजते ही आ जाते थे सभी, घर के, कुटुंब के। आप भी थे। रात को सोते थे मेरे पास।

मुमुक्षु: आपकी कृपा से लाभ मिला।

पू. लालचंदभाई: मेरा बिस्तर होता है, उसके बराबर में इसका बिस्तर होता ही है, जहाँ भी जाएँ वहाँ। देवलाली दो महीने रहे, श्रवणबेलगोला (रहे)। आहाहा! रात के दो बजे बाथरूम जाने के लिये उठता हूँ। बैठ जाओ, जरा बैठो मेरे सामने। भाव आये हों, वह कह देता।

मुमुक्षु: मीठाभाई की भी पात्रता है न?

पू. लालचंदभाई: (हाँ), ग्रहण करते हैं। ग्रहण करते हैं। आहाहा! बहन, क्या कहें? निकट भव्य जीव हो न, वह स्वभाव के पक्ष में आ जाता है। फिर (पक्ष) छूट जाता है। ऐसा करके साष्टांग प्रणाम करता है।

मुमुक्षु: यह कड़ी घटती थी वह मिल जाए वह छूट ही जाता है।

मुमुक्षु: स्वभाव के पक्षवाला नीचे नहीं गिरेगा।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। व्यवहार के पक्ष में फँसा है न? निश्चय के पक्ष में आजा। वह निश्चय का पक्ष, विकल्प छूट जायेगा, रहेगा नहीं ज्यादा टाइम। स्वभाव का घोलन होता है न? निकटभवी हो, उसे निश्चय की बात अमृत जैसी लगती है। व्यवहार के पक्षवाले दूरभवी जीव को एकांत की दुर्गंध लगती है उस में, है सुगंध।

मुमुक्षु: सुवास! सुवास भरी हुई है।

पू. लालचंदभाई: सुवास भरी हुई बात है। आहाहा! उसके लक्खण से ख्याल आ जाता है कि यह निकट भव्य नहीं है। उसके लक्खण हैं वे। आता है न णाणदंसणलक्खणो (नियमसार गाथा १०२), शास्त्र का वचन है लक्खणो, लक्खणो। प्राकृत भाषा में लक्खणो। पुत्र के पैर पालने में पहचान लिये जाते हैं, पुत्र के पैर, समझ गये? उसका ख्याल आ जाता है कि यह निकट भव्य नहीं लगता है। निषेध करता है, निश्चयनय का। आदर न करे वहाँ तक दिक्कत नहीं है, परंतु निषेध करता है 'नहीं एकांत हो गया है यह', समझ लेना, समाप्त! नहीं बैठे तो विचारकोटि में रखना परंतु निश्चयनय के कथन को एकांत करके उड़ा मत।

मुमुक्षु: भूलचूक में भी उसका अनादर करने योग्य नहीं है।

पू. लालचंदभाई: अनादर मत कर, स्वभाव की बात है। निश्चयनय से आत्मा ज्ञायक है, ज्ञाता है, ज्ञायक है। वह तो स्वभाव की बात है, उसका निषेध मत कर भाई! आहाहा! तेरे आत्मा का निषेध है उसमें।

मुमुक्षु: गुरुदेव बाहर की बात आने पर, यह तो निश्चय है, निश्चय है - वह सोनगढ़ के एरिया के बाहर की बात आए (तब) अरेरे! प्रभु! तू क्या बात करता है? क्या करता है यह?

पू. लालचंदभाई: क्या करता है यह?

मुमुक्षु: सत्य बात को उड़ाता है!

पू. लालचंदभाई: गुरुदेव के प्रताप से ये सभी बातें ११ भाग में हैं, सभी बातें हैं। पर्याय स्वभाव की बात उन्होंने ही की है, षट्कारक स्वयं से होते हैं, उसका जन्मक्षण है, उसका स्वकाल है। आत्मा से पर्याय होती नहीं है। ये सभी बातें, ये सारा माल उनका ही है। हम तो उनके डाकिया हैं, डाक बाँटते हैं, कि गुरुदेव ऐसा कह गये हैं भाई, बस। आहाहा! आगे।

मुमुक्षु: **आत्मा व्यवहारनय से कर्ता भोक्ता है - ऐसा मत ले**,

पू. लालचंदभाई: **मत ले!**

मुमुक्षु: **और पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चयनय से है - ऐसा भी मत ले!**

पू. लालचंदभाई: **ऐसा भी मत ले!**

मुमुक्षु: **पर्याय स्वभाव से ही क्रियावंत है ऐसा जान! कोई भी नयपक्ष खड़ा नहीं होगा।** कैसी बात है!

पू. लालचंदभाई: आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय जानने में आए वह भी स्वाभाविक है। ऐसी ही कोई स्वाभाविक स्वच्छता है।**

पू. लालचंदभाई: ज्ञान में स्वच्छता है कि पर्याय ज्ञात हो जाती है। जानने का प्रयत्न करे और जानने में आये, ऐसा नहीं है. सहज में ज्ञात हो जाती है। आहाहा! पर्याय प्रतिबिंबित होती है। आहाहा! सुख आया, सुख का प्रतिभास होता है ज्ञान में, स्वच्छता है, ऐसे।

मुमुक्षु: **उसके जानपने का (जानने में आने का) निषेध नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: नहीं है!

मुमुक्षु: **प्रथम निषेध कराया क्योंकि पर्याय में ही आत्मबुद्धि थी।**

पू. लालचंदभाई: (हाँ) थी!

मुमुक्षु: इसलिये निषेध कराया।

पू. लालचंदभाई: कराया।

मुमुक्षु: **अब तो आत्मा को जानते जानते पर्याय अपने धर्मों सहित जैसी है ऐसी ज्ञात होती है।**

पू. लालचंदभाई: ज्ञात हो जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु: पहले जानने का निषेध किया (क्योंकि) वह तो पर्यायदृष्टि थी।

पू. लालचंदभाई: पर्यायदृष्टि थी उसे छुड़ायी। अनुभव हुआ तो द्रव्य-पर्याय एक समय में सब कुछ ज्ञात होता है बस! धर्मी को जानने पर धर्म भी ज्ञात हो जाते हैं।

मुमुक्षु: **प्रश्न: आत्मा राग को कौन से नय से करता है? पू. लालचंदभाई: अरे! ऐसा नहीं है। वह तो उस समय की पर्याय की अपनी योग्यता (स्वभाव) है। उस पर्याय का विभाव स्वभाव है तो राग हुआ। पर्याय स्वभाव से हुआ है।**

पू. लालचंदभाई: राग होता है पर्याय में वह पर्याय के स्वभाव से होता है, ऐसा। उसकी योग्यता है, ऐसा। निमित्त से भी नहीं और त्रिकाली उपादान स्वभाव से भी नहीं। कर्म के उदय से राग नहीं होता, उसीप्रकार आत्मा से राग नहीं होता, ऐसा। वह पर्याय की तत् समय की योग्यता के स्वभाव से होता है।

मुमुक्षु: **अरे! वहाँ तो नय के विकल्प से ज्ञान छूट गया!**

पू. लालचंदभाई: इसके ऊपर विचार करे कि उसके स्वभाव से पर्याय होती है वहाँ नय का विकल्प छूट जाता है।

मुमुक्षु: **अकेला 'ज्ञाता' हो गया।**

पू. लालचंदभाई: ऊपर आया था न, निश्चयनय से कर्ता या व्यवहारनय से कर्ता? नय मत लगा, ऐसे। वह राग तो स्वभाव से होता है।

मुमुक्षु: अर्थात् इसमें होने योग्य होता है वह पर्याय का स्वभाव है।

पू. लालचंदभाई: होने योग्य होता है, (वह पर्याय का) स्वभाव है ऐसा तू जान।

मुमुक्षु: ऐसा जानने पर उसे जाननहार ही जानने में आये।

पू. लालचंदभाई: उसके अंदर में आ जाता है। कर्ताबुद्धि छूटे और ज्ञाताबुद्धि छूटे, होने योग्य होता है। ज्ञाता होता है, साक्षात् ज्ञाता होता है।

मुमुक्षु: **अकेला 'ज्ञाता' हो गया। नय के विकल्प से छूटकर अकेला ज्ञान रह गया।**

पू. लालचंदभाई: **ज्ञान रह गया**, अकेला अतीन्द्रियज्ञान रह गया। आत्मज्ञान हो गया।

मुमुक्षु: इसमें कितना सारा भरा है? **नय के विकल्प से छूटकर अकेला ज्ञान रह गया। स्वभाव को जानने में नय की जरूरत नहीं है**।

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय से मैं आत्मा को जानता हूँ, ऐसा नहीं है। मैं अपने स्वभाव से ही आत्मा को जानता हूँ। जानने का मेरा स्वभाव है, उसमें नय की अपेक्षा नहीं है।

मुमुक्षु: **स्वभाव को जानने में नय की जरूरत नहीं है, परंतु नयातीत ज्ञान की जरूरत है।**

पू. लालचंदभाई: स्वभाव को जानने में नय की जरूरत नहीं है, परंतु नयातीत ज्ञान की तो जरूरत है। एक-एक वाक्य है न ... है। मंत्र हैं बस! मंत्र हैं, उसमें जाननहार जानने में आता है। मंत्र हैं बस!

मुमुक्षु: **"दोनों स्वभाव को जानते जानते मोक्ष होता है"**।

पू. लालचंदभाई: कर्ता स्वभाव और अकर्ता स्वभाव, दोनों को जानते-जानते मोक्ष होता है। ऐसा भाई के (प्रेमचंदजी, दिल्ली के) नाम पर सोगानीजी का पत्र है। किस नंबर का है?

मुमुक्षु: (द्रव्य-दृष्टि प्रकाश, पत्र) ३४ नंबर का।

पू. लालचंदभाई: ३४ नंबर का पत्र सोगानीजी का उनके नाम पर आया। कर्ता-अकर्ता को जानते-जानते पूर्ण हो जाता है आत्मा।

मुमुक्षु: और ये भी उन्होंने कहा कि पर्याय ही पर्याय का कर्ता है ... ये कर्ता-कर्म की चरम सीमा है (द्रव्य-द्रष्टि प्रकाश, पत्र २४)।

पू. लालचंदभाई: चरम सीमा है, हाँ।

मुमुक्षु: अर्थात् कि वह पर्याय का स्वभाव है।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव है।

मुमुक्षु: इसके आगे कोई विकल्प नहीं है। ये चरम सीमा की बात है।

पू. लालचंदभाई: नहीं है विकल्प। चरम सीमा की बात है। आत्मा उसका कर्ता-वर्ता नहीं है।

मुमुक्षु: सोगानीजी ने नय नहीं लगाया।

पू. लालचंदभाई: नय कहाँ से लगाये?

मुमुक्षु: पर्याय ही पर्याय की कर्ता है ये कर्ता-कर्म की चरम सीमा है।

पू. लालचंदभाई: चरम सीमा है। स्वभाव है। अकर्ता और कर्ता को जानते-जानते मोक्ष हो जाता है। प्रमाण से दोनों को जानता है। आहाहा! **दोनों स्वभाव को जानते जानते** अर्थात् द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव। स्वभाव से जानना, नय से नहीं! द्रव्य को उसके स्वभाव से जान और पर्याय को भी उसके स्वभाव से जान। कोई नय मत लगा। नीलम!

मुमुक्षु: हाँ जी!

पू. लालचंदभाई: **"दोनों स्वभाव को जानते जानते मोक्ष होता है"**। सम्यक् एकांतपूर्वक अनेकांत हो गया या नहीं?

मुमुक्षु: हो गया न।

पू. लालचंदभाई: दो को जानता है आया या नहीं आया?

मुमुक्षु: आया न।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! इसमें एकांत कहाँ हुआ?

मुमुक्षु: यह जानना भी अलग प्रकार का है।

पू. लालचंदभाई: अतीन्द्रियज्ञान।

मुमुक्षु: अतीन्द्रियज्ञान किस प्रकार से प्रगट हो उसकी यह रीति है।

मुमुक्षु: **१. निश्चयनय से निरपेक्ष द्रव्य का स्वभाव।**

पू. लालचंदभाई: लो यह तुमने कहा था न, पूछा था न "द्रव्य का स्वभाव क्या?" वह आया ये, वापस।

मुमुक्षु: **२. व्यवहारनय से निरपेक्ष पर्याय का स्वभाव।** यह निश्चय-व्यवहार बोलो! किस प्रकार के लिए?

पू. लालचंदभाई: हाँ।

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से जाने वह निश्चय और पर्याय स्वभाव को स्वभाव से जाने वह व्यवहार।

पू. लालचंदभाई: क्योंकि निश्चयनय से निरपेक्ष है स्वभाव। व्यवहारनय से भी निरपेक्ष पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! **दोनों नयों के विकल्पों को** ...

मुमुक्षु: **दोनों नयों के विकल्पों को उलंघ गया तो साक्षात् ज्ञाता हो गया!**

पू. लालचंदभाई: दो नयों का ज्ञाता आया न (समयसार गाथा) १४३ में। समय से प्रतिबद्ध होता है जब आत्मा, तब दो नयों का ज्ञाता होता है परंतु किसी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता, वह। आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय पर्याय से होती है**।

पू. लालचंदभाई:**पर्याय पर्याय से होती है**।

मुमुक्षु: **ऐसा मैं जानता हूँ लेकिन पर्याय मेरे से होती है ऐसा मैं नहीं जानता क्योंकि पर्याय स्वभाव से ही परिणम रही है। क्योंकि पर्याय सत् है। पर्याय को व्यवहार से जानूँ लेकिन पर्याय को व्यवहार से करूँ नहीं।**

पू. लालचंदभाई: आया न? पर्याय को व्यवहार से करूँ ऐसा नहीं है। भेद में है तू (तो) पर्याय को व्यवहार से जानूँ, इतना रख। अभेद में तो वह भी नहीं है, पर्याय को जानता नहीं। पर्याय स्वयं आत्मा हो जाती है, अभेदनय से तो। यह तो सविकल्पदशा में, उस-उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है न? किया हुआ नहीं।

मुमुक्षु: जाना हुआ। कि होने योग्य होता है, ऐसा जानने में आता है, उसका नाम जाना हुआ प्रयोजनवान है।

पू. लालचंदभाई: बारहवीं गाथा में 'किया हुआ' शब्द नहीं है, 'जाना हुआ' है। व्यवहारनय से कर्ता निकाल दे। व्यवहारनय से ज्ञाता है पर्याय का, इतना रख, बहुत तो, सविकल्पदशा में। वह भी किसी-किसी को किसी काल, हमेशा के लिये नहीं है। आहाहा! गुरुदेव तो निहाल कर गये हैं, कितना सारा दे गये हैं। व्यवहार से कर्ता नहीं है, व्यवहार से ज्ञाता है ऐसा ले। इतना व्यवहार है सविकल्पदशा में। आहाहा! सविकल्पदशा में पर्याय को ज्ञान जानता है। द्रव्य को जानते-जानते यह पर्याय उत्पाद-व्यय है उसे जानता है बस! करता नहीं। आगे।

मुमुक्षु: **स्वभाव से समझने पर विकल्प छूट जाते हैं। नय से समझने पर विकल्प रह जाते हैं।** सूत्र।

पू. लालचंदभाई: सूत्र है।

मुमुक्षु: **ज्ञान को स्वभाव की तरफ ले जाओ तो विकल्प नहीं उठेंगे। स्वभाव में अपेक्षा लगाओगे तो विकल्प उठेंगे, स्वभाव हाथ में नहीं आयेगा।**

पू. लालचंदभाई: बहुत गहराई है, विचार करे, फिर विस्तार से अपनेआप

अकेला-अकेला। ६ महीने के बाद यह पुस्तक मिलेगी सभी को, अभी नहीं। आहाहा! ले लो थोड़ा बाकी है, बस।

मुमुक्षु: **पर्याय स्वभाव से ही क्रियावंत है।**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् पर्याय में क्रिया होती ही है। समय-समय जो होने योग्य उसकी क्रिया, उसके स्वकाल में होती ही है, क्रमबद्ध के नियम के अनुसार। क्रिया हुये बिना रहती ही नहीं पर्याय में।

मुमुक्षु: **पर्याय स्वभाव से ही क्रियावंत है तो आत्मा उपचार से पर्याय को करता है, वह कहाँ आया?**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् व्यवहार से भी कर्ता नहीं है वह आया इसमें।

मुमुक्षु: हाँ सही है! नहीं है कर्ता व्यवहार से, उपचार से भी कर्ता नहीं है।

पू. लालचंदभाई: तुझे उपचार से लेना हो तो उसे जानता है, जाना हुआ प्रयोजनवान इतना ले। खींचतान कर कहें तो इतना ले, वरना वह (कर्ता) तो है नहीं।

मुमुक्षु: तू कहता हो तो। हमें तो वह भी नहीं कहना है।

पू. लालचंदभाई: वह भी नहीं कहना है, खटकता है हमें।

मुमुक्षु: **तो आत्मा उपचार से पर्याय को करता है वह कहाँ आया? तो दृष्टि सीधी अकर्ता स्वभाव के ऊपर गई तो कर्ताधर्म का भी ज्ञाता हो गया।**

पू. लालचंदभाई: पर्याय का कर्ताधर्म है उसका ज्ञाता हो गया, कर्ता नहीं रहा।

मुमुक्षु: पर्याय के षट्कारक से पर्याय होती है। गुरुदेवश्री ने बहुत पहले तीन सिद्धांत सिद्ध किये थे कि (१)अकर्ता स्वभाव आया, (२)केवलज्ञान आया और (३)क्रमबद्ध आया।

पू. लालचंदभाई: हाँ क्रमबद्ध आया।

मुमुक्षु: तीन आये। बहुत पहले फरमाया था।

पू. लालचंदभाई: सही है! ऐसा ही है।

मुमुक्षु: पर्याय का कर्ता पर्याय है। उसके षट्कारक से होती है। केवलज्ञान की सिद्धि, अकर्ता स्वभाव की सिद्धि और क्रमबद्ध पर्याय की सिद्धि।

पू. लालचंदभाई: उसमें हो जाती है। कर्ताबुद्धि छूट जाती है। क्रमबद्धपर्याय में कर्ताबुद्धि छूट जाती है।

मुमुक्षु: **क्रिया न करनी वह द्रव्य का स्वभाव।**

पू. लालचंदभाई: **क्रिया न करनी**, किसी भी प्रकार की, बंध-मोक्ष की, वह द्रव्य का स्वभाव। और...

मुमुक्षु: **क्रिया करनी वह पर्याय का स्वभाव।**

पू. लालचंदभाई: **क्रिया करनी**, क्रिया तो होती है न पर्याय में? **वह पर्याय का स्वभाव** है।

मुमुक्षु: **दोनों को जानना वह ज्ञान का (ज्ञाता का) स्वभाव है।**

पू. लालचंदभाई: अकर्ता को अकर्तापने जानता है और कर्ता को कर्तापने जानता है, ज्ञान का स्वभाव है। अकर्ता और कर्ता को जानते-जानते (केवलज्ञान) होता है या नहीं? यह वह बात है।

मुमुक्षु: **पर्याय को स्वभाव से देखो तो व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है यह उपचार निकल जायेगा।**

पू. लालचंदभाई: यह मूल बात है। पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देखो तो आत्मा उसका कर्ता है वह भूल निकल जायेगी। उसमें नय का क्या काम है? वह तो हुआ ही करती है।

मुमुक्षु: उपचार निकल जायेगा। **उपचार को उलंघे तो अनुभव होता है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! कर्तापने के उपचार को उलंघ जाये कि मैं व्यवहार से कर्ता नहीं हूँ तो वह सीधा ज्ञाता हो जाता है। कर्ताबुद्धि छूटकर, ज्ञाता हो जाता है। कर्ताबुद्धि का शल्य मारता है जीव को। चलो इतना बस है अब। टाइम हो गया।

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट १९-२२ और नाटक समयसार, सध्या-साधक द्वार, गाथा ४३ उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट तारीखः १९-१-१९९१

प्रवचन LA ४१०

(**नाटक समयसार,** साध्य-साधक द्वार, गाथा ४३) **जीव पदार्थ नय की अपेक्षा से अस्ति-नास्ति, एक-अनेक, स्थिर-अस्थिर आदि अनेकरूप कहा गया है।** आहाहा! **यदि एक नय से विपरीत दूसरा नय न दिखाया जाये तो,** तो **विपरीतता दिखने लगती है, यदि एक नय से विपरीत दूसरा नय न दिखाया जाये तो विपरीतता दिखने लगती है और वाद-विवाद उपस्थित होता है। ऐसी दशा में अर्थात् नय के विकल्पजाल में पड़ने से चित्त को विश्राम नहीं मिलता और चंचलता बढ़ने से अनुभव टिक नहीं सकता।** अनुभव नहीं होता, ऐसा नहीं।

मुमुक्षुः (अनुभव) टिक नहीं सकता।

पू. लालचंदभाईः अनुभव टिक नहीं सकता। **इसलिए जीव पदार्थ को अचल, अबाधित, अखंडित और एक साधकर अनुभव का आनंद लेना चाहिये।**

भावार्थः- एक नय पदार्थ को अस्तिरूप कहता है तो दूसरा नय उसी पदार्थ को नास्तिरूप कहता है, एक नय उसे एकरूप कहता है तो दूसरा नय उसे अनेक कहता है, एक नय नित्य कहता है तो दूसरा नय उसे अनित्य कहता है, एक नय शुद्ध कहता है तो दूसरा नय उसे अशुद्ध कहता है, एक नय

ज्ञानी कहता है तो दूसरा नय उसे अज्ञानी कहता है, एक नय सबंध कहता है तो दूसरा नय उसे अबंध कहता है। ऐसे परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों की अपेक्षा से पदार्थ अनेकरूप कहा जाता है। जब प्रथम नय कहा गया हो और उसका विरोधी न दिखाया जावे तो विवाद खड़ा होता है और नयों के भेद बढ़ने से अनेक विकल्प उपजते हैं जिससे चित्त में चंचलता बढ़ने के कारण अनुभव नष्ट हो जाता है, इसलिए प्रथम अवस्था में तो नयों का जानना आवश्यक है, प्रथम अवस्था में तो नयों का जानना आवश्यक है, जरूरी है। **फिर उनके द्वारा पदार्थ का वास्तविक स्वरूप निर्णय करने के अनंतर,** निर्णय करने के बाद, **एक शुद्ध बुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** लो बस, निचोड़ आ गया। अच्छा है।

मुमुक्षु: १९ पेज (**द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव**)।

पू. लालचंदभाई: १९? हाँ बराबर! आधा पेज चला था। ऊपर से ले लो न, १९ पेज पहले से।

मुमुक्षु: पहले से, अच्छा! **पर्याय स्वभाव से ही क्रियावंत है तो आत्मा उपचार से पर्याय को करता है वह कहाँ आया?**

पू. लालचंदभाई: आत्मा उपचार से करता है तब क्रिया होती है वह कहाँ आया? वह क्रिया तो स्वभाव से करती ही है, पर्याय तो अपने स्वभाव से क्रियावंत है ही, उसका स्वभाव ही है। तो आत्मा उसे करता है ऐसा उपचार कहाँ आया?

मुमुक्षु: नहीं आया।

पू. लालचंदभाई: वह **उपचार से पर्याय को करता है वह कहाँ आया?** और कदाचित् कोई कहे तो झूठ है, ऐसा। उपचार अर्थात् झूठ।

मुमुक्षु: **तो दृष्टि सीधी अकर्ता स्वभाव पर गई तो कर्ता धर्म का भी ज्ञाता हो गया।**

पू. लालचंदभाई: उपचार से कर्तापना छूटा तो साक्षात् ज्ञाता हुआ। जब तक उपचार से इसका कर्ता हूँ तब तक लक्ष उसका वहाँ जाता है। परंतु पर्याय स्वयं के स्वभाव से क्रियावंत है। उपचार से कर्ता मैं नहीं हूँ, तो स्वभाव पर दृष्टि जाने से वह धर्म का ज्ञाता हो गया, लेकिन उपचार से कर्ता ऐसा विकल्प छूट गया। अर्थात् स्वीकार किया उस धर्म का, परंतु नय से नहीं, स्वभाव से।

मुमुक्षु: स्वभाव को जाने वह ही ज्ञाता होता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! स्वभाव को जाने वह ही ज्ञाता होता है। अर्थात् उसमें दो स्वभाव आये। बहन ने कहा न, स्वभाव से जाने वह ज्ञाता होता है। अर्थात् पर्याय स्वयं क्रियावंत है, हुआ ही करती है, ऐसा जाने पर्याय का स्वभाव, ऐसा जाने तो आत्मा भी ज्ञाता है ऐसा जाने, तो ज्ञाता हो जाये। द्रव्य का स्वभाव और पर्याय का स्वभाव। द्रव्य के स्वभाव में से उपचार कर्ता निकल गया। द्रव्य के स्वभाव में आया तो उपचार से कर्तापना निकल गया। और क्रियावंत उसका (पर्याय का) स्वभाव है तो पर्याय स्वभाव को पर्याय स्वभावपने जाना, द्रव्य को द्रव्य स्वभाव से जाना, ज्ञाता हो गया दोनों का। विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ। विकल्प उत्पन्न नहीं होता है, ज्ञाता हो जाता है। धर्म का ज्ञाता हो जाता है, धर्मी धर्मों को जानता है तो धर्मी धर्मों को करता नहीं है। निश्चयनय से कर्ता नहीं है और उपचार से भी कर्ता नहीं है, तब ज्ञाता होता है। उपचार से जब तक कर्ता है तब तक ज्ञाता में नहीं आता।

मुमुक्षु: ज्ञाता निर्विकल्प होता है। ज्ञाता स्वाभाविक होता है।

पू. लालचंदभाई: स्वाभाविक होता है। बस!

मुमुक्षु: असल में दोनों का स्वभाव आ गया।

पू. लालचंदभाई: दोनों का स्वभाव आ गया।

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव में से उपचार निकल गया।

पू. लालचंदभाई: निकल गया।

मुमुक्षु: और पर्याय स्वभाव से ही क्रिया करती है।

पू. लालचंदभाई: पर्याय स्वभाव से ही क्रिया करती है, बस। दोनों स्वभाव ख्याल में आये उसका नाम ज्ञाता बन गया।

मुमुक्षु: कमाल कर दिया! परम सत्य है। एकदम बैठ गया।

पू. लालचंदभाई: बैठ गया न?

मुमुक्षु: उपचार लगावें तब तक ज्ञाता होगा ही नहीं।

पू. लालचंदभाई: हाँ।

मुमुक्षु: पर्याय को स्वभाव से क्रियावंत माना नहीं।

पू. लालचंदभाई: माना नहीं। एक वहाँ दोष आया, एक यहाँ दोष आया, विकल्प का!

मुमुक्षु: दोष ही दोष है।

पू. लालचंदभाई: दोष ही दोष आया।

मुमुक्षु: ऐसी वस्तु स्थिति है। कमाल कर दिया। दोनों को स्वभाव से देख। उसमें पहले ही आपने लिया है कि अनादि-अनंत द्रव्य स्वभाव, अनादि-अनंत अकर्ता स्वभाव को नहीं छोड़ता। और पर्याय स्वभाव, पर्याय भी एक, उसमें भी अनादि-अनंत लिया, अनादि-अनंत वह अपने क्रिया के कारक को छोड़ती नहीं।

पू. लालचंदभाई: छोड़ती नहीं। यह बात है। स्वभाव अनादि-अनंत होता है। द्रव्य का स्वभाव या पर्याय का स्वभाव अनादि-अनंत ही रहता है।

मुमुक्षु: वह (द्रव्य) अकारक, वह (पर्याय) क्रिया को छोड़ती नहीं।

पू. लालचंदभाई: बस!

मुमुक्षु: **क्रिया न करना वह द्रव्य का स्वभाव। क्रिया करना वह पर्याय का स्वभाव।**

मुमुक्षु: इसमें कोई भी प्रश्न खड़ा नहीं होता।

पू. लालचंदभाई: सभी प्रश्नों का हल (solve) हो जाता है और अनुभव हो जाता है, और ज्ञानी रह जाता है और कभी वापस अज्ञानी होता नहीं। यह ऐसा है। क्या कहा? ज्ञानी तो हो जाता है परंतु फिर से अज्ञानी नहीं होता, ऐसा ज्ञानी होता है। ऐसा है यह। नीलम समझ में आया?

मुमुक्षु: हाँ जी, पर्याय स्वभाव से देखे तो कभी अज्ञानी नहीं होगा।

पू. लालचंदभाई: ज्ञानी हो जाता है और ज्ञानी रह जाता है, सादि अनंत काल। समाप्त। आना भाई आना, सलाम, जगत को सलाम।

मुमुक्षु: दो स्वभाव ख्याल में आ जायें तो जगत को सलाम हो ही जाता है।

पू. लालचंदभाई: समाप्त! बस, दो स्वभाव ही हैं, (१) द्रव्य स्वभाव और (२) पर्याय स्वभाव। समझने जैसे यह इतना ही है। समझने जैसा इतना ही है।

मुमुक्षु: और इसप्रकार से ही समझने जैसा है।

पू. लालचंदभाई: इसप्रकार से ही समझने जैसा है।

मुमुक्षु: महाराज साहेब बारबार फरमाते थे 'समझ में आया?', यह ही समझना है।

पू. लालचंदभाई: यह समझना है।

मुमुक्षु: **क्रिया न करना वह द्रव्य का स्वभाव। क्रिया करना वह पर्याय**

का स्वभाव। दोनों को जानना वह ज्ञान का (ज्ञाता का) स्वभाव।

पू. लालचंदभाई: इसमें पर का जानना तो आया नहीं कहीं? है ही नहीं, कहाँ से आये?

मुमुक्षु: **पर्याय को स्वभाव से देखो तो व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है यह उपचार निकल जायेगा।**

मुमुक्षु: सब कह दिया है।

पू. लालचंदभाई: सब आ गया देखो। आहाहा! यह ही समझने जैसा है। इतना समझे (तो) बेड़ा पार, द्रव्य-पर्याय के, द्रव्य के और पर्याय के स्वभाव को। छह द्रव्यों के स्वभाव की बात नहीं है यहाँ। अपना आत्मा सामान्य-विशेषरूप है, एक सामान्य पहलू द्रव्य का और एक पर्याय का पहलू, दो को जानो बस, जैसा है वैसा जानो। **पर्याय को स्वभाव से देखो तो**...

मुमुक्षु: **व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है वह उपचार निकल जायेगा।** क्योंकि पर्याय का स्वभाव तो वह है कि वह स्वयं क्रियावंत है।

पू. लालचंदभाई: स्वयं क्रिया हुआ ही करती है उसमें तेरे कर्ता की कहाँ अपेक्षा है?

मुमुक्षु: बिल्कुल जरूरत नहीं है। उसमें वह पर्याय के स्वभाव को जाने तो द्रव्य का स्वभाव अधिक स्पष्ट होता है।

पू. लालचंदभाई: अधिक स्पष्ट होता है।

मुमुक्षु: उसकी ही पुष्टि है उसमें। एक दूसरे का स्वभाव एक दूसरे को पुष्टिकारक है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! पुष्टि करनेवाला है, हाँ! पर्याय के स्वभाव को जाने तो द्रव्य का स्वभाव दृढ़ होता है और द्रव्य का स्वभाव जाने तो पर्याय का स्वभाव दृढ़ हो जाता है। द्रव्य अकर्ता है ऐसा स्वभाव जाने तो पर्याय का कर्तापना नहीं रहता। और पर्याय स्वयं करती है तो कर्ता का उपचार निकल जाता है। कर्ता की बुद्धि भी निकल जाती है और कर्ता का उपचार भी निकल जाता है। दो गुण होते हैं, पहले सम्यग्दर्शन, और फिर विशेष अनुभव - श्रेणी।

मुमुक्षु: अर्थात् कभी अज्ञानी ही नहीं होता। उपचार निकल गया, समाप्त! अब उपचार भी नहीं होता।

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव पढ़कर अचानक अनुभव हो जाये उसे।

पू. लालचंदभाई: हें?

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव पढ़कर अचानक अनुभव हो जाये।

पू. लालचंदभाई: हो भी जाये।

मुमुक्षु: पर्याय स्वभाव पढ़े तो क्षायिक हो जाये, ऐसी बात है।

मुमुक्षु: शाबाश बेटे! शाबाश!

पू. लालचंदभाई: बस! तुमने सही कहा। अभी, यह जो हाथ फेरा (शाबाशी दी), वह सही फेरा। ऐसा वाक्य निकला उसका। क्या कहा उसने? नीलमबेन ने क्या कहा?

मुमुक्षु: द्रव्य स्वभाव को कोई समझे तो सम्यग्दर्शन हो जाये और यदि पर्याय स्वभाव को यथार्थ जान ले तो क्षायिक हो जाये।

पू. लालचंदभाई: दोनों के स्वभाव यथार्थ जाने, ख्याल में आ जायें, तो क्षायिक ही होता है। शाबाश बेटा, ऐसा कहा।

मुमुक्षु: आपके दरबार के रत्न हैं ये सभी।

पू. लालचंदभाई: ए प्रेमचंदजी!

मुमुक्षु: परम सत्य। आपका अनंत उपकार, परम प्रताप। ये दो तो महान चीज हैं साहेब। हम तो मिलावट करते थे। जब निश्चय आता तब इसमें और उसमें। बिल्कुल वह ४३ वें (नाटक समयसार, साध्य-साधक द्वार, गाथा ४३) नंबर का परिचय कर बैठा। क्योंकि उसमें कभी निश्चय-व्यवहार, बाकी ये तो दोनों शाश्वत स्वतंत्र हैं।

पू. लालचंदभाई: स्वतंत्र हैं, शाश्वत स्वतंत्र हैं। वह (द्रव्य) अकर्ता स्वतंत्र है, वह (पर्याय) कर्ता स्वतंत्र है।

मुमुक्षु: बस! स्वभाव ही है दोनों का।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव है दोनों का। नय से समझाया जाता है।

मुमुक्षु: ओ भाई! दृष्टि निर्मल हो जाती है और ज्ञान एकदम निर्मल हो जाता है। ज्ञाता, ज्ञाता ही रहता है। बस! इतनी सफाई हो जाती है इसमें एकदम।

पू. लालचंदभाई: सफाई। तुम्हारा शिष्य बोला - उवाच, सही है। कि द्रव्य स्वभाव (ख्याल में) आने पर तो सम्यग्दर्शन होता है लेकिन पर्याय स्वभाव यदि यथार्थपने ख्याल में आये तो क्षायिक हो जाता है। उपशम में से क्षायिक हो गया।

मुमुक्षु: वह कहा न कभी अज्ञानी नहीं होता, आपने कहा न। वह यह।

पू. लालचंदभाई: हा, अज्ञानी कभी नहीं होता, वह यह। दोनों के स्वभाव जैसे हैं ऐसे जान, बस। आहाहा! स्वभाव जान ले न! दूसरा तुझे क्या काम है? यह पुस्तक मुझे लगता है कोई ऐसे पल में रचना हो गयी है। बहन को कहा कठिन पड़ेगा हों! (बहन ने कहा) कठिन भले पड़े लेकिन हमें छपवाना है। बोलो!

मुमुक्षु: साहेब, इसमें तो हमारा काम हो जाये ऐसा है। कठिन भले पड़े।

पू. लालचंदभाई: काम हो जाये ऐसा है, बात सत्य है। कैसी ऊँची बातें। आहाहा!

मुमुक्षु: देशना की पराकाष्ठा है, साहेब! देशना की पराकाष्ठा।

मुमुक्षु: बस! सही है! इसके बाद देशना नहीं होती। इसके बाद देशना नहीं होती। इसके बाद तो सीधा अनुभव होता है। ऐसी बात है।

पू. लालचंदभाई: बोलो!

मुमुक्षु: **१. 'आत्मा स्वभाव से ही अकर्ता है' - यहाँ निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है उसका निषेध हुआ।**

पू. लालचंदभाई: स्वभाव से अकर्ता है, ऐसा जब ख्याल में आता है तब निश्चय से मैं अकर्ता हूँ ऐसा विकल्प छूट जाता है, ऐसा। स्वभाव देखा, फिर निश्चयनय से अकर्ता हूँ ऐसा जो विकल्प, विकल्प छूट जाता है और स्वभाव दृष्टि में आ जाता है और अनुभव हो जाता है, ऐसा। विकल्प छूटता है।

मुमुक्षु: एक बात। **२. 'पर्याय स्वभाव से ही कर्ता है'**।

पू. लालचंदभाई: ऊपर का ही विस्तार चला आता है।

मुमुक्षु: लेकिन क्रम से आया है, बिल्कुल क्रम से।

मुमुक्षु: **२. 'पर्याय स्वभाव से ही कर्ता है' - यहाँ व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है उसका निषेध हुआ - दोनों नय उलंघ गया। साक्षात् ज्ञाता हो गया - बस स्वभाव में आ गया। द्रव्य स्वभाव में बैठे बैठे पर्याय स्वभाव को जान लेता है।**

पू. लालचंदभाई: **द्रव्य स्वभाव में बैठे बैठे पर्याय स्वभाव को जान लेता है।**

मुमुक्षु: बिल्कुल सही बात है, एकदम। **दोनों नय उलंघ गया। साक्षात्**

ज्ञाता हो गया - बस स्वभाव में आ गया। अर्थात् कि **द्रव्य स्वभाव में बैठे बैठे पर्याय स्वभाव को जान लेता है।** बस।

पू. लालचंदभाई: हूबहू वस्तु का स्वरूप है।

मुमुक्षु: वस्तु का स्वरूप और अनुभव में कैसा होता होगा, सब इसमें है, प्रामाणिकरूप से।

पू. लालचंदभाई: अनुभव में आयी हुई बात ही - जो वाणी में आती है न, वह यथार्थ होती है। अनुभव में आयी हुई बात जो वाणी में आती है न, वह यथार्थ होती है। दूसरा ज्ञानी भी स्वीकृत करता है, तीसरा होता है वह भी स्वीकृत करता है। और स्वीकृत करे तो तीसरा-चौथा हो जाता है, जैसे स्वीकृत करते जाते हैं, वैसे बढ़ते जाते हैं, ऐसे बढ़ते जाते हैं। द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव का जो स्वीकार करते हैं, वे ज्ञानी होते जाते हैं, बढ़ते जाते हैं। आहाहा! अपूर्व है यह।

मुमुक्षु: अनुभव में आयी हुआ बात वाणी में आती है, जो स्वीकार करते जाते हैं, वे ज्ञानी होते जाते हैं।

पू. लालचंदभाई: वे ज्ञानी होते जाते हैं, बस! यह पैराग्राफ ऐसा है, यह पेज ही ऐसा है। निचोड़ आता है अब, निचोड़। पेज १९वाँ है। भाई को दो न? तुम बीच में रखो दोनों। १९वाँ पेज। एक नंबर, फिर से एक नंबर लो।

मुमुक्षु: **१.'आत्मा स्वभाव से ही अकर्ता है' - यहाँ निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है उसका निषेध हुआ।**

पू. लालचंदभाई: निषेध हुआ, उस विकल्प का निषेध हो गया।

मुमुक्षु: **२. 'पर्याय स्वभाव से ही कर्ता है' -यहाँ व्यवहारनय से कर्ता है उसका निषेध हुआ।**

पू. लालचंदभाई: व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है उसका निषेध हुआ। अब आगे।

मुमुक्षु: **दोनों नय उलंघ गया।**

पू. लालचंदभाई: दोनों नय के विकल्प छूट गये। फिर।

मुमुक्षु: **साक्षात् ज्ञाता हो गया।**

पू. लालचंदभाई: पहले परोक्ष था, अब प्रत्यक्ष हो गया, साक्षात्। फिर।

मुमुक्षु: **बस स्वभाव में आ गया।**

पू. लालचंदभाई: दोनों विकल्प गये। स्वभाव में आ गया। फिर।

मुमुक्षु: और **द्रव्यस्वभाव में बैठे बैठे पर्याय स्वभाव को जान लेता है**।

मुमुक्षु: यह वाक्य बहुत सुंदर है। **द्रव्यस्वभाव में बैठे बैठे पर्याय स्वभाव को जान लेता है।**

पू. लालचंदभाई: द्रव्य स्वभाव में से निकलता ही नहीं न! द्रव्य स्वभाव में बैठे बैठे अर्थात् द्रव्य को लक्ष में लेते-लेते पर्याय का ज्ञाता हो जाता है, पर्याय का लक्ष नहीं है। 'पर्याय जनित जाती है', जानने में आ जाती हैं पर्यायें, उन्हें जानता है ऐसा कहा जाता है। आगे।

मुमुक्षु: पर्याय में नहीं बैठता। पर्याय स्वाभाव में नहीं बैठता। द्रव्य स्वभाव में बैठता है।

पू. लालचंदभाई: द्रव्य स्वभाव में बैठ गया। बैठक बदल गई। अनंतकाल से पर्यायदृष्टि थी, वह द्रव्यदृष्टि हो गई।

मुमुक्षु: **द्रव्य स्वभाव को निश्चयनय से नक्की करने गया**।

पू. लालचंदभाई: नय से नक्की करने गया, नय के माध्यम से, उसका साधन लेकर।

मुमुक्षु: **तो स्वभाव दूर रह गया।**

पू. लालचंदभाई: **स्वभाव दूर रह गया।** नय से विचार करता है वहाँ स्वभाव का अनुभव नहीं हुआ, विकल्प का अनुभव हुआ, ज्ञान का अनुभव नहीं हुआ, राग का अनुभव हुआ। अतः दूर रह गया स्वभाव तो, ज्ञायकभाव दूर रह गया, निश्चयनय से विचार करता है जब। व्यवहारनय से तो बात ही नहीं है। **दूर रह गया।** और फिर आगे।

मुमुक्षु: **द्रव्य स्वभाव को स्वभाव से ही जहाँ नक्की किया तो निश्चयनय दूर हो गया।**

पू. लालचंदभाई: उसमें स्वभाव दूर था, अब यहाँ निश्चयनय दूर हो गया, विकल्प छूट गया निश्चयनय का। निश्चयनय से ऐसा हूँ, वह छूट गया। कोई कैसे पल में, मुझे आश्चर्य होता है कि यह मेरा कहा हुआ होगा यह? हाँ वास्तव में, ऐसा इस समय लग रहा है। मैंने कहा होगा?

मुमुक्षु: आज तो आपकी कही हुई बात को गुरुदेव ने मोहर छाप लगा दी।

आज वह ही बात पूरे प्रवचन में मानो आपका द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव ही चल रहा हो ऐसा चला है आज, ... अपूर्व।

मुमुक्षु: आज टेप था, उसमें।

पू. लालचंदभाई: हाँ टेप था। आहाहा!

मुमुक्षु: **आत्मा को व्यवहार से कर्ता कहा तो पर्याय स्वभाव ख्याल में नहीं आया।**

पू. लालचंदभाई: पर्याय का कर्ता स्वभाव है वह ख्याल में नहीं आता, क्योंकि कर्ता अपने को माना। 'मैं इसे करता हूँ' तो उसने कर्ता धर्म को उड़ाया, पर्याय के कर्ता धर्म का नाश कर दिया। **आत्मा को व्यवहार से कर्ता कहा तो पर्याय स्वभाव ख्याल में नहीं आया और**...

मुमुक्षु: **और पर्याय स्वभाव ख्याल में आया तो उपचार उलंघ गया।** बहुत सुंदर।

पू. लालचंदभाई: तो आत्मा व्यवहार से कर्ता है, व्यवहार कहो या उपचार, ऐसा जो कर्तापने का आरोप आता था न? वह उड़ गया, अनुभव हो गया। विकल्प निकल गया, अनुभव हुआ, द्रव्य में आ गया, (द्रव्य में) बैठे बैठे पर्याय के स्वभाव को जानता है। यह सादि अनंतकाल रहनेवाला है। यहाँ से जो शुरू होता है, सादि अनंतकाल सिद्ध अवस्था में रहनेवाला है यह। द्रव्य में बैठे बैठे पर्याय को जानेगा।

क्षायिक हो गया न? द्रव्य स्वभाव को जानने पर सम्यग्दर्शन होता है और पर्याय स्वभाव को यथार्थ जाने तो क्षायिक हो जाता है। अनुभव की कला और विधि है यह मार्ग की। नयों से अभ्यास करने के बाद नयातिक्रांत कैसे हुआ जाये, पक्षातिक्रांत कैसे हुआ जाये, वह इस पुस्तक का लाभ है। आहाहा! चौबीस पेज हैं, चौबीस तीर्थंकरों की कही हुई बात है। आगे। बैठ जाये, बैठ जाये ऐसी बात है। न बैठे ऐसी बात नहीं है।

मुमुक्षु: ऐसा स्पष्ट रीति से स्वरूप, स्वभाव से ही बात आयी, फिर कैसे उसे (न बैठे)?

पू. लालचंदभाई: हाँ (बैठ जाये)! आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय स्वभाव ख्याल में आया तो उपचार उलंघ गया।**

पू. लालचंदभाई: पर्याय पर्याय से ही क्रियावंत है, वह करती है, तो आत्मा

उपचार से करता है वह उपचार निकल गया। अनुभव हो गया, ज्ञाता में आ गया। कर्तापने का उपचार अर्थात् विकल्प, वह छूट गया, ज्ञाता हो गया साक्षात्। आहाहा! द्रव्य में, स्वभाव में बैठे बैठे पर्याय को जानता है कि पर्याय पर्याय से क्रिया होती है, मेरे से नहीं। निश्चय से भी नहीं और व्यवहार से भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु: अकर्ता में बैठे बैठे कर्ता धर्म को जान लेता है।

पू. लालचंदभाई: जानता है। अकर्ता में बैठे बैठे कर्ता धर्म को जानता है। अकर्ता स्वभाव को छोड़े तो?

मुमुक्षु: कर्ताबुद्धि हो जाती है।

पू. लालचंदभाई: कर्ताबुद्धि होती है। किसी को नहीं जान सकता, अज्ञान हो जाता है। आगे।

मुमुक्षु: **आहाहा... कर्तापने का उपचार जहाँ गया वहाँ 'साक्षात् ज्ञाता' हुआ।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! यह बात, परमार्थ प्रतिक्रमण में (नियमसार गाथा ७७-८१) यह बात है। आहाहा! यथार्थ समाधान नहीं आ रहा था देवलाली में, नहीं श्रवणबेलगोला में। भट्टारक की उपस्थिति में हमने ये पाँच गाथायें ली थी। तब हमारी बाद में चर्चा हुई कि यह कर्ता नहीं है, कारयिता नहीं है, कर्ताबुद्धि तो छूट गई है। निर्मल पर्याय का कर्ता नहीं है, ऐसा किसलिये याद करे? वह तो चौथे गुणस्थान में गया। वह समझ गये? वह समाधान नहीं आ रहा था। डिपोजिट रहा था, समझने के लिये। वह प्रश्न यहाँ (निज) भगवान के पास रखा था, कि भगवान तेरे अलावा कोई नहीं कहेगा। कहेगा तो तू ही कहेगा। और अमुक टाइम हुआ, भगवान आकर कह गए, एकाएक कह गये। ईश्वरिया महादेव गये थे हम। पंकजभाई उस समय थे।

मुमुक्षु: हाँ पंकजभाई थे।

पू. लालचंदभाई: और बस, नाश्ता पानी कर रहे थे सब। बकुलभाई थे न?

मुमुक्षु: हाँ! अनेक मुमुक्षु थे।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अनेक मुमुक्षु थे। नवीनभाई थे, सभी थे वहाँ, अनेक थे। बाहर चौक में बैठे थे और नाश्ता पानी किया, बस, पानी-बानी पिया। समाधान आ गया। कर्ता नहीं है ऐसा किसलिये कहा? कि कर्तापने का उपचार आता था, व्यवहार से कर्ता, वह निकाल दिया। शुद्धोपयोग हो गया। उपचार निकल गया।

मुमुक्षु: परंतु उपचार निकले कैसे? कि पर्याय स्वभाव को पर्याय स्वभाव की तरह से जाने तो उपचार निकल जाये।

पू. लालचंदभाई: जाना तो उपचार निकल गया। सम्यग्दृष्टि तो था लेकिन शुद्धोपयोग नहीं होता था, उपचार आड़े आता था, उपचार आड़े आता था। इसलिए उसे शुद्धोपयोग होने के लिये परमार्थ प्रतिक्रमण था न? आहाहा! शुद्धोपयोग होने के लिये कर्ता नहीं है निर्मल पर्याय का, साहेब क्यों कहा? कि उपचार से कर्ता आता था तब तक छठ्ठा था। उपचार को उलंघ गया तो सातवाँ आ गया। बहन हिल गई। हिले ही न? हर्ष के आँसू आ जाते हैं। आहाहा! **आहाहा... कर्तापने का उपचार जहाँ गया**, गया वहाँ क्या हुआ?

मुमुक्षु: **'साक्षात ज्ञाता' हुआ।**

पू. लालचंदभाई: शुद्धोपयोग हो गया। आहाहा! आगे। आहाहा! गुरुदेव ने निहाल किया है। एक पुरुष पके, एक ही पुरुष। बहुत जीवों का काम होगा। **यह आत्मा**।

मुमुक्षु: **यह आत्मा स्वभाव से ही अकारक अवेदक है। उसे समझाने के लिये नय से समझाते हैं लेकिन नय से समझने पर विकल्प की उत्पत्ति होती है। आत्मा तक उपयोग पहुँच नहीं सकता, ज्ञान विस्तृत होकर आत्मा से अभेद होकर अनुभव होना चाहिये, परंतु नय के विकल्प अनुभव में बाधक होते हैं।**

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय का विकल्प भी अनुभव में बाधक है। आहाहा!

मुमुक्षु: **जे जे वस्तु साधक हैं तेऊ तहाँ बाधक हैं। (समयसार नाटक, जीव द्वार, गाथा १०)**

पू. लालचंदभाई: **बाधक हैं।**

मुमुक्षु: निर्णय के लिये साधक हैं परंतु अनुभव में बाधक हैं।

पू. लालचंदभाई: बाधक हैं, बस! आहाहा!

मुमुक्षु: **परंतु नयों के विकल्प अनुभव में बाधक होते हैं। जीव पक्षातिक्रांत नहीं हो सकता। व्यवहारनय तो अन्यथा कथन करता है, लेकिन निश्चयनय तो सच्चा कथन करता है। जैसा आत्मा है ऐसा कथन करता है। इसलिए उस नय के द्वारा निर्णय होता है लेकिन स्वभाव से दूर रहकर स्वभाव बताता है।**

पू. लालचंदभाई: नय तो स्वभाव से दूर रहकर स्वभाव बताता है 'ऐसा स्वभाव है, ऐसा तेरा स्वभाव है, ऐसा स्वभाव है'। आहाहा! क्योंकि नय का प्रवेश नहीं है अनुभव में।

मुमुक्षु: **स्वभाव से दूर रहकर स्वभाव बताता है। वह नय स्वभाव से तन्मय नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: नय (तन्मय) कहाँ से होवे? विकल्प है न? देखो आया आगे, **नय विकल्पात्मक है।**

मुमुक्षु: **वह नय स्वभाव से तन्मय नहीं होता। नय विकल्पात्मक है। मात्र अँगुली निर्देश करता है**।

पू. लालचंदभाई: परिशुद्ध आया है हों, परिशुद्ध!

मुमुक्षु: पूर्णतया शुद्ध एकदम।

पू. लालचंदभाई: परिशुद्ध आया है।

मुमुक्षु: **मात्र अँगुली निर्देश करता है परंतु वहाँ तक पहुँचने पर भी अनुभव नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: आगे, अनुभव कैसे हो वह कहो?

मुमुक्षु: **प्रश्न:- तो फिर ये नय के विकल्प कैसे छूटें?**

पू. लालचंदभाई: नय के विकल्प कैसे छूटें और अनुभव कैसे हो? इसप्रकार! विकल्प छूटें तो अनुभव होवे, ऐसा प्रश्नकार ने प्रश्न किया।

मुमुक्षु: **पू. लालचंदभाई: नय का अवलंबन लेकर जो निर्णय हुआ था उस नय को छोड़कर तुम स्वभाव की तरफ चले जाओ।**

पू. लालचंदभाई: जाननहार जानने में आता है, जाननहार जानने में आता है उसमें चले जाओ। जानने में आ जायेगा। आगे चलाओ।

मुमुक्षु: भाई! आपने निहाल कर दिया।

पू. लालचंदभाई: प्रमोद का पार नहीं है। हमें बहुत प्रमोद आ जाता है।

मुमुक्षु: सब आ गया। अंतिम में अंतिम जो चाहिये वह भी आ गया। अंतिम में अंतिम।

पू. लालचंदभाई: अद्भुत आ गया है। वाणी ने रचना की है, रचना हमने नहीं की। वाणी निकल गई, काललब्धि पकी, वाणी निकल गई बस!

मुमुक्षु: भविभागन वश जोगे वशाय। (सकल गये ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन, पं. दौलतरामजी दर्शन स्तुति)।

पू. लालचंदभाई: ऐसा ही है। वे शब्द निकल जाते हैं।

मुमुक्षु: **नय का अवलंबन लेकर जो निर्णय हुआ था उस नय को छोड़कर तुम स्वभाव की तरफ चले जाओ। आत्मा निश्चयनय से अकर्ता नहीं है, स्वभाव से ही अकर्ता है।**

पू. लालचंदभाई: उसका स्वभाव ही अकारक-अवेदक है, बस।

मुमुक्षु: **आत्मा निश्चयनय से शुद्ध नहीं है, स्वभाव से ही शुद्ध है।**

पू. लालचंदभाई: कोई कहे कि आगम में ये सभी बात आती हैं, आप आगम को उलंघकर आगे बात करते हो? भाई, आगम को उलंघकर...! आगम के लक्ष को छोड़ोगे तब अनुभव होगा। हें! आगम का लक्ष छोड़ना पड़ेगा।

मुमुक्षु: आत्मा का लक्ष करना पड़ेगा।

पू. लालचंदभाई: करना पड़ेगा।

मुमुक्षु: **स्वभाव से ही शुद्ध है।** अनादि-अनंत **स्वभाव से ही मुक्त है, परिपूर्ण है।**

पू. लालचंदभाई: परिपूर्ण है स्वभाव से ही, बस! स्वभाव से देखो न आत्मा को!

मुमुक्षु: **इसप्रकार स्वभाव के आश्रय से नय के विकल्प छूटकर सीधा अनुभव हो सकता है।** बिल्कुल परम सत्य बात है।

पू. लालचंदभाई: यह जो प्रश्न था न? **तो फिर ये नयों के विकल्प कैसे छूटें?** उसका यहाँ उत्तर दिया है।

मुमुक्षु: **इसप्रकार स्वभाव के आश्रय से नयों के विकल्प छूटकर सीधा अनुभव हो सकता है।**

पू. लालचंदभाई: **हो सकता है।** आहाहा!

मुमुक्षु: बहुत अच्छा। **नयातिक्रांत होने की यह विधि है।**

पू. लालचंदभाई: **यह विधि है।** हलवा बनाने की विधि है यह।

मुमुक्षु: **जैसे कि अग्नि उष्ण है। किस नय से?**

पू. लालचंदभाई: अग्नि स्वभाव से ही उष्ण है, बस!

मुमुक्षु: ऐसे ही मैं स्वभाव से ही ज्ञायक हूँ।

पू. लालचंदभाई: मैं स्वभाव से ही ज्ञायक हूँ, बस! हो गया।

मुमुक्षु: बस, इतना बस है।

पू. लालचंदभाई: बस है। स्वभाव से ज्ञायक हूँ। निश्चयनय से ज्ञायक हूँ, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: आज गुरुदेव ने यह ही दृष्टांत दिया था। ऐसे ही दिया था यह दृष्टांत। आज ही आया था यह दृष्टांत। स्वभाव से ही उष्ण है। वे सभी आकार उसके ... वह अग्नि तो अग्नि ही है। वह ही दृष्टांत दिया था।

पू. लालचंदभाई: दृष्टांत से समझ में आता है। दृष्टांत से समझ में आता है।

मुमुक्षु: **जैसे कि अग्नि उष्ण है। किस नय से? अरे! स्वभाव से ही अग्नि उष्ण है। उसे कहने के लिये किसी नय की अपेक्षा नहीं है**।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! जहाँ तहाँ नय लगाकर मर गया। नय लगाये और मर गया। आहाहा! हाथ में कुछ नहीं आया।

मुमुक्षु: पूर्व में अनंतकाल से किस प्रकार से यह हुआ विपरीततापना, वह यह है।

पू. लालचंदभाई: यह तो अंतिम बात है न? पक्षातिक्रांत होने की बात है, अंतिम बात है। अनुभव कैसे होवे, नयों में आने के बाद नयातिक्रांत कैसे हुआ जाये, उसकी यह विधि है।

मुमुक्षु: **इसप्रकार तुम नयों के विकल्पों को उलंघकर एकदम स्वभाव के सन्मुख हो जाओ**

पू. लालचंदभाई: **हो जाओ तो**...

मुमुक्षु: **तो विकल्प छूटकर अनुभव होता है।** स्वानुभव होता है।

मुमुक्षु: ऐसा लगता है कि अपनी रीति बताते हों न 'हमें इसप्रकार से हुआ है तुम्हें भी इसीप्रकार से होगा'।

मुमुक्षु: **कल द्रव्य स्वभाव को प्रसिद्ध करनेवाले निश्चयनय के विकल्पों को द्रव्य स्वभाव की मुख्यता से उलंघ जाने की बात की थी... द्रव्य स्वभाव को प्रसिद्ध करनेवाले निश्चयनय के विकल्पों को द्रव्य स्वभाव की मुख्यता से उलंघ जाने की बात की थी...**

पू. लालचंदभाई: ३१ वीं (दिसम्बर १९८९) तारीख को यह (द्रव्य स्वभाव की) बात कही थी। यह जो, १ तारीख (जनवरी १९९०) को पर्याय स्वभाव की बात (हुई थी)।

मुमुक्षु: **आज दूसरा पहलू व्यवहारनय का है।**

पू. लालचंदभाई: पूर्वोक्त निश्चयनय का विषय द्रव्य स्वभाव था।

मुमुक्षु: **पर्यायें स्वभाव से ही क्रियावंत हैं। क्रिया के कारक स्वभाव से ही पर्याय में हैं। वहाँ अब तुम कहते हो कि आत्मा व्यवहारनय से पर्याय को करता है तो यह बात ठीक नहीं है। यह बात ठीक नहीं है। पर्याय स्वभाव से ही अपने कारक से परिणमती है।**

पू. लालचंदभाई: आत्मा सम्यग्दर्शन को करता है वह लागू कहाँ पड़ा उसमें?

मुमुक्षु: नहीं पड़ता। जरा भी नहीं पड़ता। वह तो पर्याय का स्वभाव है। आत्मा ने तो उसमें कुछ नहीं किया बिल्कुल।

पू. लालचंदभाई: बस। वह तो द्रव्य में बैठा बैठा पर्याय स्वभाव को जानता है।

मुमुक्षु: पर्याय स्वभाव को जान लेता है।

पू. लालचंदभाई: बस! दूसरा कुछ नहीं।

मुमुक्षु: जानता है और जनाता है।

पू. लालचंदभाई: बस!

मुमुक्षु: भाई, (यदि) पर्याय स्वभाव को स्वभाव से जाने न, तो उपचार का निषेध हो जाता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ। वो उपचार का निषेध जो पाँच प्रतिक्रमण (की गाथा) में किया है न, उसका हम बहुत मंथन कर रहे थे श्रवणबेलगोला में, लेकिन ख्याल में नहीं आया था। मेरा एक स्वभाव है (कि) किसी से पूछता नहीं, मैं (निज) भगवान के पास रख देता हूँ मेरा प्रश्न। और वास्तव में मेरा भगवान मुझे अधिक से अधिक छह महीने में तो जवाब देता ही है, उससे अधिक नहीं होता। और जवाब अंदर से आया हों! आहाहा! मैंने कहा आ गया। क्या? मैंने कहा उपचार से कर्ता जो आता था न, व्यवहार, उसका निषेध करके शुद्धोपयोग में चले गये।

कर्ताबुद्धि तो गई थी। इसीलिए प्रश्न था कि कर्ताबुद्धि जाने के बाद मैं कर्ता

नहीं, कारयिता नहीं शुद्ध पर्याय का, राग की बात तो दूर रहो। ये क्यों कहते हैं? बहुत चला मंथन लेकिन वह तो जवाब आना हो तभी आता है न? भगवान तुष्टमान होता है तब जवाब देता है। भगवान यह देखता है कि जहाँ-तहाँ पूछने जाता है कि नहीं, देखूँ तो सही। उसने देखा कि कहीं पूछने नहीं जाता, तो तो मेरा फर्ज है कि मुझे कह देना चाहिये। इसीलिए कहा। यदि मैं पूछने के लिये जहाँ-तहाँ गया होता न तो यह भगवान जवाब न देता। जवाब यहाँ से (अंदर से) ही लेना, यहीं से ही आता है। वह सत्य जवाब होता है। एकाएक आ गया हों! आहाहा!

मुमुक्षु: उस समय गुरुदेव हाजिर हुये थे।

पू. लालचंदभाई: हाँ! वह ही आया, गुरुदेव हाजिर हुये। उपचार से कर्ता नहीं है निर्मल पर्याय का, ऐसा (गुरुदेव ने) जयपुर में कहा था, वह बात मिल गई, साक्षी गुरुदेव की। हाँ यह बात सही है, यह बात कही थी उस समय वहाँ जंगल में, जंगल में। वही याद आया था उस समय। गुरुदेव का आधार दिया था। आहाहा! तत्त्व का समाधान था न, तत्त्व का समाधान। तत्त्व के समाधान की पूरी (बात), प्रसन्नता अलग जाति की होती है, अलग जाति की। जाति ही अलग। क्योंकि शुद्धोपयोग होने की बात थी न? सम्यग्दर्शन तो हो गया था। हों!

मुमुक्षु: परमार्थ प्रतिक्रमण।

पू. लालचंदभाई: हाँ! परमार्थ प्रतिक्रमण की बात थी।

मुमुक्षु: कर्ताबुद्धि के लिये तो (द्रव्य) स्वभाव को जाना था, लेकिन फिर से शुद्धोपयोग होने के लिये पर्याय स्वभाव को जान, तो कर्ता का उपचार छूट जायेगा।

पू. लालचंदभाई: छूट जायेगा, बस। आहाहा! स्वयं होता है उसे कौन करे?

मुमुक्षु: सभी खुश खुश हो गये थे तब। पू. लालचंदभाई: सभी खुश हो गये, हों। उसमें भी जिन्होंने ये चर्चायें वहाँ सुनी थी न? वे अधिक खुश हुए। कितने तो वहाँ नहीं थे, श्रवणबेलगोला में। चलो आगे।

मुमुक्षु: **पर्यायें स्वभाव से ही क्रियावंत हैं। क्रिया के कारक स्वभाव से ही पर्याय में हैं। वहाँ अब तुम कहो कि आत्मा व्यवहारनय से पर्याय को करता है तो वह बात ठीक नहीं है। पर्याय स्वभाव से ही अपने कारक से परिणमती है। उसे व्यवहार से आत्मा कर्ता है ऐसा जो उपचार आता था उसे उलंघकर पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देखो।** उपचार को रहने दो।

पू. लालचंदभाई: रहने दो उपचार। स्वभाव से देखो। उपचार निकल गया। निकल ही जाता है न? पर्याय पर्याय से होती है।

मुमुक्षु: स्वभाव से देखे तो फिर उपचार आता ही नहीं।

पू. लालचंदभाई: आता ही नहीं। पर्याय के मूल स्वभाव को देख, मूल स्वभाव को देख। मूल स्वभाव को मूल में से देख। आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय को नय से मत देखो। अरे! पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चयनय से है ऐसा भी मत देखो।**

पू. लालचंदभाई: पर्याय का कर्ता आत्मा है वह तो जाने दो, वह व्यवहार तो जाने दो, लेकिन पर्याय का कर्ता पर्याय है, निश्चय से **पर्याय का कर्ता पर्याय है ऐसा भी मत देखो।**

मुमुक्षु: क्योंकि ऐसा देखोगे तो वह आ जायेगा।

पू. लालचंदभाई: हाँ। तो व्यवहार से आत्मा कर्ता है (आ जायेगा)। पर्याय का कर्ता पर्याय निश्चय से है, तो व्यवहार से कौन करता है? कि आत्मा करता है, आ जायेगा वह।

मुमुक्षु: भाई! ऐसी होशियारी से बात की है। किसी भी प्रकार से उसे नयपक्ष रहे ही नहीं।

पू. लालचंदभाई: हाँ!

मुमुक्षु: चारों तरफ से हों! निकल जाये।

मुमुक्षु: सहज आया, बिना सोचे-विचारे सहज ही आता चला गया।

पू. लालचंदभाई: सहज ही! बस सहज ही। पहली तारीख (१ जनवरी १९९०) पर, बहन तो यहाँ आ गई थी और हम, प्लेन की टिकिट थी, तो प्लेन देर से था। अतः थोड़ी चर्चा हुई वहाँ और फिर आये यहाँ।

मुमुक्षु: अर्चनाबेन के पास।

पू. लालचंदभाई: अर्चनाबेन डॉक्टर जो हैं, हाल अमेरिका, उनके घर। समझ गये? तो फिर अमीता और अर्चना और वे तो तत्त्व की रसिक। तो कहा कि भाई, वह फिर से कहो न। वहाँ चर्चा हुई थी 'फिर से लो न' ऐसा कहा। समझ गये? वहाँ (३१ दिसम्बर) अर्चना नहीं थी, अमीता थी। अमीता ने बात की, चर्चा बहुत सुंदर आयी, अमीता ने अर्चना को बताया, तो अर्चना ने कहा, 'भाई, पर्याय स्वभाव फिर से लो न?'

क्योंकि वह भी पात्र जीव है, तत्त्वरसिक है बहुत। इसलिए उसने कहा। उसने कहा, फिर भोजन में अभी देर थी, और प्लेन बहुत विलंबित था इसलिए शांति से फिर से चर्चा, पर्याय स्वभाव की विशेष की।

मुमुक्षु: आप छोड़ने जैसे नहीं हैं। एक क्षण के लिये भी आप।

पू. लालचंदभाई: साथ ही साथ। अमीता भी डॉक्टर होमियोपेथी, अर्चना भी डॉक्टर। समझ गये? वे साथ ही रहीं। आहाहा! मोटर में कुछ बोला हो, तो वह भी लिख लेती।

मुमुक्षु: उसमें ही यह छप गया न?

पू. लालचंदभाई: उसमें ही छपा है।

मुमुक्षु: हमारे लिये बाहर आ गया, साहेब। ये सारी कृपा।

पू. लालचंदभाई: अमीता की बहुत मेहनत है। लिखती भी जरूर, ... सब कुछ। कोई एक वाक्य भी जाने न दे।

मुमुक्षु: उसने ही सबकुछ फाइनल किया था, अमीता ने। लिखकर उसने ही भिजवाया।

पू. लालचंदभाई: हाँ! उसने ही भिजवाया। मेहनत उसने की। क्योंकि तत्त्व की बात है न? बहुत गंभीर बात है। यह कहीं... इसे छपवाने की, छपवाने की जिम्मेदारी अधिक है।

मुमुक्षु: **पर्याय को नय से मत देखो। अरे! पर्याय की कर्ता पर्याय निश्चयनय से है ऐसा भी मत देखो। क्यों? इसमें क्या दोष आता है? -अरे! उसका प्रतिपक्ष खड़ा होता है।** क्या? कि **आत्मा व्यवहारनय से पर्याय को करता है वह बड़ा दोष आ पड़ता है। यह खूब भयंकर दोष है!**

पू. लालचंदभाई: निश्चयनय से पर्याय का कर्ता पर्याय है ऐसा यदि देखेगा, तो व्यवहारनय से आत्मा उसका कर्ता है ऐसा आ जाता है, क्योंकि प्रतिपक्ष नय (होता है), नय प्रतिपक्ष होता है। निश्चयनय से कहो, तो व्यवहारनय से दूसरा कुछ है अंदर में, लेना ही पड़े तुम्हें, बड़ा दोष आयेगा। अतः उलंघ नहीं सकेगा, व्यवहारनय से कर्ता रहेगा, ऊपर जो दोष समझाया था वह यह।

मुमुक्षु: खूब बड़ा दोष आयेगा।

पू. लालचंदभाई: बड़ा दोष आ पड़ता है।

मुमुक्षु: अरे! दोष ऐसा आता है भाई! उसे दोष ख्याल में न आवे, ऐसा दोष आ जाता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ, ऐसा दोष आ जाता है, ऐसा दोष।

मुमुक्षु: घूँटता है अकर्ता, और कर्ता हो रहा है वह उसे पता नहीं चलता।

पू. लालचंदभाई: पता नहीं चलता। मुख से अकर्ता, भाव से कर्ता बन जाता है। चलो आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय में क्रिया हुआ ही करती है, पर्याय का स्वभाव ही कर्तापना है। जैसे द्रव्य का स्वभाव अकर्तापना है। वह किस नय से अकर्तापना है? ऐसा नहीं। स्वभाव से ही अकर्ता है। ऐसे ही पर्याय किस नय से कर्ता है? ऐसा नहीं। ऐसा नहीं।स्वभाव से ही कर्ता है।**

पू. लालचंदभाई: **ऐसा नहीं। स्वभाव से ही कर्ता है।** पर्याय का कर्ता पर्याय स्वभाव से ही है।

मुमुक्षु: यह तो दो बालक, दो बालकों के पास short में (संक्षेप में) इसका संवाद कराने जैसा है।

मुमुक्षु: जबरदस्त! इसका संवाद तो जबरदस्त!

मुमुक्षु: जबरदस्त! short में, main-main point (मुख्य-मुख्य मुद्दे) हों न? दो बालक करें, बहुत अच्छा होगा। जैसे मोह राजा का संवाद हुआ है न?

पू. लालचंदभाई: वह तो अमीता ने सौंपो तो करेगी, व्यवस्था करेगी।

मुमुक्षु: वह तो बहन व्यवस्था करेगी।

पू. लालचंदभाई: हाँ। बहन करेगी व्यवस्था।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा है, भाई।

पू. लालचंदभाई: बहन व्यवस्था करे तो बहुत अच्छा।

मुमुक्षु: बहुत ही अच्छा। लोगों का हित हो ऐसी बात है।

पू. लालचंदभाई: बात सच्ची है, बात सच्ची है।

मुमुक्षु: निश्चयनय से पर्याय पर्याय का कर्ता है तो द्रव्य कर्ता उसमें आ गया।

पू. लालचंदभाई: उसमें तो किसी को दोष लगता ही नहीं न? क्योंकि पर्याय का कर्ता पर्याय है, निश्चय से है। वह कहीं दोष नहीं लगता उसमें किसी को, कि वह तो सत्य बात है। पर्याय का कर्ता पर्याय है, वह निश्चय से तो सत्य बात है। लेकिन

निश्चयनय का प्रतिपक्षनय, व्यवहारनय खड़ा होता है। नहीं तो, वह नय, नहीं तो प्रतिपक्ष नय न हो तो मिथ्यानय हो जाये। सम्यक् नय करने के लिये आत्मा उसका कर्ता, ऐसा करेगा तो मर जायेगा।

मुमुक्षु: मर जायेगा, भयंकर दोष आयेगा।

पू. लालचंदभाई: भयंकर दोष।

मुमुक्षु: आत्मा शाश्वत अकर्ता है वह निकल गया।

पू. लालचंदभाई: अकर्ता है वह निकल गया। व्यवहार से कर्ता कहने से शाश्वत अकर्ता निकल गया। एक समय के लिये कर्ता व्यवहारनय से कहा, (तो) शाश्वत अकर्ता निकल गया। भयंकर दोष। भयंकर दोष।

मुमुक्षु: ध्येय की भूल हो गई।

पू. लालचंदभाई: ध्येय की भूल हो गई।

मुमुक्षु: कमाल कर दिया साहेब। मुझे यह fit (यथार्थ रीति से) बैठा दिया! बोलो! निश्चयनय, इसमें क्या दोष हो गया? तो उपचार से, निश्चयनय सापेक्ष होता है, नय सापेक्ष होता है।

पू. लालचंदभाई: नय सापेक्ष होता है इसलिए ...

मुमुक्षु: तो व्यवहार से आत्मा कर्ता है ऐसा आ गया।

पू. लालचंदभाई: आ गया।

मुमुक्षु: आत्मा तो शाश्वत अकर्ता है, शाश्वत अकर्ता है।

पू. लालचंदभाई: वह निकल गया। आहाहा!

मुमुक्षु: भयंकर दोष ध्येय के लिये।

पू. लालचंदभाई: भयंकर दोष शब्द लिखा है, भयंकर दोष शब्द लिखा है। बात सच्ची है।

मुमुक्षु: धन्य हैं, साहेब! निश्चयनय से पर्याय पर्याय का कर्ता है, यह छोड़ने से अपना आत्मा स्वभाव, ज्ञायक परमात्मा लक्ष में आयेगा। और कोई..., महावीर के मार्ग का पात्र कौन? सूक्ष्म बोध का अभिलाषी।

पू. लालचंदभाई: (सूक्ष्म बोध का) अभलाषी हो...

मुमुक्षु: जो ध्येय को अपने पास संभालकर रखे, शाश्वत।

पू. लालचंदभाई: बस। भयंकर दोष।

मुमुक्षु: **स्वभाव से ही पर्याय में क्रिया हुआ करती है। अविरतरूप से हुआ करती है। उसे रोका नहीं जा सकता, विकारी या अविकारी ऐसा नहीं लेना। सामान्य क्रिया, उत्पाद-व्यय। पर्याय अपने स्वभाव से ही परिणमती है। इसप्रकार पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देखने पर, आत्मा व्यवहार से पर्याय को करता है, वह कर्तापने का उपचार निकल जाता है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! शुद्धोपयोग हो जाता है।

मुमुक्षु: बहन ने शुरुआत में बोला था कि स्वभाव से जानेगा तो अनुभव हो जायेगा।

पू. लालचंदभाई: (अनुभव) हो जायेगा, सही है। स्वभाव से ही देख। बस! उसमें ही अनुभव होता है। नय से देखे तो अनुभव नहीं होता।

मुमुक्षु: प्रतिक्रमण की गाथा में उपचार निकला तो सातवाँ गुणस्थान आ गया।

पू. लालचंदभाई: आ गया। तब तक छठवाँ रहता था। आचार्य भगवान को एक खटक हुई, कुंदकुंद भगवान को। आहाहा! निश्चय रत्नत्रय के परिणाम। (परमार्थ) प्रतिक्रमण है न? शुद्धोपयोग का कर्ता उपचार से? कि नहीं, उपचार से कर्ता नहीं है। आहाहा! वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं, इतने में तो अंदर में (चले जाते हैं)।

मुमुक्षु: जब भाई लेते थे परमार्थ प्रतिक्रमण लिया था तब बहुत जोश था आपको, 'किसके साथ बात करते हैं? किसको देखकर बात करते हैं? उपचार मुझे लागू नहीं पड़ता।'

पू. लालचंदभाई: हाँ, हाँ! ऐसा कहा था।

मुमुक्षु: इसप्रकार बहुत जोश में थे तब।

पू. लालचंदभाई: सच्ची बात है।

मुमुक्षु: 'घर भूल गया है तू। किसको देखकर तू बात करता है?'

पू. लालचंदभाई: उसमें खुश हो गये न भाई-भट्टारक, ऐसे खुश हो गये थे बहुत। सुनने आते थे गुफा में। तुम तो थे न? (भट्टारक) नरम व्यक्ति।

मुमुक्षु: एक दिन तो (सेवक) चौंकी रख गया था, दूसरे दिन सब हटा लिया।

पू. लालचंदभाई: एक दिन चौंकी रखी उसने, उनका (भट्टारक का) तो ऊँचा आसन (होता है), वे तो वहाँ के महाराज कहलाते हैं न? त्यागी। दूसरे दिन उसको

कहा, 'चौंकी हटा दो'। नीचे बैठ गये।

मुमुक्षु: जमीन पर, जिस प्रकार हम सब बैठे इसी तरह बैठ गये। ऐसे ही बैठे न आपके सामने तो। ऊँचा बैठे कोई?

मुमुक्षु: उन्हें ख्याल आ गया न।

पू. लालचंदभाई: चलो आगे।

मुमुक्षु: उपचार का जो निषेध आया, उपचार का निषेध आया, वह भी तीर्थंकर की वाणी है। पद्मप्रभमलधारी देव भावी तीर्थंकर की वाणी में उपचार का निषेध आया। द्रव्य को द्रव्य स्वभाव से देख...

पू. लालचंदभाई: द्रव्य को द्रव्य स्वभाव से देख और पर्याय को पर्याय स्वभाव से देख... यह बात सच्ची है। यह बात अच्छी की है। टीकाकार ने निकाली। तीर्थंकर के द्रव्य की स्वभाव से ही कुछ विशिष्टता होती है, कुदरती, गुरुदेव जैसे सूर्यकीर्ति होनेवाले हैं। आगे।

मुमुक्षु: **पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देखने पर, आत्मा व्यवहार से पर्याय को करता है उस कर्तापने का उपचार निकल जाता है।**

पू. लालचंदभाई: निकल गया।

मुमुक्षु: **जैसे कि ज्ञान की पर्याय समय समय प्रगट होती है। तो आत्मा किस नय से ज्ञान की पर्याय को करता है?**

पू. लालचंदभाई: ज्ञान की पर्याय तो स्वयं प्रगट होती है, प्रगट ही हुआ करती है समय-समय। तो किस नय से उसे प्रगटाता है, करता है?

मुमुक्षु: **तो कहते हैं कि व्यवहारनय से आत्मा ज्ञान की पर्याय का कर्ता है, निश्चयनय से तो आत्मा ज्ञान की पर्याय का भी अकर्ता ही है। अब यह जो व्यवहारनय से कर्तापने का उपचार आता है उसे उलंघ जाओ कि पर्याय में तो कार्य पर्याय के स्वभाव से ही होता है, पर्याय में तो कार्य पर्याय के स्वभाव से ही होता है - तो अरे! व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है वह उपचार झूठा हुआ**।

पू. लालचंदभाई: झूठा हुआ। ऊपर की बात आयी न? झूठा ठहरा।

मुमुक्षु: **तो जो नयों के विकल्प उठते थे वे छूटकर अंदर में चला गया।**

पू. लालचंदभाई: **चला गया।**

मुमुक्षु: **तब पर्याय के स्वभाव का भी ज्ञाता हो जाता है।**

पू. लालचंदभाई: उपचार से कर्ता निकल गया, तो पर्याय का भी ज्ञाता हो गया।

मुमुक्षु: द्रव्य में बैठा न?

पू. लालचंदभाई: द्रव्य में बैठा न! शुद्धोपयोग आया न!

मुमुक्षु: हाँ जी! ज्ञाता में बैठ गया।

पू. लालचंदभाई: बस!

मुमुक्षु: **द्रव्य स्वभाव का ज्ञाता और पर्याय स्वभाव का भी ज्ञाता। द्रव्य स्वभाव का ज्ञाता और पर्याय स्वभाव का भी ज्ञाता - बीच में जो नयों के विकल्प उठते थे- निश्चयनय के-व्यवहारनय के, वे छूटकर अकेला अकेला-अकेला ज्ञान रहा।**

पू. लालचंदभाई: **अकेला ज्ञान रहा।**

मुमुक्षु: **उस अकेले ज्ञान में आनंद आता है।**

पू. लालचंदभाई: **अकेले ज्ञान में आनंद आता है।** नय वाले ज्ञान में आनंद नहीं आता।

मुमुक्षु: आनंद नहीं है न।

पू. लालचंदभाई: बस अब थोड़ा है, दो मिनिट। ले लो इतना।

मुमुक्षु: **द्रव्य स्वभाव का ज्ञाता और पर्याय स्वभाव का भी ज्ञाता - बीच में जो नयों के विकल्प उठते थे- निश्चयनय के-व्यवहारनय के, वे छूटकर अकेला ज्ञान रहा - उस अकेले ज्ञान में आनंद आता है।**

पू. लालचंदभाई: नय मिश्रित ज्ञान था न? नय के विकल्प निकल गये तो शुद्धोपयोग हो गया और उसमें आनंद आता है।

ॐ

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, पृष्ट २३-२४
उषाकिरण अपार्टमेंट, राजकोट
तारीखः तारीखः २०-१-१९९१ प्रवचन
પ્રવચન LA ४११

२२ (वाँ) पेज पूरा हुआ। २३वाँ आता है। बोलो।

मुमुक्षुः **इसलिए पर्याय की कर्ता पर्याय स्वभाव से ही है। निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है ऐसा भी नहीं लेना। किसी नय से स्वरूप की प्राप्ति नहीं है... ज्ञान से स्वरूप की प्राप्ति है। स्वभाव से स्वभाव की प्राप्ति है।** इस तरफ, २३ पेज।

पू. लालचंदभाईः २३ पेज। २३ पेज की दूसरी लाइन।

मुमुक्षुः **इसलिए पर्याय की कर्ता पर्याय स्वभाव से ही है। निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है ऐसा भी नहीं लेना।**

पू. लालचंदभाईः ऐसा लेने से क्या होगा? कि निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है तो व्यवहारनय से आ जायेगा, प्रतिपक्ष, इसप्रकार। तो व्यवहारनय से आत्मा (पर्याय को) करता है। निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है तो व्यवहानय से आत्मा पर्याय को करता है, ऐसा कहे बिना आ जायेगा अंदर, अतः कर्ताबुद्धि छूटेगी ही नहीं। व्यवहार के नाम पर भी कर्ताबुद्धि पुष्ट हो जाती है। और व्यवहार से पर्याय का ज्ञाता है उसमें ज्ञाताबुद्धि का पुष्ट हो जाती है। क्या कहा?

मुमुक्षुः व्यवहार से पर्याय का ज्ञाता है।

पू. लालचंदभाईः ज्ञाता है।

मुमुक्षुः उसमें ज्ञाताबुद्धि पुष्ट हो जाती है।

पू. लालचंदभाईः (उसमें ज्ञाताबुद्धि) पुष्ट हो जाती है।

मुमुक्षुः कर्ता का जहर निकल गया।

पू. लालचंदभाईः निश्चयनय से, लिखते हैं, **निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है ऐसा भी नहीं लेना।** ऐसा लोगे तो व्यवहारनय से आत्मा उसे करता है। निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है और व्यवहारनय से, प्रतिपक्षनय तो तुम्हें लेना

पड़ेगा, क्योंकि नय तो सापेक्ष होते हैं, **निरपेक्षा नया मिथ्या** (आप्त-मीमांसा, गाथा १०८)।

मुमुक्षु: निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है तो व्यवहारनय से आत्मा पर्याय को करता है।

पू. लालचंदभाई: (आत्मा) पर्याय को करता है ऐसा आये बगैर रहेगा ही नहीं, अतः कर्ताबुद्धि ही रही, नय के नाम पर।

मुमुक्षु: नय में कर्ताबुद्धि होती है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ)। नय जो उठता है वहाँ नय का कर्ता बन गया, ऐसा कहते हैं। नय में कर्ताबुद्धि है। क्या कहा?

मुमुक्षु: नय में कर्ताबुद्धि है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान में कर्ताबुद्धि नहीं होती। काल पका होगा उसका काम हो जायेगा। **निश्चयनय से पर्याय पर्याय को करती है ऐसा भी नहीं लेना।** ऐसा लेने में क्या दोष आता है? कि आत्मा व्यवहार से कर्ता पर्याय का आ जायेगा, अर्थात् कर्ताबुद्धि छूटेगी नहीं तेरी, इसप्रकार। फिर आगे। **किसी नय से**...

मुमुक्षु: **किसी नय से स्वरूप की प्राप्ति नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! अर्थात् निश्चयनय से नहीं है और व्यवहारनय से नहीं है, **किसी नय से** ऐसा कहा। नय से देखोगे तो कर्ताबुद्धि रह जायेगी। कहा ना अभी? नय का अवलंबन लोगे तो नय का कर्ता हो जायेगा, ज्ञान प्रगट नहीं होगा, नय प्रगट होगा। **श्रुतविकल्पा नया** (समयसार गाथा १४९, तात्पर्यवृत्ति टीका) श्रुतज्ञान का भेद, उसे विकल्प कहते हैं। आहाहा! **किसी नय से**, बोलो।

मुमुक्षु: **किसी नय से स्वरूप की प्राप्ति नहीं है... ज्ञान से स्वरूप की प्राप्ति है।**

पू. लालचंदभाई: **किसी नय से** ऐसा। दोनों में से **किसी नय**, ऐसा कहा। व्यवहारनय से प्राप्ति नहीं है और निश्चयनय से प्राप्ति है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। **किसी नय** ये शब्द प्रयोग किया है न?

मुमुक्षु: **ज्ञान से स्वरूप की प्राप्ति है।** अर्थात् कि **स्वभाव से स्वभाव की प्राप्ति है। पर्याय को उसके स्वभाव से देखने पर उसकी करने की बुद्धि छूट जाती है और करने का उपचार भी छूट जाता है।**

पू. लालचंदभाई: मिथ्यात्व का दोष तो छूटता है परंतु चारित्र का दोष छूटकर श्रेणी आ जाती है, ऐसा कहते हैं। शुद्धोपयोग हो जाता है। पहले शुद्धोपयोग और फिर आगे बढ़े तो श्रेणी। जैसा काल, उसका स्वकाल। दो दोष निकल जाते हैं। आहाहा! गूढ़ है गूढ़ हों, सब कुछ। फिर से **पर्याय को**...

मुमुक्षु: **पर्याय को उसके स्वभाव से देखने पर।**

पू. लालचंदभाई: **उसकी** अर्थात् पर्याय की...

मुमुक्षु: पर्याय की **करने की बुद्धि छूट जाती है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! होने योग्य होता है। पर्याय को उसके स्वभाव से देखो। 'मैं करता हूँ' वह निकल जायेगा। आहाहा! बुद्धि छूट जायेगी। कर्ताबुद्धि छूटेगी तो मिथ्यात्व छूटेगा पहले। और फिर उपचार, कर्तानय, कर्तानय से तो कर्ता है न? 'कर्तानय से तो कर्ता है न' वह शल्य रह जाता है। 'कर्तानय से तो राग का कर्ता है या नहीं?' ऐसा प्रश्न बहुत आता है मेरे सामने। **और करने का उपचार भी छूट जाता है** और शुद्धोपयोग हो जाता है। पहले कर्ताबुद्धि जाती है तो शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन, और उपचार गया तो चारित्र का शुद्धोपयोग आता है, लीनता। समझ में आया?

मुमुक्षु: परमार्थ प्रतिक्रमण में सातवाँ गुणस्थान आ गया उपचार का निषेध आया तो।

पू. लालचंदभाई: हाँ! सातवाँ आ गया। कर्ताबुद्धि तो गई थी पहले, तो सम्यग्दर्शन तो हो गया था। लेकिन परमार्थ प्रतिक्रमण नहीं हुआ था, व्यवहार प्रतिक्रमण आता था-विकल्प। आहाहा! विषकुंभ आता था। स्वयं विषकुंभ कहते हैं हों, छठ्ठे गुणस्थान में-विकल्प को। तीसरी भूमि आयी, अमृतकुंभ हो गया। आहाहा! प्रतिक्रमण और अप्रतिक्रमण से अलग, तीसरी अप्रतिक्रमण। आहाहा! मिथ्यादृष्टि के अप्रतिक्रमण का तो निषेध करते ही आये हैं, वह तो जहर का घड़ा है ही, विषकुंभ। उसकी तो हम बात ही करते नहीं, मिथयादृष्टि का अप्रतिक्रमण। परंतु सम्यग्दृष्टि को प्रतिक्रमण का विकल्प उठता है, वह भी जहर का घड़ा है, विषकुंभ है। इसीलिए तीसरी भूमिका में जाने पर अमृतकुंभ, अप्रतिक्रमण। आहाहा!

मुमुक्षु: प्रतिक्रमण विषकुंभ?

पू. लालचंदभाई: प्रतिक्रमण विषकुंभ।

मुमुक्षु: अप्रतिक्रमण वह?

पू. लालचंदभाई: (अप्रतिक्रमण) अमृतकुंभ। तब ऐसा प्रश्न उठता है कि 'हमारा यह अप्रतिक्रमण'? यह मिथ्यादृष्टि का नहीं है, वह तो पाप का घड़ा है, उसकी बात तो हम करते ही नहीं हैं। आहाहा! यह समयसार में भरा है सब हों, माल। उपचार भी छूट जाता है, उपचार को छोड़ता नहीं है अभ, छोड़े तो कर्ताबुद्धि हो जाये!

मुमुक्षु: सही है। छूट जाती है।

मुमुक्षु: उपचार के जो विशेषण होने योग्य होता है।

पू. लालचंदभाई: बस! आगे।

मुमुक्षु: **कार्य स्वयं होता हो उसमें दूसरा करे ऐसे उपचार का अवकाश ही कहाँ है? कार्य स्वयं होता हो उसमें दूसरा करे ऐसे उपचार का अवकाश ही कहाँ है?**

पू. लालचंदभाई: निर्मल पर्याय स्वयं होती है उसे आत्मा करता है ऐसा कहाँ रहा उसमें? अवकाश नहीं है।

मुमुक्षु: **बस स्वयं से होता है। आत्मा ज्ञाता हो जाता है।**

पू. लालचंदभाई: आहाहा! माल भरा है बहन! माल, मालामाल हो जाये। आहाहा! आगे।

मुमुक्षु: **नय के विकल्पों में वह विकल्प का कर्ता बन जाता है।**

पू. लालचंदभाई: अभी कहा न? नय के विकल्प में आत्मा कर्ता हो जाता है। कहा था न बहन ने, यह।

मुमुक्षु: **नय के विकल्पों में वह विकल्प का कर्ता बन जाता है, राग का कर्ता बन जाता है। उसे पता ही नहीं चलता। यदि विकल्प छूटे तो ज्ञान प्रगट होवे, तो ज्ञान का कर्ता बने। ज्ञाता हो जाता है - यह रहस्य है। नय के विकल्पों में वह विकल्प का कर्ता बन जाता है, राग का कर्ता बन जाता है। उसे पता ही नहीं चलता।**

पू. लालचंदभाई: दो बातें आयी, इन्द्रियज्ञान का कर्ता और राग का कर्ता।

मुमुक्षु: **यदि विकल्प छूटे तो ज्ञान प्रगट होवे, तो ज्ञान का कर्ता बने। ज्ञाता हो जाता है - यह रहस्य है।**

पू. लालचंदभाई: पहले कहा कि ज्ञान का कर्ता बनता है। फिर कहते हैं '(ज्ञान का) कर्ता' भी नहीं, ज्ञाता हो जाता है, ऐसा कहा। वहाँ पूर्णविराम होता है। कर्ता का उपचार कहना पड़ा लेकिन असल में ज्ञाता है, यह रहस्य है। कहना पड़ता है, राग का कर्ता होता था वह ज्ञान का कर्ता हुआ अब, ऐसा कहना पड़ता है। **ज्ञाता हो जाता है - यह रहस्य है।** यह रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है न? इसलिए रहस्य शब्द है।

मुमुक्षु: **श्री समयसार श्लोक-९५। श्लोकार्थ:- [विकल्पकः परं कर्ता] विकल्प करनेवाला ही केवल कर्ता है और [विकल्पः केवलम् कर्म] विकल्प ही केवल कर्म है; (अन्य कोई कर्ता-कर्म नहीं है;) [सविकल्पस्य] जो जीव विकल्प सहित है उसका [कर्तृकर्मत्वं] कर्ताकर्मपना [जातु] कभी [नश्यति न] नष्ट नहीं होता। विकल्प करनेवाला ही केवल कर्ता है और विकल्प ही केवल कर्म है; (अन्य कोई कर्ता-कर्म नहीं है;) जो जीव विकल्प सहित है उसका कर्ताकर्मपना कभी नष्ट नहीं होता।**

पू. लालचंदभाई: कर्ता-कर्म अधिकार में आत्मा और आस्रव - राग का भेदज्ञान कराया। आस्रव कहो या राग कहो, आकुलतामय है, अचेतन जड़ है, उससे भेदज्ञान कराके अनुभव कराया। और जब नयों के विकल्प में उलझ गया था उसे फिर कर्ता-कर्म अधिकार में ही विकल्प कर्म बनता था, नय का विकल्प। पहले शुरुआत में राग कर्म बनता था, फिर विकल्प कर्म बना। विकल्प, अर्थात् कि इन्द्रियज्ञान, कर्म बना। उसमें राग कर्म बनता था, इसमें इन्द्रियज्ञान कर्म बना। **श्रुतविकल्पा नया** (समयसार गाथा १४९, तात्पर्यवृत्ति टीका) है न, इसलिए। अर्थात् वह कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति यहाँ तक रहती थी, नय का विकल्प, नय उठा अर्थात् विकल्प हो गया और उसका कर्ता बन गया। आहाहा! उसे ऐसा लगता है कि मैं राग का कर्ता नहीं हूँ, उसे ऐसा लगता है। क्योंकि जैसा स्वरूप है ऐसा मैं विचार करता हूँ, उसमें कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति तो आती नहीं है। आहाहा! परंतु वह राग का कर्ता और इन्द्रियज्ञान का कर्ता बन जाता है, दोनों साथ में हैं अविनाभाव।

मुमुक्षु: इन्द्रियज्ञान का कर्ता भी राग का कर्ता (बन) ही जाता है। इन्द्रियज्ञान कर्म बना।

पू. लालचंदभाई: बन ही जाता है। बस! इसीलिए कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति यहाँ तक ले ली। आहाहा! पक्षातिक्रांत न होवे तब तक विकल्प का कर्ता (होता है)।

आहाहा! वह ऊपर आ गया है न? **नयों के विकल्पों में वह विकल्प का कर्ता बन जाता है, राग का कर्ता बन जाता है।** दोनों लिये न ऊपर। नय का कर्ता, नय के विकल्प का और राग का कर्ता, दोनों आ गये न!

मुमुक्षु: **भावार्थ:- जब तक विकल्पभाव है तब तक कर्ताकर्मभाव है; जब तक विकल्पभाव है तब तक कर्ताकर्मभाव है।**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् अनादि से जब तक विकल्प की लार चली आती है, एक समय भी कट नहीं हुई, समझ गये? एक समय भी कटी नहीं है, उससे भिन्न पड़ा नहीं है, निर्विकल्पभाव आया नहीं और विकल्प चला करते हैं अभी। ऐसा अनादि का प्रवाह विकल्प का जो था, वह **जब तक विकल्पभाव है**। ऐसे, अनादि से प्रवाह क्रम, वह टूटा नहीं है **तब तक कर्ताकर्म भाव** नय के विकल्प के साथ **है**। **जब विकल्प का अभाव होता है**, इसप्रकार। अर्थात् विकल्प के साथ एकताबुद्धि टूटकर निविकल्प अनुभव हो तब प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। **विकल्प का अभाव हो जाता है तब कर्ताकर्मभाव का भी अभाव हो जाता है।** तब ज्ञाता-ज्ञेय अंदर में आया, बस। आहाहा! फिर बाहर में ज्ञाता-ज्ञेय व्यवहार कहा जाता है, जाना हुआ प्रयोजनवान, वह बाद में।

पहले ज्ञाता-ज्ञेय अभेद होता है यहाँ। ज्ञाता की व्याख्या ही वह कही स्वयं स्वयं को जानता है इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है (समयसार, कलश २७१ भावार्थ)। पर को जानता है इसीलिए ज्ञाता, ऐसा नहीं। स्व-पर को जानता है इसीलिए ज्ञाता, ऐसा नहीं। स्वयं स्वयं को जानता है इसलिए आत्मा स्वयं ज्ञाता है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के तीन भेद करके, एक एक के, तीनों शब्द के भाव भरे हैं, तीनों में, २७१ में। उसमें यह ज्ञाता की व्याख्या है, स्वयं अपने को ही जानता है इसलिए स्वयं आत्मा, उसका नाम ज्ञाता है। स्वयं ही ज्ञात होता है और दूसरा ज्ञात नहीं होता इसलिए स्वयं ज्ञेय है। राग भी ज्ञात हो और ज्ञायक भी ज्ञात हो, ऐसा ज्ञेयपना नहीं है। दो को जाने ऐसा ज्ञाता नहीं है, दो जानने में आयें ऐसा ज्ञेय नहीं है। एकसाथ दो जानने में आ जायें, देह और आत्मा दो जानने में आ जायें, दो ज्ञेय हो जायें, ऐसा नहीं है। और दो का ज्ञाता हो जाये ऐसा भी नहीं है। एक का ही ज्ञाता और एक ही ज्ञेय होता है। उसका भेद छूट जाता है तब अनुभव होता है। २७१ में लिया है यह सब।

मुमुक्षु: ज्ञान में दो किस प्रकार से लेना? एक तो ज्ञेय आया, और ज्ञाता आया।

ज्ञान में दो किस प्रकार लेना?

पू. लालचंदभाई: ज्ञान किस प्रकार लेना? कि ज्ञान एक ही है। इन्द्रियज्ञान-दूसरा ज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान, दो ज्ञान, ऐसा नहीं है। ज्ञान - अतीन्द्रियज्ञानमय भगवान आत्मा वह ही ज्ञान है। ज्ञान भी आत्मा, ज्ञेय भी आत्मा और ज्ञाता भी आत्मा। ज्ञान - अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा है। उस ज्ञान के दो भेद नहीं हैं। जैसे ज्ञेय दो नहीं हैं, उसीप्रकार ज्ञान दो प्रकार का उत्पन्न नहीं होता। एक ही प्रकार का ज्ञान, एक ही प्रकार का ज्ञेय, और एक ही प्रकार का ज्ञाता। तीनों में एक ही प्रकार है। इसप्रकार अनुभव के काल में, अतीन्द्रियज्ञान भी हो और इन्द्रियज्ञान भी हो, ऐसे ज्ञान के दो प्रकार नहीं हैं। और ज्ञायक ज्ञेय हो और देहादि भी ज्ञेय हों ऐसे दो प्रकार के ज्ञेय नहीं बनते। ऐसे ज्ञाता अपना भी ज्ञाता और छह द्रव्यों का (भी) ज्ञाता, इसप्रकार दो का ज्ञाता नहीं बन सकता। एक का ही ज्ञाता और एक ही ज्ञेय और एक ही ज्ञान, उसके भेद निकल जायें तो अनुभव हो जाता है।

लिया है न उसमें? एक ही लिया है न? स्वज्ञेय लिया है न। आहाहा! परज्ञेय नहीं लिया उसमें। ज्ञान में अतीन्द्रियज्ञान लिया, इन्द्रियज्ञान उसमें नहीं होता। अनुभव में जाता है तब ज्ञान के दो प्रकार, ज्ञेय के दो प्रकार, और ज्ञाता के दो प्रकार? तीनकाल में नहीं होगा। अनुभव के काल में एक ही ज्ञान, एक ही ज्ञेय और एक ही ज्ञाता। ज्ञाता के दो प्रकार नहीं बनते, ज्ञेय के दो प्रकार बनते नहीं और ज्ञान के दो प्रकार बनते नहीं। अद्भुत से अद्भुत २७१ कलश है। अनुभव की रीति बताई है उसमें।

मुमुक्षु: ज्ञान में दो प्रकार नहीं होते वह तो समझ में आता है। परंतु ज्ञेय में तो दो प्रकार आते हैं न?

पू. लालचंदभाई: बिल्कुल नहीं आते। ज्ञायक ही ज्ञेय होता है। राग या देह या देव-गुरु-शास्त्र ज्ञेय होते ही नहीं। उसमें व्याख्या की है ज्ञेय की। स्वयं 'ही' ज्ञात होने योग्य होने से। पर ज्ञात होने योग्य (नहीं), स्व-पर ज्ञात होने योग्य (नहीं), ऐसे दोनों को निकाल दिया। ज्ञेय की व्याख्या, स्वयं ही ज्ञात होने योग्य है। आहाहा! ध्येय, ज्ञेय होता है और फिर फल में, ज्ञेय - सामान्य-विशेषात्मक पूरा आत्मा, ज्ञेय हो जाता है। परंतु एक ज्ञेय है, इसप्रकार। वह किसी ने प्रश्न किया था हमसे, पता है न? कि ज्ञेय में तो द्रव्य-पर्याय दोनों ज्ञात होते हैं? कि नहीं! एक ही है, अभेद। एक ही ज्ञेय है, ज्ञेय दो

नहीं हैं। आहाहा! एक त्रिकाली ज्ञेय और आनंद आया (वह दूसरा) ज्ञेय, ऐसा नहीं है। आहाहा! कोई बात है!

उपादेयरूप से भी एक ज्ञेय, ज्ञायक - सामान्य। और जानने की अपेक्षा से भी अभेद ज्ञानपर्याय-परिणत पूरा आत्मा, सामान्य-विशेष दोनों, वह ज्ञेय। आहाहा! एक ज्ञेय में अनंत गुण हैं और दूसरा ज्ञेय नया होता है, उसमें आनंद पर्याय सहित पूरा आत्मा ज्ञान का ज्ञेय हो जाता है। अपरिणामी ज्ञेय और परिणामी ज्ञेय, ऐसा भेद नहीं है। समझाने के लिए है। एक ही ज्ञान, एक ही ज्ञेय और एक ही ज्ञाता। ज्ञाता दो का नहीं, दो प्रकार के ज्ञेय नहीं और दो प्रकार के (ज्ञान नहीं)। वे कहते हैं कि 'ज्ञान के दो प्रकार या एक प्रकार?' - वह रह गया था। थोड़ा इन्द्रियज्ञान और थोड़ा अतीन्द्रियज्ञान, दो के द्वारा आत्मा ज्ञात होता है? क्या कह रहे हो?

मुमुक्षुः अतीन्द्रियज्ञान एक ही ज्ञान है।

पू. लालचंदभाईः इन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा जानने में नहीं आता?

मुमुक्षुः नहीं जानने में आता, किसी भी तरह से जानने में नहीं आता।

पू. लालचंदभाईः लेकिन अकेले इन्द्रियज्ञान से जानने में नहीं आता, प्रेमचंदजी। अकेले इन्द्रियज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आता परंतु साथ में अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है तब दो मिलकर आत्मा को जानते हैं न?

मुमुक्षुः नहीं।

पू. लालचंदभाईः मना करते हैं। तुम बोलो मत कुछ। मना करते हैं।

मुमुक्षुः अकेले अतीन्द्रियज्ञान में।

पू. लालचंदभाईः अकेला अतीन्द्रियज्ञान?

मुमुक्षुः अकेला।

पू. लालचंदभाईः तो एकांत नहीं हो जायेगा?

मुमुक्षुः सम्यक् एकांत।

पू. लालचंदभाईः शाबाश! अब ठीक है, सही है।

बहन, अभी-अभी आये तब आप को बात की, कि शुद्धनय का उपदेश विरल है। यदि उपदेश बाहर आता है तो उसे ग्रहण करनेवाले होते ही हैं। शारदाबहन ने कहा, लिफ्ट में आ रहे थे ऊपर 'स्वभाव से शुद्ध हूँ'। मैंने कहा ' निश्चयनय से शुद्ध है आत्मा'। कि 'नहीं! तो व्यवहारनय से अशुद्ध आ जायेगा' ऐसा

कहा। तो अशुद्धता आ जायेगी, व्यवहारनय से अशुद्ध। निश्चयनय से शुद्ध तो व्यवहारनय से अशुद्ध। स्वभाव से शुद्ध तो? आहाहा! शुद्ध की दृष्टि हो जायेगी। अशुद्धता कहाँ गई वह हम नहीं जानते! फिर मिथ्यात्व की अशुद्धता ढूँढने जायेंगे तो (भी) नहीं मिलेगी। अवस्तु, मिथ्यात्व जैसी वस्तु नहीं है। आहाहा! परंतु स्याद्वाद से, अतीन्द्रियज्ञान से और इन्द्रियज्ञान (से), दो ज्ञान के द्वारा एक आत्मा ज्ञात होता है?

मुमुक्षु: नहीं, नहीं ज्ञात होता। वह ज्ञान ही नहीं है, इन्द्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान एक, तो ज्ञेय तो दो रखो?

मुमुक्षु: नहीं-नहीं। ज्ञान एक तो ज्ञेय भी एक ही है।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! और ज्ञाता?

मुमुक्षु: ज्ञाता भी एक ही है। एक का ही ज्ञाता है।

पू. लालचंदभाई: यह २७१ कलश का खुलासा। अच्छा। चलो। विकल्प आया न, उसमें निकला सब। अरे! एक बार निर्विकल्प अनुभव तो कर ले! आहाहा! स्वप्रकाशक लक्षण के द्वारा भगवान आत्मा को एक बार जान ले न, भाई! भव का अंत आयेगा बापू! **जब तक विकल्पभाव है तब तक कर्ताकर्मभाव है; जब विकल्प का अभाव होता है तब कर्ताकर्मभाव का भी अभाव होता है**। २४ पेज, अंतिम।

आहाहा! एक विचार आया था भरतभाई, तुम्हारे से पूछने का कि इस भरतक्षेत्र में चौबीस तीर्थंकर होते हैं, भरतक्षेत्र में। और ऐरावत में तीर्थंकर होते हैं उस समय, यहाँ होते हैं तब?

मुमुक्षु: हाँ! उस ही समय होते हैं। वहाँ भी २४ का क्रम होता है।

पू. लालचंदभाई: वहाँ भी २४?

मुमुक्षु: जिसप्रकार यहाँ होते हैं उसीप्रकार वहाँ होते हैं।

पू. लालचंदभाई: ठीक, समझ में आ गया। हेतुवश विचार आया था वह, ऐरावत का। हालांकि मैंने सुना था कि जैसा यहाँ होता है ऐसा वहाँ होता है, सिमीलरली (similarly-उसके जैसा)।

मुमुक्षु: जब यहाँ काल होता है तब वहाँ भी काल होता है।

पू. लालचंदभाई: यहाँ पाँचवा आरा तो वहाँ भी पाँचवा आरा?

मुमुक्षु: हाँ जी।

पू. लालचंदभाई: ठीक! ऐरावत क्षेत्र है, वह जंबूद्वीप का।

मुमुक्षु: पाँच ऐरावत हैं।

पू. लालचंदभाई: पाँच ऐरावत। हमारे पिताजी को भूगोल का बहुत ज्ञान था। ऐसे ही खीमचंदभाई को भी बहुत ज्ञान था। उनकी विरासत इन्हें मिली है इसीलिए इनसे हम पूछ लेते हैं। चलो आगे।

मुमुक्षु: **नय से वस्तु की सिद्धि करता है, नय से वस्तु की सिद्धि करता है तो विकल्पों का कर्ता बनता है।**

पू. लालचंदभाई: पदार्थ की सिद्धि। वस्तु अर्थात् पदार्थ की सिद्धि (नय से) करता है तो विकल्पों का कर्ता बनता है।

मुमुक्षु: **नयों से भिन्न स्वभाव से वस्तु को सिद्ध करो तो नय के विकल्प रहित ज्ञान प्रगट होता है।** अक्षरशः परम सत्य है।

मुमुक्षु: स्वभाव से निश्चयनय का निषेध, निश्चयनय से व्यवहार का निषेध।

पू. लालचंदभाई: हाँ! निश्चयनय से व्यवहार का निषेध और स्वभाव से निश्चयनय के विकल्प का निषेध हो गया, अनुभव, ज्ञान प्रगट होता है। वह अज्ञान था, नय ज्ञान है वह वस्तुतः अज्ञान है, ज्ञान नहीं है। क्योंकि नय के द्वारा आत्मा का अनुभव नहीं होता, इसलिए वह ज्ञान नहीं है अपितु अज्ञान है, अज्ञान।

मुमुक्षु: **नयों से भिन्न स्वभाव से वस्तु को सिद्ध करो तो नय के विकल्प रहित ज्ञान प्रगट होता है, जो द्रव्य स्वभाव को तो जानता है परंतु पर्याय स्वभाव भी जैसा है वैसा उसमें जानने में आ जाता है।**

पू. लालचंदभाई: **जानने में आ जाता है।** द्रव्य को जानने पर पर्याय जैसी है वैसी ज्ञात होती है। दोनों का ज्ञाता, यह आ गया है अपने (वांचन में) तो।

मुमुक्षु: **ज्ञान विकल्प से रहित 'मध्यस्थ' हुआ। ज्ञान विकल्प से रहित 'मध्यस्थ' हुआ।**

पू. लालचंदभाई: **'मध्यस्थ' हुआ** अर्थात् वीतरागता हुई, मध्यस्थता में राग-द्वेष का द्वंद निकल गया, वीतरागता है। और **विकल्प में**...

मुमुक्षु: **विकल्प में पक्षपात था**।

पू. लालचंदभाई: था, अर्थात् कि विधि-निषेध के विकल्प थे उसमें राग-द्वेष। निषेध में द्वेषबुद्धि, विधि में रागबुद्धि थी।

मुमुक्षु: **विकल्प में पक्षपात था अर्थात् कि राग-द्वेष था।**

पू. लालचंदभाई: देखो आया! उसमें मध्यस्थता, राग-द्वेष रहित वीतरागता।

मुमुक्षु: **राग-द्वेष था, क्रम क्रम से जानता था।**

पू. लालचंदभाई: राग-द्वेष होने का कारण, अक्रम से नहीं - क्रम क्रम से जानता था। द्रव्य को जाने, क्षण में पर्याय को जाने, एक को जाने तो दूसरे का जानना न रहे, इसप्रकार। राग-द्वेष हुआ करता है।

मुमुक्षु: **नयों से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान**, **नयों से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान द्रव्य-पर्याय के स्वभाव को अक्रम जानता है।**

पू. लालचंदभाई: अक्रम, एक समय में। सामान्य-विशेष को एक समय में जान लेता है। आहाहा! यह पक्षातिक्रांत की बात चल रही है न? दो नयों के विषय को जानता है। इसमें नीचे आधार आयेगा फिर। सही है।

मुमुक्षु: **दोनों नयों का ज्ञाता है, किसी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता।** परम निर्दोष बात है।

पू. लालचंदभाई: पल थे, पल!

मुमुक्षु: **नयों से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान द्रव्य-पर्याय के स्वभाव को अक्रम जानता है।**

पू. लालचंदभाई: दूसरी बार पढ़ा उन्होंने, बड़े अक्षर थे न, खुद की पसंद की बात थी न।

मुमुक्षु: **अक्रम जानता है। दोनों नयों का ज्ञाता है, किसी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता।**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् कोई विकल्प उत्पन्न नहीं होता। विकल्प बिना का ज्ञान द्रव्य को भी जानता है और पर्याय को भी, युगपद्, एक समय में जानता ही है, बस! स्वभाव है उसका।

मुमुक्षु: नय से भिन्न पड़ा हुआ।

पू. लालचंदभाई: नय से भिन्न पड़ा हुआ। अंदर में स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। आगे।

मुमुक्षु: **द्रव्य से पर्याय नहीं होती, पर्याय के स्वभाव से पर्याय होती है। उत्पाद-व्यय प्रति समय हुआ ही करता है। यह दो स्वभावों की बात अंतिम है।**

पू. लालचंदभाई: 'द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव' की बात अंतिम है।

मुमुक्षु: **जिसका मर्म प्राप्त होने पर पक्षातिक्रांत होकर अनुभव होता है; साक्षात् ज्ञाता होता है।**

पू. लालचंदभाई: अंतिम, पूर्णाहुति है न?

मुमुक्षु: **समयसार गाथा १४३। पक्षातिक्रांत का (पक्ष को जो उलंघ गया हो उसका) स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप गाथा अब कहते हैं:-**

नयद्वयकथन जाने ही केवल समयमें प्रतिबद्ध जो।
नयपक्ष कुछ भी नहीं ग्रहे, नयपक्षसे परिहीन सो।।१४३।।

पू. लालचंदभाई: यह (गाने का) राग बहुत अच्छा है। इस राग में ही ४१५ गाथा रेकॉर्ड कर लेंगे। यह राग भी अच्छा है। ४१५ गाथायें जैसे इंदुबेन धानक की हैं न, ऐसे। बहुत अच्छा है यह राग।

मुमुक्षु: **गाथार्थ:- [नयपक्षपरिहीन:] नयपक्ष से रहित जीव,**

पू. लालचंदभाई: अर्थात् विकल्प से रहित।

मुमुक्षु: **[समयप्रतिबद्धः] समय से प्रतिबद्ध होता हुआ (अर्थात् चित्स्वरूप आत्मा का अनुभव करता हुआ)**, देखो इसमें कितना अच्छा क्रम लिया है।

पू. लालचंदभाई: अच्छा क्रम लिया है।

मुमुक्षु: **नयपक्षपरिहीनः।**

पू. लालचंदभाई: हाँ, अर्थात् विकल्प से रहित। विकल्प छूटा, विकल्प छूटा तब क्या फल आया?

मुमुक्षु: क्या फल आया? कि **समय से प्रतिबद्ध हुआ** अर्थात् चित्स्वरूप आत्मा का अनुभव हुआ।

पू. लालचंदभाई: अनुभव हुआ। उसमें, नय में अनुभव रुकता था, बाधक था। नय बाधक हैं, साधक नहीं। जो जो साधक तेऊ. ..

मुमुक्षु: जे जे वस्तु साधक है तेऊ तहां बाधक है। (समयसार नाटक, जीवद्वार गाथा १०)

पू. लालचंदभाई: बाधक है।

मुमुक्षु: **[नयपक्षपरिहीन:] नयपक्ष से रहित जीव,**

पू. लालचंदभाई: **जीव।**

मुमुक्षु: **[समयप्रतिबद्धः] समय से प्रतिबद्ध होता हुआ (अर्थात् चित्स्वरूप आत्मा का अनुभव करता हुआ), [द्वयोःअपि] दोनों ही [नययोः] नयों के [भणितं] कथन को** अर्थात् कि स्वरूप को

पू. लालचंदभाई: स्वरूप को।

मुमुक्षु: **[केवलं तु] मात्र [जानाति] जानता ही है [तु] परंतु [नयपक्षं] नयपक्ष को [किञ्चित् अपि] किंचित् मात्र भी [न गृह्यति] ग्रहण नहीं करता।**

पू. लालचंदभाई: क्योंकि अतीन्द्रिय ज्ञान से द्रव्य-पर्याय को जानता है तो उसे विकल्प उत्पन्न ही नहीं होते और जाने बिना रहता नहीं। जानने में आते हैं और विकल्प उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि द्रव्य का अवलंबन लेने पर अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ न! उस अतीन्द्रियज्ञान ने द्रव्य-पर्याय दोनों को जाना। समझ गये? द्रव्य के आश्रय से ज्ञान प्रगट होता है उसमें विकल्प नहीं होता। मन के आश्रय से, पर के आश्रय से हो उसमें विकल्प होता है। पहले विकल्प छूट गया, ऐसा। अर्थात् विकल्प के द्वारा दो नयों का ज्ञाता नहीं हो सकता (और) विकल्प रहित अतीन्द्रियज्ञान, अनुभव होता है तब दो नयों का साक्षात् ज्ञाता है। आहाहा! केवली पर घटित किया है और फिर साधक पर घटित किया है, टीका में। सही है।

मुमुक्षु: अर्थात् कि पहले विकल्प छूट गये, व्यवहार का पहले छूटा, फिर निश्चयनय का भी छूटा।

पू. लालचंदभाई: छूटा, हाँ।

मुमुक्षु: फिर उसे चित्स्वरूप आत्मा का अनुभव हुआ।

पू. लालचंदभाई: हुआ।

मुमुक्षु: अर्थात् कि द्रव्य-दृष्टि हुई और आत्मा का अनुभव हुआ।

पू. लालचंदभाई: सही है। हुआ।

मुमुक्षु: और अनुभव में वह दोनों नयों के विषय को जान लेता है।

पू. लालचंदभाई: अनुभव और अनुभव का विषय दोनों ज्ञात हो जाते हैं। अनुभव का विषय और अनुभव हुआ वह, दोनों का ज्ञाता हो गया और उसमें विकल्प बिल्कुल है नहीं, इसप्रकार। अनुभव का विषय और अनुभव, समझ गये? भेद करो तो दोनों को जानता है, अभेद से एक को जानता है और प्रमाण से भेदाभेद

को जानता है। वह कुछ नहीं है, एक ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, बस! फिर तीनों को निकाल दो। विवक्षा से तीन, भेद को जानता है, भेदाभेद को जानता है, अभेद को जानता है। आहाहा! **समय से प्रतिबद्ध हुआ**। चित्स्वरूप आत्मा को निर्विकल्प ध्यान में अनुभवता हुआ विकल्पातीत, मनातीत, वचनातीत। आहाहा!

नयपक्ष को किंचित् मात्र भी ग्रहण नहीं करता। अर्थात् कोई विकल्प उत्पन्न नहीं होता। द्रव्य को जानने के लिये द्रव्यार्थिकनय का विकल्प नहीं है। पर्याय को जानने पर पर्यायार्थिक नय का विकल्प नहीं है। ऐसा कहा न? किसी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता। द्रव्य को द्रव्य स्वभाव से जानता है, पर्याय को पर्याय स्वभाव से जानता है। द्रव्य को द्रव्यार्थिकनय से नहीं जानता, पर्याय को पर्यायार्थिकनय से नहीं जानता। अर्थात् किसी भी प्रकार का विकल्प उत्पन्न हुए बिना दोनों का ज्ञाता हो गया। पहले नय से ज्ञाता था, जानपना, (अब) नयातीत हुआ। आहाहा!

समयसार तो समयसार है। 'समयसार लगे हमको प्यारा', वह आज बुलवाना है, पूर्णाहुति होने के (पश्चात्), आज बुलवाना। और एक गुरुभक्ति, दोनों का आज जरा - प्रोग्राम का मन हुआ है। अब एक अंतिम, पढ़ लो, अंतिम है।

मुमुक्षु: **श्री पंचाध्यायी भाग - १**।

पू. लालचंदभाई: बहुत इम्पोर्टन्ट है यह।

मुमुक्षु: **गाथा ५०६। अन्वयार्थ:- (ज्ञान विकल्पः) ज्ञान के विकल्प का नाम (नयः) नय है, तथा (सः विकल्प अपि) वह विकल्प भी (अपरमार्थः अस्ति) परमार्थभूत नहीं है।**

पू. लालचंदभाई: ये नयों के विकल्प **परमार्थभूत नहीं है**, अहित का कारण है, नुकसान का कारण है। जैसा है ऐसा विचार हों, वापस। उससे विपरीत हो तो-तो नय ही नहीं है। सर्वज्ञ भगवान ने जिस नय के द्वारा जो स्वरूप कहा उस नय के द्वारा ऐसे स्वरूप का विचार करता है, मानसिक ज्ञान में। वह अपरमार्थभूत है, **परमार्थभूत नहीं है**।

मुमुक्षु: **(यतः) क्योंकि वह ज्ञानविकल्परूप नय (शुद्धं ज्ञानं गुण इति)**

पू. लालचंदभाई: अब **परमार्थभूत नहीं है**, हित का कारण नहीं है उसका कारण दर्शाते हैं।

मुमुक्षु: **ज्ञानविकल्परूप नय शुद्ध ज्ञानगुण (च) तथा (ज्ञेयं) ज्ञेय भी (न)**

नहीं है। ज्ञान भी नहीं है और वो ज्ञेय भी नहीं है।

पू. लालचंदभाई: एई प्रेमचंदजी! वह ज्ञान भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान एक प्रकार का होता है, अतीन्द्रियज्ञान एक ही प्रकार का होता है। एक अतीन्द्रियज्ञान और एक इन्द्रियज्ञान, नयज्ञान - ऐसा नहीं है। उसीप्रकार ज्ञेय भी नहीं है, आहाहा! क्यों नहीं है ज्ञेय? वह है ही नहीं। अनुभव के काल में नय का विकल्प ही नहीं है, अवस्तु है इसलिए ज्ञेयरूप से ज्ञात नहीं होता।

मुमुक्षु: ज्ञेय भी नहीं है। वह भी मार्मिक व्याख्या है।

पू. लालचंदभाई: मार्मिक व्याख्या है। ज्ञेय भी नहीं है, वह मार्मिक है।

मुमुक्षु: जानने में नहीं आता इसलिए ज्ञेय नहीं है।

पू. लालचंदभाई: क्योंकि अवस्तु है, व्यय हो गई, नय का व्यय हो गया। इन्द्रियज्ञान का व्यय और अतीन्द्रियज्ञान का उत्पाद। नय का विकल्प ही नहीं है। विकल्प हो तो ज्ञान का ज्ञेय होवे, हेयरूप ज्ञेय, उपादेयरूप ज्ञेय, उपेक्षारूप ज्ञेय। बहन को पूछा था कि ये पर्यायार्थिक चक्षु बंद करने के लिये कहते हैं। मैंने उनसे पूछा, कि 'हेयरूप जाने तो? उपादेयरूप न जाने, हेयरूप जाने तो?' (उन्होंने कहा) नहीं। (मैंने पूछा) तो ज्ञेयरूप जाने? तो कहा, नहीं। यदि ज्ञेयरूप जाने तो बंद कहाँ की? वह ११४ (गाथा प्रवचनसार) के साथ मेल किया। अवस्तु, विकल्प का अभाव ही हो गया है। आहाहा! मिथ्यात्व गया, तो मिथ्यात्व ज्ञान का ज्ञेय होता है या नहीं, सम्यग्दर्शन होता है जब? अरे! मिथ्यात्व की तुम क्या बात करते हो?

मुमुक्षु: है ही नहीं तो ज्ञेय कहाँ से होगा?

पू. लालचंदभाई: बुखार नॉर्मल (normal) हो गया। कि साहेब! १०४ डिग्री ज्ञान का ज्ञेय तो हुआ कि नहीं? परंतु है ही नहीं। पूछो (डॉक्टर) मोदी साहब को। अवस्तु। वह शुद्धज्ञान नहीं है क्योंकि वह अशुद्ध ज्ञान है, नयज्ञान है, इन्द्रियज्ञान, मानसिक ज्ञान, अज्ञान है। वह शुद्धज्ञान नहीं है, शुद्ध शब्द प्रयोग किया है। और **ज्ञेय भी नहीं है**, ज्ञान तो नहीं है और ज्ञेय भी नहीं है। आहाहा! पंचाध्यायी (कर्ता ने) क्या गजब किया है!

मुमुक्षु: यह तो इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं है वह आ गया।

पू. लालचंदभाई: आ गया न!

मुमुक्षु: और इन्द्रियज्ञान ज्ञेय भी नहीं है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञेय भी नहीं है।

मुमुक्षु: क्योंकि जो ज्ञान है न वही तो ज्ञेय है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! ज्ञान ज्ञान भी है और ज्ञान स्वयं ज्ञेय भी है। नयज्ञान ज्ञान भी नहीं है और नयज्ञान ज्ञेय भी नहीं है। समापन है न, आज तो, हें? आहाहा! पूर्णाहुति है न? पूर्णाहुति में यह ही होता है न?

मुमुक्षु: आपने तीन हटाकर ज्ञान ही रखा था एक, एक ज्ञान लो।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान भी एक, ज्ञेय भी एक और ज्ञाता भी एक। कहा या नहीं? आहाहा! वह ज्ञान ही नहीं है, नयज्ञान ज्ञान नहीं है।

मुमुक्षु: बहुत ऊँची व्याख्या। इन्द्रियज्ञान (की मौजूदगी) ही नहीं है तो फिर ज्ञेय कहाँ रहा? ज्ञान ही नहीं है तो फिर ज्ञान ही नहीं रहा।

पू. लालचंदभाई: उसका व्यय हो गया विकल्प का। आहाहा! द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध और पर्यायार्थिकनय से अशुद्ध, इन दो प्रकार के नयों के विकल्प ही नहीं हैं। तो वे ज्ञेय कहाँ से हों? तो ज्ञेय एक रह गया, आत्मा भगवान। आहाहा! ज्ञान हो गया और ज्ञेय भी रह गया आत्मा, भगवान ज्ञायक आत्मा। आहाहा! शुद्धज्ञान भी प्रगट हो गया, अशुद्ध ज्ञान का व्यय हो गया और उस ज्ञेय का भी व्यय हो गया, विकल्प का। भगवान आत्मा ज्ञेय हो गया। ज्ञान भी एक, ज्ञेय भी एक और ज्ञाता भी एक। ज्ञेय दो, ज्ञान दो और ज्ञाता दो का?

मुमुक्षु: ऐसा नहीं है।

पू. लालचंदभाई: चलो अब आज बहन से भक्ति सुनते हैं। एक समयसार की और फिर एक गुरुभक्ति। बस दो ले लो।

मुमुक्षु: एक लाइन रह गई है।

पू. लालचंदभाई: रह गई लाइन? अच्छा! करो, पूरा करो।

मयमुमुक्षु:- **(किंतु) परंतु (तद्योगात) ज्ञेय के संबंध से होनेवाले ज्ञान के विकल्प का नाम नय है।**

पू. लालचंदभाई: **नय है**। परज्ञेय है न? उसके संबंध में जो ज्ञान जाता है न, उसमें वह खंडज्ञान, इन्द्रियज्ञान होता है उसका नाम विकल्प, ऐसे। एक राग को विकल्प कहा जाता है और एक नय के संबंध से होनेवाला खंडज्ञान, उसका नाम भी विकल्प, नय विकल्प है। परज्ञेय के संग से हों! स्वज्ञेय के संग से तो विकल्प उत्पन्न

ही नहीं होता। **ज्ञेय के संबंध से** अर्थात् ज्ञेय के लक्षवाला हुआ ज्ञान, कहा जानेवाला ज्ञान, ज्ञान नहीं है लेकिन कहा जानेवाला ज्ञान। **होनेवाले ज्ञान के विकल्प का नाम नय है।** आहाहा! ज्ञेय के लक्षवाला ज्ञान- उसे आचार्य भगवान ने व्यभिचारिणी बुद्धि कहा है। आहाहा! संत के अलावा कौन कह सकता है, हें? पर के संग में गया न ज्ञान? वह ज्ञान था आत्मा का।

बोलो। ठीक है न तबियत तो? तो बोलो (भक्ति)।

मुमुक्षु: समयसार हमको लागे प्यारा, (२)
लागे प्यारा, हमे लागे प्यारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार ही सम्यक् दर्शन, (२)
ज्ञान-चारित्र यही सुखकारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार ही प्राण हमारा, (२)
ये जीवन आधार हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित है, (२)
समयसार शुद्धात्म हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
चिदानंद चैतन्य प्रभु है, (२)
स्वानुभूति में शोभे अपारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
प्रमत्त नहीं अप्रमत्त नहीं जो, (२)
एक शुद्ध ज्ञायक ही हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
ज्ञानादि के गुण भेद न जिसमें, (२)
निर्भेद शुद्ध ज्ञायक हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
ज्ञानमयी ज्ञायक ही सार है।

कुंदकुंद प्रभु को वंदन हमारा। (२)
अमृत प्रभु को वंदन हमारा। (२)
कहान गुरु को वंदन हमारा। (३)
लाल प्रभु को वंदन हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (४)
कोटि कोटि वंदन कर प्रभु को। (२)
हो जाऊँगा मैं भाव से पारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
अमृत पीकर अमर होंये अब। (२)
सिद्धालय में हो वास हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार जयवन्त रहो नित। (४)
गूँजती रहे जय जय जय कारा। (४)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
लागे प्यारा, हमें लागे प्यारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)

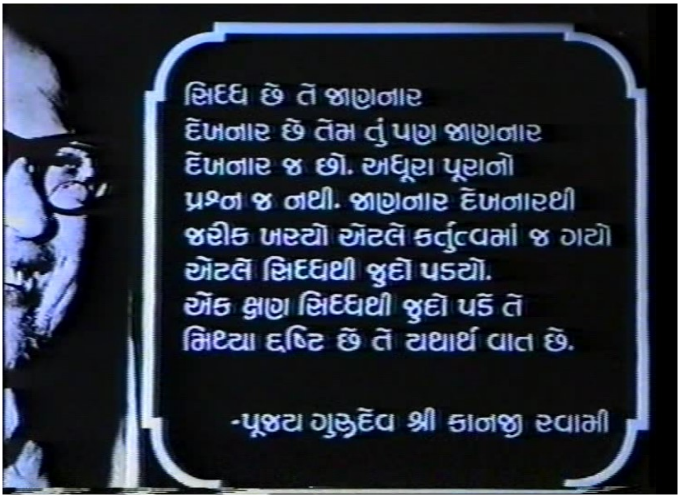

मुमुक्षु: हे गुरुवर तुम हो निधि की विधि,
सच्ची शिव विधि दरशाई है,
हे प्रभु आपका हृदय समझ,

मैंने मेरी निधि पाई है।
ऐसा लगता बस मुक्त हुआ,
नहीं करना कुछ भी शेष रहा,
निज में ही लीन रहूँ गुरुवर,
बस ये ही भाव विशेष रहा।
मेरा मिथ्याभ्रम दूर हुआ,
मैं दुःखी नहीं सुखमय ही हूँ,
बंधन बाधा अति भिन्न सदा,
मैं मुक्त स्वरूप सदा ही हूँ।
मैं मुक्त स्वरूप सदा ही हूँ।
भोगों की किंचित् चाह नहीं,
भव बाधायें सब ही विघटी,
मुक्ति की भी अब चाह नहीं,
मुक्ति की चिंता भी विघटी।
निष्काम नमन है प्रभु तुमको, दृष्टि आनंदमयी प्रगटी। (२)
मैं ज्ञायक पर ज्ञेय हैं मेरे,
ऐसी भ्रांति मिटा डाली।
पू. लालचंदभाई: आहाहा! भव का अंत (है) इसमें।
मैं ज्ञायक पर ज्ञेय हैं मेरे,
ऐसी भ्रांति मिटा डाली।
ज्ञायक का ज्ञायक रहने की,
अपूर्व विधि बता डाली।
पर की तो क्या बात करूँ,
निज पर्यय का कर्तृत्व अहो,

एक क्षण मे दूर हुआ मुझसे,
निष्क्रिय ज्ञायक प्रगटा मेरे।
पू. लालचंदभाई: वाह!

मुमुक्षु: होने योग्य ही कार्य जगत में,
होता देखा जाता है।
ना होने वाले को कोई,
कभी नहीं कर पाता है।
ध्याने योग्य ही ध्येय आपने, (२)
गुरुवर हमें दिखाया है।
ध्येय ध्यान की हुई अभेदता,
पू. लालचंदभाई: ध्याता बन गया।
मुमुक्षु: अपूर्व आनंद छाया है। (२)
मुक्ति मार्ग का सब रहस्य,
प्रभु आपने ही बतलाया है।
केवल बतलाया ही नहीं,
परिणत भी हमें कराया है।
मम् हृदयरूप घट में रे,
हर्ष नीर छलकाता है,
तव चरणों के प्रक्षालन हेतु,
ये उमड़ उमड़ कर आता है।
मम् हृदयरूप घट में रे,
जब नहीं समाने पाया है,
मन-वचन-काय की सीमा को,
ये लांघ बाहर यूँ आया है।
पर पूर्ण सफल ना होगा ये,
आपकी सुमहिमा गाने में।
फिर भी हठ पूर्वक उद्यत है,

ये अपना स्वाँग दिखाने में।
पू. लालचंदभाई: अब ग्रहण करेगा।
मुमुक्षु: इस स्वाँग को आप जानते हैं,

पू. लालचंदभाई: मैं भी स्वांग जानता हूँ।
मुमुक्षु: मैंने भी इसे स्वाँग जाना।
तुम सम ज्ञायक वृत्ति द्वारा,
निज ज्ञायक को अब पहिचाना।
द्रव्य दृष्टि का दान दिया, मैं सुखी रहूँ वरदान दिया। (२)
हो सच्चे अनुपम दानवीर,
मैं भाव आपका सफल किया।
सागर के अमाप जल को क्या, अंजुली से मापा जाता है। (२)
गुरुवर की अपार महिमा को,
क्या शब्दों से गाया जाता है।
है अलभ्य दर्शन आज गुरु, फिर भी नित दर्शन देते हो।
है अलभ्य दर्शन आज प्रभु, फिर भी नित दर्शन देते हो।
अंतः ज्ञायक गुरु की महिमा में,
मग्न हमें कर देते हो।
मम हृदयरूप सिंहासन पर,
मेरे प्रभुवर जयवंत रहो।
मम हृदयरूप सिंहासन पर,
मेरे गुरुवर जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो,
श्री कहान गुरु जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो,
श्री लाल प्रभु जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो,
श्री कहान गुरु जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो,
श्री लाल प्रभु जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो,
श्री कहान-किरण जयवंत रहो।

श्री कहान-किरण जयवंत रहो।

ॐ

जामनगर, गुजरात
तारीखः ११-१०-१९८८, प्रवचन ४९८ में से

परमपारिणामिकभाव, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का संवाद

मुमुक्षुः मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

अध्यात्मयुग प्रवर्तक महान कहान गुरुदेव की परंपरा में हुए महान विद्वान पूज्य श्री लालचंदभाई की साक्षी में, (पूज्य लालचंदभाई को) परमपारिणामिकभाव स्वरूप के स्थान पर रखकर हम दोनों सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का स्वांग धारण करके यह संवाद प्रस्तुत करते हैं।

पू. लालचंदभाईः वे (संध्याबहन) सम्यग्दर्शन का स्वांग धारण कर रही हैं अभी और ये (नीलमबहन) सम्यग्ज्ञान हैं। इन दोनों का वादविवाद होगा। और परमपारिणामिकभाव यहाँ, वह आत्मा है।

मुमुक्षुः परमपारिणामिकभाव वह तो स्वभाव ही है।

पू. लालचंदभाईः ये तो स्वांग है, ये सब।

मुमुक्षुः परमपारिणामिकभाव तो स्वभाव ही है।

मुमुक्षुः सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान की जोड़ी, कोई नहीं सकता तोड़।

पू. लालचंदभाईः एक साथ ही हैं न? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ ही प्रगट होते हैं, एक साथ रहते हैं। अब सम्यग्दर्शन बोलता है।

सम्यग्दर्शनः- हे परमपारिणामिकभाव स्वरूप ज्ञायक परमात्मन्! तुम्हें

सम्यक् श्रद्धा का प्रणाम स्वीकार हो, स्वीकार हो, स्वीकार हो!

सम्यग्ज्ञानः- हे परमपारिणामिकभाव स्वरूप ज्ञायक परमात्मन्! तुम्हें सम्यग्ज्ञान का प्रणाम स्वीकार हो, स्वीकार हो, स्वीकार हो!

सम्यग्दर्शनः- दोनों मिलकर पुनः पुनः नमस्कार करके आपश्री की साक्षी में हम अपने स्वरूप को प्रगट करते हैं।

सम्यग्ज्ञानः- हे श्रद्धा! मैं आत्मवस्तु को कथंचित् अभेद और कथंचित् भेदस्वरूप जानता हूँ। नित्य-अनित्य, एक-अनेक, अपरिणामी-परिणामी, द्रव्य-पर्याय स्वरूप, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, अर्थात् कि वस्तु जैसी है ऐसी दो पहलूवाली जानता हूँ। तू भी मेरी तरह ही वस्तु को ऐसी मान, ऐसी मान!

सम्यग्दर्शनः- ना भाई ज्ञान! ऐसा नहीं बनता। ऐसा तो बनता ही नहीं। उसमें तो मैं मिथ्या हो जाऊँगी!

सम्यग्ज्ञानः- क्यों? क्यों मिथ्या हो जायेगी? मैं तो द्रव्य-पर्याय स्वरूप को जानता हूँ, उसमें मैं तो सम्यक् रहता हूँ। तू मिथ्या कैसे हो जायेगी? तू मिथ्या होने का भय मत कर। तू भी उसमें ही सम्यक् होगी। क्यों सही है न?

सम्यग्दर्शनः- अरे भाई ज्ञान! जिसमें तू सम्यक् रहता है उसमें मैं भी सम्यक् रहूँ, ऐसा नहीं है। क्योंकि हम दोनों का nature (स्वभाव) अलग-अलग है। मैं तो निर्विकल्प हूँ और मेरा विषय एक ही होता है। और मेरे में सर्वथापना ही होता है, मेरे में कथंचित्पना नहीं होता। मुझे कथंचित् आता ही नहीं है, मुझे जो दिखता है वह सर्वथा ही दिखता है। मैं क्या करूँ? मेरा स्वभाव ही सर्वथा के रूप में ही देखने का है।

सम्यग्ज्ञानः- हाँ श्रद्धा! वह तो ठीक है कि तेरा स्वभाव निर्विकल्प है, तेरे में सर्वथापना ही है।

सम्यग्दर्शनः- इसीलिये ही तो! हे भाई ज्ञान! अनंत-अनंतकाल से मैं अपने सर्वथा शुद्ध, परिपूर्ण, अनंत-अनंत गुणमय अभेद-ज्ञाता स्वभाव को सर्वथा अशुद्ध-अपूर्ण दोषी मानती थी। अब आपश्री की अनंत-अनंत परमकृपा से, आपश्री के शुद्धनय स्वरूप कल्याणकारी मार्गदर्शन से, आपने मेरे पूर्ण शुद्ध स्वरूप, परिपूर्ण कृतकृत्य परमात्मस्वरूप, स्वयं सिद्ध स्वरूप, आहाहा! भगवान आत्मस्वरूप दिखाया है, दर्शाया है। और मैंने भी अपने स्वरूप को ऐसा ही मान लिया है कि मैं

तो नित्यनिरावरण-अखंड-प्रत्यक्षप्रतिभासमय परिपूर्ण ज्ञायक परमात्मा हूँ। सर्वथा शुद्ध ही हूँ, पूर्ण ही हूँ, निष्क्रिय शुद्ध ज्ञायकभावरूप ही हूँ, अभेद ही हूँ। मुझे इतना ही दिखाई देता है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मुझे दिखता नहीं। उसमें ही मेरा सम्यक्पना है।

सम्यग्ज्ञान:- ऐसा! तू सर्वथा शुद्ध स्वभाव, परमार्थ स्वभाव से अभेद है, निर्विकल्प है। वाह! बहुत अच्छा। अब मैं तुझे कथंचित् का आग्रह कभी नहीं करूँगा।

सम्यग्दर्शन:- हाँ प्रभु ज्ञान! यदि मुझे कथंचित् में आने के लिये कहोगे तो मैं मिथ्या हो जाऊँगी। और मेरे मिथ्या होने पर तुम भी मिथ्या हो जाओगे। मेरे मरण के साथ ही तुम्हारा मरण भी जानो!

सम्यग्ज्ञान:- ऐसा! ओहोहोहो! तो मुझे ऐसा नहीं करना है। अनंतकाल से मैं भी तेरे सम्यक्पने के बिना मिथ्या रहा हूँ, कथंचित् के पक्ष में रहा हूँ, नित्य-अनित्य का ज्ञाता नहीं हुआ। अब हे श्रद्धा! तू अपने सर्वथा शुद्ध स्वभाव में निश्चल रह। मैं कभी तुझे कथंचित् में नहीं लाऊँगा।

सम्यग्दर्शन:- हाँ भैया ज्ञान! आत्मा तो सर्वथा शुद्ध ही है न? आहाहा! मैं तो परिपूर्ण, निर्विकल्प, अभेद परमात्मा हूँ। मैं तो सर्वथा नित्य ज्ञाता स्वरूप से ही हूँ। हे भाई ज्ञान! अब तुम भी जितना मैं श्रद्धान करती हूँ उतना चैतन्य सामान्य आत्मा है, केवल उसे ही तुम भी आत्मा जानो, सर्वथा द्रव्य को ही जानो। तुम किसलिये पर्याय को जानते हो? वह तो परद्रव्य है न? तुम मेरी बात मानो कि अकेले द्रव्य स्वभाव को ही जानो। तुम भी सर्वथा में आ जाओ न?

सम्यग्ज्ञान:- अच्छा! हे श्रद्धा! जैसे तेरे स्वभाव में सर्वथा एकांत है ऐसा मेरे स्वभाव में सर्वथा एकांत नहीं है। मेरे स्वभाव में तो अनेकांतपना है, कथंचित्पना है, मैं स्याद्वादरूप हूँ। मैं यदि सर्वथा एकांत में जाऊँ तो मैं मिथ्या हो जाऊँगा, मर जाऊँगा।

सम्यग्दर्शन:- अरे! मैं तो सर्वथा में ही सम्यक् रहती हूँ और तुम सर्वथा में सम्यक् नहीं? तुम उसमें मिथ्या हो जाओगे? मर जाओगे?

सम्यग्ज्ञान:- हाँ! मैं सर्वथा एकांत में सम्यक् नहीं होता। सर्वथा में तू सम्यक् और कथंचित् में मैं सम्यक्। कथंचित् में तू मिथ्या और सर्वथा में मैं मिथ्या। अब तो

हम दोनों का सम्यक् होने का काल पक गया है। क्योंकि हमारे ऊपर पूज्य श्री लालचंदभाई जैसा पारिणामिक स्वभाव मिल गया है न? अर्थात् अब तो दोनों के सम्यक् होने का काल पक गया है। इसीलिये तू सर्वथा शुद्ध परिपूर्ण मुक्त अभेद ज्ञायकभाव में ही रह और मैं भी तेरा जो आत्मा है वह ही मेरा आत्मा है, तुझे जो उपादेय है वह ही मुझे उपादेय है। उसमें तो मैं तेरे साथ हूँ, परंतु...

परमपारिणामिकभाव:- परंतु...

सम्यग्दर्शन:- परंतु...

सम्यग्ज्ञान:- परंतु जानने के लिये मुझे तेरे अलावा दूसरा भी पहलू है।

परमपारिणामिकभाव:- है!

सम्यग्दर्शन:- हे ज्ञान! तुम शुद्धनय के स्वरूप में तो मेरे साथ हो। अर्थात् तुम मेरे साथ तो हो न! वह बहुत अच्छा, बहुत सुंदर, परंतु...

सम्यग्ज्ञान:- परंतु क्या? मेरी एक विशेषता है। मेरा स्वभाव ही सविकल्प है अर्थात् सब कुछ जानना। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, भेदाभेद स्वरूप, कथंचित् रहित और कथंचित् सहित, आत्मा और आत्माश्रित आनंद आदि को जानना ऐसा मेरा सहज स्वभाव है। और जब मैं संपूर्ण वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप को जानता हूँ तब ही तू भी सम्यक् नाम पाती है। उससे पहले तो तू भी मिथ्या थी। हे श्रद्धा! तेरे पक्ष से मेरा स्वभाव अकेला निश्चय से स्वप्रकाशक ही है। और ज्ञान की अपेक्षा से, अर्थात् जानने की अपेक्षा से मेरा स्वभाव निश्चय स्वपरप्रकाशक है, और व्यवहार स्वपरप्रकाशक भी है। क्यों ठीक है न?

सम्यग्दर्शन:- ठीक है।

अब परमपारिणामिकभाव सम्यक्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान को आशीर्वाद देता है।

परमपारिणामिकभाव:- (हे) निर्दोष सम्यक् श्रद्धा! हे निर्दोष सम्यग्ज्ञान! तुम दोनों एक साथ मिल-जुलकर रहते हो, इसलिये सम्यक् एकांत पूर्वक अनेकांत होता है। वह बहुत अच्छा है। ऐसा ही तुम दोनों का स्वभाव है। सम्यक्श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान स्वरूप ज्ञान-दर्शन जयवंत वर्तो। ध्येय पूर्वक ज्ञेय की संधि, स्वरूप वीतराग सर्वज्ञपना जयवंत वर्तो! जयवंत वर्तो!

सम्यक्श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान दोनों मिलकर कहते हैं:- हे पारिणामिकभाव! हे

परमपारिणामिकभाव स्वरूप परमात्मन्! हे प्रभो! हम दोनों आपके आश्रय से आपकी अनंत-अनंत कृपा से प्रगट हुए हैं। हमारा सर्वस्व तो आप ही हो। हम आपमयी ही हैं।

परमपारिणामिकभावः- भले तुम दोनों कहते हो कि मेरे आश्रय से सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, परंतु ऐसा है नहीं। तुम प्रगट होते हो तब तुम्हारा लक्ष मेरे ऊपर है, इसलिये मेरे आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ, ऐसा उपचार आता है। वास्तव में तो तुम दोनों की पर्याय सत् - तुम्हारे से प्रगट हुई है। हम उसके कर्ता भी नहीं हैं और हम उसके कारण भी नहीं हैं, हम तो जाननहार हैं।

सम्यक्श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान दोनों मिलकर कहते हैं:- जाननहार भगवान आत्मा की जय हो! ज्ञायक देव की जय हो! परमपारिणामिकभाव की जय हो!

मुमुक्षुः स्वयंप्रभु की जय हो!

पू. लालचंदभाईः सम्यक् एकांत पूर्वक (सम्यक्) अनेकांत होता है ....

मुमुक्षुः सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तत्काल की योग्यता, आपके कारण नहीं?

पू. लालचंदभाईः ना बिल्कुल नहीं। हमें कारण-वारण कोई कहना मत। वे सब अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार पर्याय प्रगट होती हैं। हम तो अकर्ता और अकारण हैं। आहाहा! हम किसी का कारण-बारण नहीं हैं। पर्याय का कारण पर्याय में, पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। मेरी उपस्थिति में होती है इतना ठीक है, परंतु मेरे कारण होती है, ऐसा है नहीं। ऐसा हमें कहना मत। आहाहा!

मुमुक्षुः आपकी बात हमें शिरोमान्य है क्योंकि उसमें ही हमारा कल्याण है।

पू. लालचंदभाईः तो ठीक, कल्याण है!

मुमुक्षुः शिरोमान्य हुआ तभी तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ। उसमें ही हमारा कल्याण है।

पू. लालचंदभाईः सही है। उसमें ही कल्याण है।

मुमुक्षुः भाई! इतना अधिक निरपेक्ष और स्वतंत्र?

पू. लालचंदभाईः हाँ! दो सत् अलग-अलग हैं भाई! किसी के कारण कोई है नहीं। द्रव्य के कारण पर्याय नहीं है और पर्याय के कारण द्रव्य नहीं है। दो सत् जब प्रत्यक्षपने स्वीकार करेंगे, निरपेक्ष, तब उसके बाद सापेक्ष का व्यवहार आता है, कि

आत्मा के आश्रय से होता है, आत्मा की कृपा से हुआ, वह सब व्यवहार कहा जाता है।

मुमुक्षुः वाह! परमपारिणामिकभाव की करुणा बहुत।

जाननहार भगवान आत्मा की जय हो!

ज्ञायक देव की जय हो!

परमपारिणामिकभाव की जय हो!

ॐ

ॐ